वाग्देवी स्त्रियोंके नखशिख, तथा छल कपटोंकी प्रशसामें ही उलझी रहती है। अधिक हुआ तो राधिकारसिकेशकी भक्तिमें दौडती है, परन्तु इस भक्तिके व्याजसे यथार्थमें अपनी विषयवासनाही पुष्ट की जाती है और भक्तिका यथार्थ तत्त्व समझनेमें उनकी बुद्धि कुठित रहती है। हम यह नहीं कहते कि, शृगाररसमें कविता करनी ही न चाहिये, नहीं। शृगारके विना साहित्य फीका रहता है, इस लिये शृंगार एक आवश्यक रस है, परन्तु प्रत्येक विषयके परिमाणकी सीमा होती है। सीमाका उल्लघन करना ही दोषास्पद होता है। सारांश यह है कि, अब शृगाररस बहुत हो चुका; कविजनोंको अन्य विषयोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। परमार्थदृष्टिसे शान्त और करुणा ये दो रस परमोत्तम हैं, और इन्हीं रसोंसे परिपूर्ण ग्रन्थ भाषा (हिन्दी) साहित्यमें बहुत थोड़े दिखाई देते हैं। इन रसोंसे कविका आत्मा सुख और शाति दोनों प्राप्त कर सक्ता है।

साहित्य और धर्मसे घनिष्ट सम्बन्ध है, इस लिये प्रत्येक भाषासाहित्यके धर्मोंकी अपेक्षा अनेक भेद हो सक्ते हैं। जिस कविका जो धर्म होगा, उसकी कविता उसी धर्मके साहित्यमें गिनी जावेगी। परन्तु ग्रन्थोंके पर्यालोचनसे जाना जाता है, कि प्राचीन समयके विद्वानोंमें धर्मोंकी अनेकता होनेपर भी साहित्यकी अनेकता नहीं थी। उस समयका धर्मभेद विनोदरूप था, द्वेषरूप नहीं था, इस लिये प्रत्येक विद्वान् यावद्धर्मोंके ग्रन्थोंका परिशीलन निष्पक्षदृष्टिसे करता था। कविगण धर्मभेदके कारण किसी काव्यका आस्वादन करना नहीं छोड देते थे, बलिक आस्वादन करके यथासमय उनकी प्रगसा करते थे। वे जानते थे कि, सा-

हित्य कविके धर्मके अनुकूल विषय प्रतिपादन करता है, परन्तु किसीसे यह नहीं कहता कि, तुम्हें हमारा धर्म अगीकार करना-ही पडैगा। महाकवि बाणभट्टने कहा है—

पद्बन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥

इसमे जिस महाकविके गद्यवन्ध ग्रन्थको काव्योंका राजा बतलाया है, वे भट्टार हरिश्चन्द्र जैन थे। जल्हणकी सूक्तिमुक्तावलीमें महाकवि श्रीधनंजयकी प्रशंसामें कहा है—

द्विसन्धाने निपुणतां स ता चक्रे धनंजयः।
यया जातं फल तस्य सतां चक्रे धनं जयः ॥

द्विसंधानमहाकाव्यके प्रणेता परम जैन धनंजयका नाम किसने न सुना होगा? ध्वन्यालोकके कर्ता आनन्दवर्धन और हरचरित महाकाव्यके कर्ता रत्नाकरने भी धनंजय की स्तुति की है। इसी प्रकार महाकवि वाग्भट्ट जो जैन थे, उन्होंने कालिदासकी प्रशंसामें कहा है—

नव्यनव्यक्रमासाद्यानुक्षणं यस्य सूक्तयः।
प्रभवन्ति प्रमोदाय कालिदासः स सत्कविः ॥

परमभट्टारक श्रीसोमदेवसूरिने यशस्तिलकचम्पूके दूसरे आश्वासमे "सुकविकाव्यकथाविनोददोहनमाध" पद देके माघ महाकविकी प्रशंसा की है।

इत्यादि और भी अनेक उदाहरणोंसे जाना जाता है कि, प्राचीनकालमें एक दूसरेके ग्रन्थोंके पठनपाठनकी पद्धति बहुलतासे थी। परन्तु अब वह समय बहुत पीछे पड़ गया है,

आजकलका समय उसके ठीक प्रतिकूल है । विद्याकी न्यूनतासे लोगोमे द्वेषबुद्धि वहुत वढ गई है, इस लिये वे एक दूसरेके ग्रन्थोंका पठन पाठन तो दूर रहे, दूसरेके ग्रन्थोकी निन्दा करना और उसके प्रचारमें वाधक वनना ही अपना धर्म समझते है ।

यदि धर्मकी अपेक्षा यहाके संस्कृतसाहित्यके भेद किये जावे तो मुख्यतासे वैदिक, जैन, और वौद्ध ये तीन हो सकते है । परन्तु भाषा (हिन्दी)साहित्यके वैदिक और जैन केवल दो ही हो सकेगे । (क्योकि—जिस समय भाषासाहित्यका प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय भारतमें वौद्धधर्मका प्राय. नामशेष हो चुका था, और यदि कहीं थोड़ा वहुत रहा भी हो तो उसकी भाषा हिन्दी नही थी) संस्कृतसाहित्यको छोड़ कर हम यहा भाषासाहित्यके सम्बन्धमे ही कुछ कहेगे—

काशी, आगरा आदिकी नागरीप्रचारिणीसभाये भाषासाहित्यके ग्रन्थोका प्रकाशन, आलोचन परिचालनादि करती है, और उनका उद्देश भी यही है । इन सभाओंके द्वारा भाषासाहित्यको वहुत कुछ लाभ पहुचा है, परन्तु खेद है कि, इनसे भी धर्मके पक्षपातका ध्वसन नही हो सका है और साहित्यसभाओमे जितनी गुरुता और उदारहृदयता होनी चाहिये, इनमे नहीं है । इस वातकी पुष्टिकेलिये इतना ही प्रमाण वहुत है कि, आजतक इन सभाओसे जितने ग्रन्थोंका प्रकाशन—आलोचन हुआ है, उनमे जैनसाहित्यका एक भी ग्रन्थ नहीं है । जहां तक हमको विदित है, इन सभाओंका कोई ऐसा नियम नही है कि, वैदिकसाहित्यके अतिरिक्त अन्यसाहित्यका प्रकाशन आलोचन किया जावेगा, परन्तु वैदिकधर्मके अनुयायी सज्जनोका समूह उक्त सभाओमे

अधिक है, इस कारण उनकी मनस्तुष्टिकेलिये ही ऐसा किया जाता है। और इसलिये हम कह सक्ते है कि, उक्त सभायें भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये नही, किंतु एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये स्थापित हैं। जब तक बाणभट्ट और वाग्भट्ट सरीखे उदार हृदयवाले उक्त सभाओके सभ्य नहीं होगे, तब तक साहित्यकी यथार्थ सेवा करनेके उद्देशका पालन कदापि नहीं हो सक्ता।

उक्त सभाओके अतिरिक्त हिन्दीभाषाके साप्ताहिक मासिक-पत्र भी भाषासाहित्यकी उन्नति करनेवाले गिने जाते हैं। परन्तु उनमें जितने प्रसिद्ध पत्र है, वे किसी एक धर्मके कट्टर अनुयायी और दूसरोंके विरोधी हैं; अतएव उनके द्वारा भी एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है, सामान्य भाषासाहित्यकी नही। यह ठीक है, कि प्रत्येक धर्मके साहित्यकी उन्नति उसी धर्मके अनुयायियोंको करना चाहिये, और वे ही इसके यथार्थ उत्तरदाता है। परन्तु जिन पत्रोंकी सृष्टि सर्वसामान्य राष्ट्रकी उन्नतिकेलिये है, और जो निरन्तर सबको एकदृष्टिसे देखनेकी डींग मारा करते हैं, उनके द्वारा किसी एक समूहकी उन्नतिमे सहायता मिलनेके बदले क्षति पहुचना क्या कलङ्ककी बात नही हैं? मूर्खताके कारण जैनियोंका एक बडा समूह ग्रन्थोके मुद्रित करानेका विरोधी है, इसलिये जैनग्रन्थ प्रथम तो छपते ही नही, और यदि कोई जैनी साहस करके किसी तरह छपाता भी है, तो उसका यथार्थ प्रचार नही होता। समाचार पत्रोकी समालोचना ग्रन्थप्रचारणमे एक विशेष कारण है, परन्तु जैनग्रन्थ समालोचनासे सर्वथा वचित रहते हैं। क्योंकि जैनियोंके जो एक दो पत्र हैं, उनमे तो विरोधियोंके भयसे मुद्रित

ग्रन्थोंकी बात ही नही की जाती, और हिन्दीके सामान्य पत्रोंमें जो समालोचना होती है, वह प्रचार होनेमें बाधा देनेके अभिप्रायसे होती है । "छपाई सफाई उत्तम है, मूल्य इतना है, ग्रन्थ जैनियोके कामका है ।" जैनग्रन्थोंकी समालोचना इतनेमें ही पत्र-सम्पादकगण समाप्त कर देते है । और यदि विशेष कृपा की, तो दो चार दोष दिखला दिये ! दोष कैसे दिखलाये जाते हैं, उनका नमूना भी लीजिये । एक महानुभाव सम्पादकने **दौलतविलास**की आलोचनामें कहा था " बडी नीरस कविता है ! " परन्तु यथार्थमें देखा जावे तो दौलतविलासकी कविताको नीरस कहना कविताका अनादर करना है । हमारे पडौसी एक दूसरे सम्पादकशिरोमणिने **स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा**के भाषा टीकाकार जयचन्द्रजीके साथ स्वर्गीय, शब्द लगा देखकर एक अपूर्व तर्क की थी, कि " जैनियोमें स्वर्ग तो मानते ही नहीं हैं, इन्हें स्वर्गीय क्यो लिखा " धन्य ! धन्य !! त्रिवार धन्य !!! पाठकगण जान सक्ते हैं, कि सम्पादक महाशय जैनियोके कैसे शुभेच्छुक है और जैनधर्मसे कितने परिचित हैं । जिस ग्रन्थकी समालोचनामें यह तर्क किया गया है, यदि उसीके दो चार पन्ने उलट करके आलोचक महाशय देखते, तो स्वर्ग है कि नहीं विदित हो जाता । पूर्ण ग्रन्थमें १०० स्थानोसे भी अधिक इस स्वर्ग शब्दका व्यवहार हुआ होगा । परन्तु देखे कौन ? जैनी नास्तिक कैसे बने ? लोग उनसे घृणा कैसे करे ? साराश यह है कि, हृदयकी सकीर्णतासे आलोचकगण कैसी ही उत्तम पुस्तक क्यो न हो, उसमें एक दो लाछन लगाके समालोचनाकी इतिश्री कर देते हैं, जिससे पुस्तक-प्रचारमें बड़ा भारी आघात पहुचता है । और सामान्य भाषासा-

हित्यकी उन्नति न होकर एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति-होती है।

भारतवर्षमें वैदिक धर्मानुयायियोंके मिलानमे जैनियोंकी संख्या शताश भी नहीं है, और जबसे भाषासाहित्यका प्रचार हुआ है, तबसे प्रायः यही दशा रही है। राज्यसत्ता न रहनेसे इन ४००-५०० वर्षोंमें जैनियोंकी किसी विषयमें यथार्थ उन्नति भी नहीं हुई है, परन्तु आश्चर्य है कि, इस दशामें भी जैनियोंका भाषासाहित्य वैदिक भाषासाहित्यसे न्यून नहीं है। समयके फेरसे जैनियोंके सस्कृतसाहित्यके अस्तित्वमे भी लोगोंको शंकायें होने लगी थी, परन्तु जब **काव्यमालाने** जन्म लिया, डा० **भाडारकर** और **पिटर्सनकी** रिपोर्टें जैनियोंके सहस्रावधि ग्रन्थोंके नाम लेकर प्रकाशित हुईं बंगाल एशियाटिक सुसाइटीने जैनग्रन्थोंका छापना प्रारंभ किया; और जब विद्वानोंके हाथोंमें **यशस्तिलकचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण, गद्यचितामणि, काव्यानुशासन** आदि काव्यग्रन्थ, **शाकटायन कातंत्रप्रभृतिव्याकरण, सप्तभंगीतरंगिणी, स्याद्वादमजरी, प्रमेयपरीक्षादि** न्यायग्रन्थ मुद्रित होकर सुशोभित हुए; तब धीरे २ उनकी वे शकाये दूर हो गई। इसी प्रकार वर्तमानमें भाषासाहित्यके ज्ञाता जैनियोंके भाषासाहित्यसे अनभिज्ञ है परन्तु उस अनभिज्ञताके दूर होनेका भी अब समय आ रहा है। हमलोग इस विषयमें यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं।

(प्रत्येक भाषाके साहित्यके **गद्य** और **पद्य** दो भेद है, इनमेंसे वैदिक साहित्यमें जिस प्रकार पद्यग्रन्थोकी बहुलता है, उसी प्रकार जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थोकी बहुलता है।) भाषासाहित्यके विषयमे कभी २ यह निर्देश किया जाता है कि, भाषाकवियोमें गद्यलिखने-

की प्रथा नहीं थी । हम समझते हैं, यह दोष जैनसाहित्यपर सर्वथा नहीं लगाया जावेगा, गद्यके सैकडों ग्रन्थ जैनियोंके पुस्तकालयोंमें अब भी प्राप्य हैं । पद्यग्रन्थोंकी भी त्रुटि नहीं है, परन्तु उनमें नायकाओंका आमोद प्रमोद नहीं है । केवल तत्त्वविचार और आध्यात्मिकरस की पूर्णताका उज्ज्वलप्रवाह है । संभव है कि, इस कारण आधुनिक कविगण उन्हें नीरस कहके समालोचना कर डाले परन्तु जानना चाहिये कि, **शृङ्गाररस** को ही रससंज्ञा नही है ।

जिस समय भाषाग्रन्थोंकी रचनाका प्रारंभ हुआ है, उस समय जैनियोंके विलासके दिन नहीं थे । वे बडी २ आपदायें झेलकर बडी कठिनतासे अपने धर्मको जर्जरित अवस्थामें रक्षित रख सके थे । कही हमारे अलौकिक–तत्त्वज्ञानका संसारमें अभाव न हो जावे, यह चिन्ता उन्हे अहोरात्र लगी रहती थी, अतएव उनके विद्वानोंका चित्त विलास–पूर्ण–ग्रन्थोंके रचनेका नहीं हुआ और वे नायकाओंके विभ्रमविलासोंको छोडकर धर्मतत्त्वोंको भाषामे लिखनेकेलिये तत्पर हो गये । धर्मतत्त्वोंको देशभाषामें लिखने की आवश्यकता पडनेका कारण यह है कि, उस समय अविद्याका अंधकार बढ रहा था और गीर्वाणवाणी नितान्त सरल न होनेसे लोग उसे भूलने लगे थे, अथवा उसके पढनेका कोई परिश्रम नहीं करता था । ऐसी दशामे यदि धर्मतत्त्वोंका निरूपण देशभाषामें न होता, तो लोग धर्मशून्य हो जाते । एक और भी कारण है वह यह कि, हमारे आचार्योंका निरन्तर यह सिद्धान्त रहा है कि, देश काल भावके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये, इसलिये देशमे जिस समय जिस भाषाका प्राधान्य तथा प्राबल्य रहा है, उस समय उन्होंने उसी भाषामें ग्रन्थोंकी रचना करके समयसूचकता व्यक्त की है ।

प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओके धर्मग्रन्थ इसके साक्षी हैं। देशभाषाओमे ग्रन्थरचनेका प्रारभ हमारे आचार्योके द्वारा ही हुआ है, यदि ऐसा कहा जावे तो कुछ अत्युक्तिकर न होगा। कर्णाटक भाषाका सबसे प्रथम व्याकरण परमभट्टारक श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने गीर्वाण भाषामें बनाया है, ऐसा पाश्चात्य-पडितोंका भी मत है। मागधीके अधिकाश व्याकरण जैनियोंके ही हैं। भाषाग्रन्थोंके बनजानेसे लोगोंकी अभिरुचि फिर बढने लगी और उनके स्वाध्यायसे समाजमे पुनः ज्ञानकी वृद्धि होने लगी।

अभी तक यह भलीभाति निश्चय नहीं हुआ है कि, भाषाकाव्यका प्रचार कबसे हुआ। ज्यो ज्यो शोध होती जाती है, त्यो त्यो भाषाकी प्राचीनता विदित होती जाती है। कहते हैं कि, सवत् ७७० मे अवतीपुरीके राजा भोजके पिताने पुष्यकवि वन्दीजनको संस्कृतसाहित्य पढाया और फिर पुष्यकविने सस्कृत अलकारोकी भाषा दोहोमे रचना की, तवहीसे भाषाकाव्यकी जड पडी। इसके पश्चात् नवमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, और तेरहवीं श-

१ चित्तोरगढके महाराज **खुमानसिंह** सीसौदियाने सवत ९००मे **खुमानरायसा** नामक ग्रन्थकी नानाछन्दोमे रचना की।

२ सवत् ११२४ से **चन्द**कवीश्वरने **पृथ्वीराजरायसा** बनाना प्रारभ किया और ६९ खडोमे एकलक्ष श्लोक प्रमाण ग्रन्थ सवत् ११२० से ११४९ तक पृथ्वीराजका चरित्र वर्णन किया।

३ सवत् १२२० मे **कुमारपालचरित्र** नामका एक ग्रन्थ महाराज **कुमारपाल**के चरित्रका बनाया गया। कहते है कि, इसका बनानेवाला जैन था।

४ सवत् १३५७ मे **शारंगधर**कविने **हमीररायसा** और **हमीरकाव्य** बनाया।

ताब्दीमें भाषाके चार पांच ग्रन्थ निर्मित हुए, परन्तु भाषाकाव्यकी यथार्थ उन्नति सोलहवीं शताब्दीमें कही जाती है। इस शताब्दीमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना हुई है। अन्वेषण करनेसे जाना जाता है कि, जैनियोंके भाषासाहित्यने भी इसी शताब्दीमें अच्छी उन्नति की है। पंडित **रूपचन्दजी,** **पांडे हेमराजजी,** **बनारसीदासजी,** **भैया भगवतीदासजी,** **भूधरदासजी,** **द्यानतरायजी** आदि श्रेष्ठ कवि भी इसी सोलहवी और सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं। इन दो शताब्दियोंके पश्चात् बहुतसे कवि हुए है और ग्रन्थोंकी रचना भी बहुत हुई है, परन्तु उक्त कवियोंके तुल्य न तो कोई कवि हुए और न कोई ग्रन्थ निर्मापित हुए। सब पूर्वकवियोंके अनुकरण करनेवाले हुए ऐसा इतिहासकारोंका मत है।

हम इस विषयमे अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं कि, जैनियोमें भाषासाहित्यकी नीव कबसे पडी और सबसे प्रथम कौन कवि हुआ। और न ऐसा कोई साधन ही दिखता है कि, जिससे आगे निश्चयकर सकेंगे। क्योंकि जैनियोमें तो इस विषयके शोधनेवाले और आवश्यकता समझनेवाले बहुत कम निकलेगे और अन्यभाषासाहित्यके विद्वान् वैदिकसाहित्येतर साहित्यको साहित्य ही नहीं समझते। परन्तु यह निश्चय है कि, शोध होने पर जैनभाषासाहित्य किसी प्रकार निम्नश्रेणीका और पश्चात्पद न गिना जावेगा।

जैनधर्मके पालनेवाले विशेषकर **राजपूताना,** **युक्तप्रान्त,** **मध्यप्रदेश,** **गुजरात,** **महाराष्ट्र** और **कर्णाटक** प्रान्तमे रहते है। **हिन्दी,** **गुजराती,** **मराठी,** और **कानडी** ये चार भाषायें इन प्रान्तोकी मुख्य भाषायें हैं। परन्तु इन चार भाषाओंमेंसे प्रायः हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें जैनधर्मके संस्कृत प्राकृतग्रन्थोंका अर्थ

सरल और बोधप्रद लिखा गया है, अथवा उनके आधारसे नवीन सरल-बोधप्रद ग्रन्थ लिखे गये हैं। कर्णाटकी भाषामें अनेक जैन-ग्रन्थ सुने जाते हैं, परन्तु वे सबको सुलभ नहीं हैं। ऐसी अवस्थामे प्रत्येक प्रान्तके जैनीको अपने धर्मतत्त्वोको जाननेकेलिये हिन्दीका ही आश्रय लेना पडता है। जैनियोंके आवश्यक षट्कर्मोंमे शास्त्रस्वाध्याय एक मुख्य कर्म है, इसलिये प्रत्येक जैनीको प्रतिदिन थोड़ा वहुत शास्त्रस्वाध्याय करना ही पडता है, जो हिन्दीमे ही होता है। इसप्रकार जैनसाहित्य और जैनियोंके द्वारा हिन्दी भापाकी एक विलक्षणरीतिसे उन्नति होती है। जो जैनी धर्मतत्त्वोंका थोड़ा भी मर्मज्ञ होगा, चाहे वह किसी भी प्रान्तका हो, हिन्दीका जाननेवाला अवश्य होगा। हिन्दी प्रचारकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, जैनियोके एक जैनमित्र नामक हिन्दी मासिकपत्रके एक हजार ग्राहक है, जिनमें ५०० उत्तर भारतके और शेष ५०० गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटकके हैं। नागरीप्रचारिणी सभाओं और हिन्दी हितैषियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। जिस जैनसाहित्यसे हिन्दीकी इस प्रकार उन्नति होती है, उसको अप्रकट रखने की चेष्टा करना, और उसके प्रचारमें यथोचित उत्साह और सहायता नहीं देना हिन्दी हितैषियोको शोभा नहीं देता।

जैन-भाषा-साहित्य-भडारको अनुपम रत्नोंसे सुसज्जित करनेवाले विद्वान् प्रायः आगरा और जयपुर इन दो स्थानोमें हुए है। आगरे की भाषा वृजभाषा कहलाती है, और जयपुर की ढूंढारी। वृजभाषाका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योकि हिन्दीकी पुरानी कविता प्रायः इसी भाषामें है, जो सबके पठन पाठनमें आती है। यह वनारसीविलास ग्रन्थ जो पाठकोंके हाथमे उपस्थित है, इसी

भाषामें है। वृजभाषाके पद्यसे लोग जितने परिचित हैं उतने गद्यसे नहीं है। वृजभाषाका गद्य जाननेकेलिये इस ग्रन्थकी आध्यात्मवचनिका और उपादाननिमित्तकी चिट्ठी पढनी चाहिये। ढूंढारी भाषा जयपुर और उसके आसपास ढूंढार देशकी भाषा है। इसमे और वृजभाषामे इतना ही अन्तर है कि, ढूढारीमे प्राकृतशब्दोंका जितना वाहुल्य रहता है, उतना वृजभाषामें नहीं रहता। और वृजभाषामे फारसी शब्दोके अपभ्रंश अधिक व्यवहृत होते है। ढूढारी भाषाके गद्य ग्रन्थ वहुत सरल हैं, प्रत्येक प्रान्तका थोड़ी सी भी हिंदी जाननेवाला उन्हें सहज ही समझ सकता है।

जैनग्रन्थरत्नाकरमें जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ निकला हैं, उसकी टीका इसी भाषामे है, पाठकगण उसे मगाके ढूढारी भाषासे परिचित हो सक्ते हैं।

(भाषागद्य लिखनेवाले जैनविद्वानोंमें प० टोडरमलजी, प० जयचन्द्ररायजी, प० हेमराजजी, पांडे रूपचन्द्रजी, प० भागचन्द्रजी और पद्यलिखनेवालोमें प० बनारसीदासजी, प० द्यानतरायजी, प० भूधरदासजी, प० भगवतीदासजी, पं० वृन्दावनजी, प० देवीदासजी, प० दौलतरामजी, पं० विहारीलालजी और सेवारामजी आदि कविवर उत्कृष्ट गिने जाते हैं) इनके बनाये हुए ग्रन्थोके पढनेसे इनकी विद्वत्ता अच्छी तरह व्यक्त होती है। आश्चर्य है कि, इनमेसे किसी भी कविने शृंगाररसका ग्रन्थ नहीं बनाया। सभीने आध्यात्म और तत्त्वोंका निरूपण करके अपना कालक्षेप किया है। पं० भूधरदासजीने कहा है,—

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गमाई ।
सीखविना सब सीखत है, विषयानके सेवनकी सुघराई ॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई ।
अंध असूझनकी अँखियानमे, मेलत है रज राम दुहाई ! ॥

(भूधरशतक)

सच है ! जिन महात्माओके ऐसे विचार थे, उन्हे आध्यात्मिक रचनाके अतिरिक्त केवल शृंगारकी रचना कुछ विशेष शोभा नही देती । परमार्थदृष्टिसे शातरसकी समता शृगाररस नहीं कर सक्ता । क्योंकि शांतरसकी ऊर्ध्व गति है, शृगारकी अधो ! परन्तु ऐसा कहनेमे यह नहीं समझना चाहिये कि, इनकी कविता नवरस-रहित और काव्यके किसी अंगसे हीन होवेगी, नही! एक आध्यात्ममे ही नवरसघटित करके इन्होने अपने ग्रन्थोको नवरस-युक्त बनाये है । कविवर बनारसीदासजीने अपनी आत्मामें ही नवरस घटित किये हैं ! देखिये—

गुणविचार शृंगार, वीर उद्दिम उदार रुख ।
करुणा सम रसरीति, हास्य हिरदै उछाह सुख ॥
अष्टकरम दलमलन, रुद्र वरतै तिहि थानक ।
तन मिलेच्छ बीभत्स, द्वन्द्व दुखदशा भयानक ॥
अद्भुत अनंतबल चितवन, शांत सहज वैराग ध्रुव ।
नवरस विलास परकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥

परब्रह्म आत्माका यह नवरसयुक्त अपूर्व चितवन विद्वानोंको अभूतपूर्व आनन्दमय कर देता है । पाठकगण इसे एकवार अवश्य ही पाठ करें ।

भाषासाहित्यके विषयमें इतना ही कह कर अब यह उत्थानिका पूर्ण की जाती है । आशा है कि, यह जिस इच्छासे लिखी गयी है, पाठकोंके द्वारा वह किसी न किसी रूपमें फलवती होगी । पाठकोंके एक वार ध्यानसे पढलेनेमें ही हम अपनी इच्छाको फलवती समझ सक्ते हैं । इत्यलम् विद्वद्वरेषु—

जीयाज्जैनमिदं मतं शमयितुं क्रूरानपीयं कृपा ।
भारत्या सह शीलयत्वविरतं श्रीः साहचर्यव्रतम् ॥
मात्सर्यं गुणिषु त्यजन्तु पिशुनाः संतोषलीलाजुषः ।
सन्तः सन्तु भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कवीनां जनाः॥

चन्दावाडी—वम्बई,
१४—४—१९०५.

विदुषा चरणसरोरुहसेवी—
नाथूरामप्रेमी,
देवरी (सागर) निवासी ।

कविवर बनारसीदासजी ।

मातृस्वामिस्वजनजनकभ्रातृभार्याजनाद्या
दातुं शक्तास्तदिह न फलं सज्जना यद्ददन्ते ॥
काचित्तेषां वचनरचना येन सा ध्वस्तदोषा
यां शृण्वन्तः शमितकलुषा निर्वृतिं यान्ति सत्त्वाः ॥ ४६५

(सुभाषितरत्नसन्दोहे ।)

इस संसारमें सज्जनजन जो फल देते हैं, वह माता, स्वामी, स्वजन, पिता, भ्राता, स्त्रीजनादि कोई भी देनेको समर्थ नहीं है । दोषोंको विध्वस करनेवाली उनकी वचनरचनाको सुनकर जीवधारी शमित-कलुष (पापरहित) होकर निर्वृत्तिको प्राप्त करते हैं ।

पाठकगण! कविवर बनारसीदासजीकी शुभफलको देनेवाली सगति हमलोगोंको प्राप्य नहीं है । क्योंकि वे अब इस लोकमें नहीं हैं । किन्तु हमारे शुभकर्मके उदयसे उनकी निर्मल–वचन–रचना (कविता) अब भी अक्षरवती होकर विद्यमान है, जिससे सम्पूर्ण सासारिक कलुष (पाप) क्षय हो सक्ते है । उन अक्षरोंसे कविवरकी कीर्तिकौमुदी कैसी प्रस्फुटित हो रही है! यह उज्ज्वल चाँदनी आत्माका अनुभवन करनेवाले पुरुषोंके हृदयमें एक अलौकिक शीतलताका प्रवेश करती है, जिससे उन्हें संसारकी मोहज्वाला उत्तापित नहीं करती ।

जिस महाभाग्यकी वचनरचना ऐसी निर्मल और सुखकर है, उसकी जीवनकथा जाननेकी किसको इच्छा न होगी? और वह जीवनकथा कितनी सुंदर और रुचिकर न होगी? और उसके सं-ग्रह करनेकी कितनी आवश्यकता नहीं है? ऐसा सोच कर हमने

बनारसीदासजीकी जीवनकथाका शोध करना प्रारंभ किया। जिस समय बनारसीविलासके मुद्रित करानेका विचार हुआ है, उसके बहुत पहिले हम इस विषयके प्रयत्नमें थे। हर्षका विषय है कि हमारा थोडासा परिश्रम एक बडे फलरूपमें फलित हो गया है। अर्थात् स्वयं कविवर बनारसीदासजीके हाथका लिखा हुआ ५५ वर्षका जीवनचरित्र प्राप्त हुआ है। इस जीवनचरित्रका नाम उन्होंने अर्द्धकथानक रक्खा है, और ५५ वर्षके पश्चात् शेषजीवन–कथानक लिखनेकी प्रतिज्ञा की है। परन्तु बहुत शोध करने पर भी उनके शेषजीवनके वृत्तसे हम अनभिज्ञ रहे। अर्द्धकथानक में जो कुछ लिखा है, उसको हम गद्यप्रेमी पाठकोंकी प्रसन्नताकेलिये अपनी आलोचनासहित यहां प्रकाश किये देते हैं। अर्द्धकथानक पद्यबन्ध है। इस चरित्रमें उसके अनेक सुन्दर पद्य भी यथावसर दिये जावेंगे।

पाश्चात्य पंडितोंका यह एक बडा भारी आक्षेप है कि, भारतके विद्वान जीवनचरित्र अथवा इतिहास लिखना नहीं जानते थे। परन्तु आजसे ३०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्यसभ्यताका नाम निशान नहीं था, भारतका एक शिरोमणि कवि अपने जीवनके ५५ वर्षका वृत्तान्त लिखकरके रखगया है, इतिहासमें यह एक आश्चर्यकारी घटना है। हम निर्भय होकर कह सक्ते हैं कि, कविशिरोमणि बनारसीदासजी एक ही कवि थे, जिन्होंने अपने जीवनकी सच्ची घटनायें लिखकर अच्छे स्पष्ट शब्दोंमें गुणदोषोंकी आलोचना की है। दोषोंकी आलोचना करना साधारण पुरुषोंका कार्य नहीं है।

भाषासाहित्यमें अनेक संस्कृत तथा भाषा कवियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं, परन्तु उनमें तथ्य बहुत थोडा है। क्योंकि किंवद-

न्तियोंके आधारसे उनमे अनेक असंभव घटनाओंका समावेश किया गया है, जिनपर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सक्ता। ऐसी दशामें चरित्रसे जो लोकोपकार होना चाहिये, वह नहीं होता। क्योंकि चरित्रका अर्थ चारित्र अथवा आचरण है, और आचरणोंमें अन्तर्बाह्य दोनोंका समावेश होना चाहिये। जिनचरित्रोंमे यह बात नहीं है, वे पूर्ण चरित्र नहीं हैं। कविवर बनारसीदासजीके जीवनचरित्रसे भाषासाहित्यकी इस एक बडी भारी त्रुटिकी पूर्ति होगी। क्योंकि अन्तर्बाह्य चरित्रोंका इसमें अच्छा चित्र खींचा गया है।

प्रारंभ।

पानि–जुगलपुट शीस धरि, मान अपनपो दास।
आनि भगत चित जानि प्रभु, वन्दों पांस[1] सुपांस[2]॥ १॥

यह मगलाचरण अर्धकथानकका है। कविवर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथके विशेप भक्त थे, इसलिये कवितामे यत्र तत्र उक्त जिनेन्द्रद्वय की ही स्तुति की है। आपका जन्मनाम **विक्रमाजीत** था, परन्तु आपके पिता जब पार्श्वनाथसुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि **बनारस** (काशी) की यात्राको गये थे, तब भक्तिवश **बनारसीदास** नाम रखदिया था, इसका विशेप विवरण आगे दिया गया है। बनारसीदासजी को भी अपने नामके कारण **बनारस** और उक्त जिनेन्द्रद्वयके चरणोंसे विशेषानुराग हो गया था। **बनारसीनगरी** की व्युत्पत्ति देखिये आपने कैसी सुन्दर की है—

१ पार्श्व। २ सुपार्श्व।

कबित्त ।

गंगा माहिं आय धँसी, द्वै नदी वरुना असी
बीच वसी बानारसी नगरी बखानी है ।
काशिवारदेश मध्य गांव तातें काशी नांव,
श्रीसुपास–पासकी जनमभूमि मानी है ॥
तहां दोऊ जिन शिवमारग प्रकट कीन्हों,
तबसेती शिवपुरी जगतमें जानी है ।
ऐसीविधि नाम भये नगरी बनारसीके,
और भांति कहै सो तो मिथ्यामतवानी है ॥१॥

और भी अर्धकथानक की भूमिका बाधते हुए कहा है;—

जिन पहिरी जिन जनमपुरि, नाम मुद्रिकाछाप ।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसों आप ॥ २ ॥

भगवान् पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथकी स्तुति नाटकसमयसारके प्रारभमें कैसी अच्छी की है—

(सर्व ह्रस्वाक्षर) मनहरण ।

करमभरमजगतिमिरहरनखग,
उरगलखनपग शिवमगदरसि ।
निरखत नयन भविक जल वरषत,
हरषत अमित भविकजन सरसि ।
मदनकदनजित परमधरमहित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसि ।

सजलजलदतन मुकुट सपत फन,
कमठदलनजिन नमत बनरसि ॥ २ ॥

(सर्व ह्रस्वकारान्त) षट्पद।

सकलकरमखलदलन, कमठ[1]शठपवनकनकनग।
धवलपरमपदरमन, जगतजनअमलकमलखग॥
परमतजलधरपवन, सजलघनसमतन समकर।
परअघरजहरजलद, सकलजननत भवभयहर॥
यमदलन नरकपदछयकरन, अगमअतटभवजलतरन।
वर सबलमदनवनहरदहन, जय जय परमअभयकरन ॥३॥

मनहरण।

जिनके वचन उर धारत जुगलनाग,
भये धरणेंद्र पद्मावति पलकमे।
जाकी नाम महिमा सो कुधातु कनक करे,
पारस पाषान नामी भयो है खलकमे॥
जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम,
आपुनो स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें।
तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब,
दीजे मोहि साता दृगलीलाकी ललकमें॥

उक्त तीन छन्द विशेष मनोहर और युक्ति पूर्ण हैं, इसलिये हमको हठात् उद्धृत करना पडे है। चरित्रसम्बन्धमे इनसे केवल इतना ही साराश लेना है कि, कविवर पार्श्वसुपार्श्वनाथको इष्ट मानते थे।

---

१ मूर्ख कमठ रुपी वायुको अचल सुमेरुके समान।

पूर्व वशधरोकी कथा ।

मध्यभारतमे **रोहतकपुर** नामक एक नगर है । उसके निकट **बिहोली** नामका एक ग्राम है । बिहोलीमे राजपूतोकी बस्ती है । वहां कारणवश एक समय किसी जैनमुनिका शुभागमन हुआ । मुनिराजके विद्वत्तापूर्ण उपदेशो और लोकोत्तर आचरणोसे मुग्ध होकर ग्रामवासी सम्पूर्ण राजपूत जैनी हो गये, और—

पहिरी माला मंत्रकी, पायो कुल श्रीमाल ।
थाप्यो गोत बिहोलिआ, वीहोली—रखपाल ॥

अर्थात् **नवकारमन्त्रकी** माला पहिनके **श्रीमालकुलकी** स्थापना की और **विहोलिया** गोत्र रक्खा । वीहोलिया कुलने खूब वृद्धि पाई और दूर २ तक फैल गया । इस कुलमे परपरागत बहुतकालके पश्चात् **गंगाधर** और **गोसल** नामके दो पुरुष हुए । गगाधरके **बस्तुपाल**, वस्तुपालके जेठमल, जेठमलके जिनदास और जिनदासके **मूलदास** उत्पन्न हुए । मूलदासजी **हिन्दी फारसीके** ज्ञाता थे । यथा,—

मूलदास जिनदासके, भयो पुत्र परधान ।
पढ्यो हिन्दुगी[1] फारसी, भागवान बलवान ॥

मूलदासजी की वणिक वृत्ति थी । अपनी विद्वत्ता और सचाईके कारण वे मुगलबादशाहके परम कृपापात्र हो गये थे । **मालवा** के **नरवर** नामके नगरमे हुमायूं के किसी उमराव[2] को वहा जागीर प्राप्त हुई थी । यथा—

---

१ हिन्दी । २ आफिसर ।

तहां मुगल पाई जागीर।

१ सवत् १६०८ मे **मालवा हुमायूं**के मातहत नहीं था । उस समय हुमायू हिन्दुस्तानमे नहीं था, **काबुल**मे था। सवत् १६०८ मे हिजरी सन् ९०८ था, और उस समय मालवेमे **शेरशाह**का अमल था उसकी तरफसे **शुजाखां** हाकिम था ।

मालवेका यह हाल है कि वहा भी **मुहम्मदतुगलक**के वक्तसे अलग बादशाही हो गई। आखरी बादशाह **महमूदखिलजी** था, उससे **गुजरात**के **सुलतान बहादुरने** ९ शाबान सन् ९३७ (चैत्र सुदी ११ सवत् १५८७) को मालवा छीन लिया था ।

सन् ९४१ (सवत् १५९२) मे **हुमायूं**बादशाहने **सुलतानबहादुर**को भगाकर मालवा लिया। सन् ९४२ (सवत् १५९३) मे जब बादशाह मालवेसे **आगरे** और आगरेसे **बंगाले**को **शेरखां पठान**से लडने गये, तो **महमूदखिलजी**के गुलाम **मल्लूखांने** मुगलोको निकालकर मालवेमे अमल कर लिया और **कादरशाह** अपना नाम रख लिया ।

सन् ९४९ (सवत १५९९) मे **शेरखांने** कादिरशाहको निकालकर **शुजाखां**को मालवेमे रक्खा ।

सन् ९६२ (सवत् १६१२) मे **शुजाखां** मर गया। उसका बेटा **बापजीद** मालवेका मालिक होकर **बाजबहादुर** कहलाने लगा ।

सवत १६१८ मे **अकबर**बादशाहके अमीरोने **बाजबहादुर**को निकालकर मालवेको दिल्लीके राज्यमे मिला दिया ।

इस व्यवस्थासे मालूम होता है कि, सवत् १६०८ मे जो शुजाखा मालवेका मालिक था, वह हुमायूका सरदार नहीं **शेरखां**का सरदार था और उस समय **शेरखां**के बेटे **सलीमशाह**के मातहत था ।

जानना चाहिये कि, **कालपी** और **गवालियर बाबर**के समयसे **हुमायूं** बादशाहके अधिकारमे थे। कालपी मे बादशाहका चचा **यादगार**-

शाह हुमायूंको वरवीर[1] ॥ १५ ॥

मूलदासजी उक्त नरवर नगरमें शाहीमोदी बनकर गये और अपना कार्य प्रतिष्ठापूर्वक करने लगे। कुछ दिनके पश्चात् अर्थात् सावन सुदी ५ रविवार संवत् १६०२ को आपको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। जिसका नाम **खरगसेन** रक्खा। दो वर्षके पश्चात् **घनमल** नामके दूसरे पुत्रने अवतार लिया। परन्तु तीन वर्ष जीवित रहके,—

घनमल घन[2]दल उडि गये, कालपवनसंजोग।
मातपितातरुवर तये, लहि आतप सुतसोग ॥ १९ ॥

घनमलके शोक को मूलदासजी झेल नहीं सके और संवत् १६१३ में पुत्रके कुछदिन पीछे पुत्रकी गति को प्राप्त हो गये।

मूलदासकी मृत्युके पश्चात् उनकी स्त्री और बालक दोनों अनाथ हो गये, अनाथिनीको पतिके विना संसार स्मशान सा दिखने लगा परन्तु इतनेसे ही कुशलता न हुई, मुगलसरदार मूलदासका काल सुनकर आया, और उसने इनका घर खालसा करके सब जायदाद

नासिरमिरजा और गवालियरमे **अबुलकासिम** हाकिम था। **नरवर** गवालियरके नीचे था, सो वहा कोई **मुगल**हाकिम रहता होगा, जिसके मोदी **बनारसीदास**जीके दादा **मूलदास** थे। परन्तु सवत् १६०८ मे नरवरका हाकिम मुगल नहीं पठान था, सवत् १६१३ मे मुगल होगा, क्योकि सवत् १६१२ से फिर हुमायूका राज्य दिल्लीमे हो-गया था।

१ अर्द्धकथानककी जो प्रति हमारे पास है, उसमे **वरवीर** शब्दपर **'उमराव'** ऐसी टिप्पणी है।

२ कदाचित् घनसे कविराजने नभका भाव रक्खा है।

जन्त करली! अनाथिनी और भी अनाथिनी होगई। मुगलसरदार की निर्दयताका कुछ ठिकाना था? "मरेको मारै शाह मदार"।

अनाथविधवा इस घोर विपत्तिको वहा रहकर सहन न कर सकी, और अनाथ बालकको पीठपर बॉधके पूर्वदेशकी ओर चल पड़ी। और नानाप्रकारके पथसकटोंको झेलती हुई, कुछ दिनोंके पश्चात् जौनपुर शहरमें पहुची। जौनपुरमें अनाथिनीका पीहर था। यहा के प्रतिष्ठित रहीस चिनालिया गोत्रज मदनसिहजी जौंहरी की यह भतीजी थी। मदनसिहजी पुत्रीको पाकर प्रसन्न हुए और उसकी दुर्दशा सुनकर बहुत दु:खी हुए। पीछे दिलासा देके पुत्रीको समझाया कि, एक पुत्रसे सब कुछ हो सक्ता है, सुखदु:ख वृक्षकी छायाके समान हैं। पुत्र की रक्षा कर और सुखसे रह। यह घर द्वार सब तेरा है।

जौनपुर गौमती नदीके किनारे वसा हुआ है। पठान वंशोद्भव जोनाशाह सुलतानने इस नगरको वसाया था, इस कारण इसका नाम जौनपुर हुआ। उस समय जौनपुरराज्यका विस्तार पूर्वमें पटना पश्चिममें इटावा दक्षिणमें विध्याचल और उत्तरमें हिमालय तक था। कविवरने इस नगरका वर्णन स्वत. देखकर वहुत लिखा है। परन्तु विस्तारभयसे हम उसे छोडे देते है, और बादशाहो की नामावली जो एक जानने योग्य विषय है, लिखे देते है,—

प्रथमशाह **जोनाशाह** जानि।
दुतिय **बबक्कर** शाह बखानि॥ ३२॥
त्रितिय भयो **सुरहरसुलतान**।
चौथो **दोस्तमुहम्मद** जान॥

पंचम भूपति शाह **निजाम** ।
छट्ठमशाह **विरांहिम**[1] नाम ॥ ३३ ॥
सत्तम साहिव शाह **हुसेन** ।
अट्ठम **गाजी** सज्जितसैन ॥
नवमशाह **वख्यासुलतान** ।
वरती जासु अखंडित आन ॥ ३४ ॥

---

१ वनारसीदासजीने जोनपुरके वादशाहोंके ये ९ नाम लिखे हैं—

१ जोनाशाह	२ ववक्कर	३ सुरहर
४ दोस्तमुहम्मद	५ शाहनिजाम	६ शाहविराहीम (इब्राहीम)
७ शाहहुसेन	८ गाजी	९ वख्यासुलतान

इन वादशाहोका पतालगानेकेलिये फारसीतवारीखोमे जोनपुरका हाल ढूढकर ऊपरके लेखसे मिलाया तो, कुछ और ही पाया, और नाम भी कुछ और ही पाये । नाम उन तवारीखो के ये है—

१ आईनअकवरी २ तारीख निजामी ३ तारीख फरिशता ४ तारीख फीरोजशाही ५ सेरुलमुताखरीन ६ जुगराफिये व तारीखजोनपुर वगैरः—

इनमे सवसे पुरानी फीरोजशाही है । इन तवारीखो मे जो विवरण जौनपुरकी सलतनतका लिखा है, उसका साराश यह है कि—

खिलजियोंका राज्य जानेपर **तुगलक**जातिका दिल्लीमे उदय हुआ । पहिला वादशाह इस घरानेका **गाजी** तुगलक पजावका सूबेदार था, जो कि–ता० १ शावान सन् ७३१ (भादोसुदी ३ सवत् १३७८)को सब अमीरोकी सलाहसे दिल्लीके सिहासनपर बैठा था। और रवीउलअवल सन् ७३५ (फाल्गुण सुदी और चैत्रवदी सवत् १३८१) मे मरा।

उसका वेटा मलिक **फखरुद्दीनजोना** सुलतान **नासिर-**

उलदीन मुहम्मदशाहके नामसे तख्तपर बैठा। इसीको **मुहम्मद-तुगलक** भी कहते हैं। यह २१ मुहर्रम सन् ७५२ (चैतवदी ८ सवत् १४०७) को सिधमे मर गया।

मुहम्मदतुगलकके वेटा नही था, इसलिये उसके काका सालार रज्जवका वेटा **फीरोजशाहवारवुक** वादशाह हुआ। इसने सन ७७४ (सवत् १४२९) मे वगालेसे लोटते हुए, गोमतीनदीके तीरपर १ अच्छी समचौरस जमीन देखकर वहा शहर वसाया, और उसका नाम अपने चचेरेभाई **मुहम्मदतुगलक**के असली नाम **मलिकजोना**के नामसे **जोनपुर** रक्खा, क्योकि उसने स्वप्नमे मलिकजोनाको यह कहते हुए देखा था कि, इस शहरका नाम मेरे नामपर रखना।

फीरोजशाह १३ रमजान सन् ७९० (भादो सुदी १५ सवत् १४४५) को ९० वर्षका होकर मरा। उसका पोता दूसरा **ग्यासुद्दीन तुगलक** वादशाह हुआ। वह २१ सफर सन् ७९१ (फागुण वदी ८ स० १४४५) को मारा गया। उसका चचेराभाई **अवूवक** उसकी जगह बैठा। वह भी २० जिलहिज्ज सन् ७६१ (पौष वदी ७ सवत् १४[illegible]७) को मर गया। तव उसका काका **नासिरउलदीन मुहम्मदशाह** वादशाह हुआ। वह १७ रवीउलअव्वल सन् ७९६ (फागुण वदी ४ सवत् १४५०) को मर गया। उसका वेटा **हुमायूंखां** १९ को तख्त पर बैठा और १॥ महीने पीछे ही मर गया। तव उसके भाई **नासिर-उलदीन महमूदशाह**को **ख्वाजाजहां** वजीरने उसकी जगह वैठाया। इसने पूर्वके हिन्दुओंका स्वतत्र हो जाना सुनकर **ख्वाजाजहां**को उनके ऊपर भेजा। यही पहिला वादशाह **जोनपुर**का हुआ। इसका नाम मलिक **सरवर** था और फीरोजके समयमे ड्योढीका दारोगा था। नासिरउद्दीन-मुहम्मदशाहने इसको वजीर वनाकर ख्वाजाजहाका खिताव दिया था और जब नासिरउद्दीन **महमूदशाह**ने इसे पूर्वको भेजा, तो **सुलतानु-लशर्क**का खिताव भी उसको दे दिया था, जिसका अर्थ होता है पूर्वका वादशाह।

जोनपुरके शाह ।

१ सुलतानउलशर्क **ख्वाजाजहांने** हिन्दुओंपर जीत पाकर **जोनपुरमें** अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने **कोल** से **तिरहुत** तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६। ५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, करनफल नाम १ लडकेको बेटा बनाया था। वही उसके पीछे जोनपुरका बादशाह हुआ और **मुबारिकशाह** नाम रक्खा।

२ **मुबारिकशाह**—तुगलकोंकी बादशाही दिन २ गिरती देखकर पूरा स्वतंत्र होगया। २ वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८।५९) में मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तख्तपर बैठा।

३ **इब्राहीमशाह** (मुबारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिल्ली तुगलकोंसे **सैयदोंने** ले ली। पहिले सैयद **खिजरखां** और फिर सैयद **मुहम्मदशाह** वहाका बादशाह हुआ। **इब्राहीम** दोनोंसे ही लडता लडता सन् ८४४ (संवत् १४९६ में) मर गया।

४ **महमूदशाह** (सुलतान **इब्राहीम**का बेटा)—इसके समयमें दिल्लीका बादशाह **मुहम्मदशाह** मर गया और **अलाउद्दीन**शाह बैठा। अमीरोंने उससे नाराज होकर **महमूदशाह** को बुलाया, तब **अलाउद्दीन** पंजाबके हाकिम **बहलोललोदी**को दिल्ली सोंपकर **बदाऊं** चला गया। बहलोलसे और महमूदसे लडाई होती रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत् १५१४।१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तख्त पर बैठा।

५ **मुहम्मदशाह** (महमूदका भाई)-इसने **बहलोल**से सुलह कर ली, परन्तु फिर लडाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयों के झगडेमें मारा गया। ५ महीने राज्य किया। उसका भाई **हुसेनशाह** बादशाह हुआ।

६ **हुसेनशाह**—इससे और **बहलोल**से भी बडे २ युद्ध हुए, निदान बहलोलने जोनपुर लेकर अपने बडे बेटे **बारबुक**को दे दिया। हुसेनशाह विहारमें चलागया।

७ **बारबुक**शाह लोदी–सन् ८९४ (संवत् १५४५।४६) में बहलोल

मरा और छोटा वेटा **निजामखां** दिल्लीमे वादशाह हुआ और सुलतान **सिकंदर** कहलाया। वारवुक उससे लडने गया और हारा। सिकदरने जोनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिन के जुलमोसे जोनपुर राज्यके आश्रित राजोने तग होकर सुलतान **हुसेन**को बुलाया। वह सन् ८९५ (सवत् १५४६।४७) मे आकर **सिकंदरसे** लडा, परन्तु हारकर वगालेमे चला गया। सिकदर अपने वेटे **जलालखां**को जोनपुरमे बैठाकर चला गया।

८ **जलालशाह** लोदी—७ जीकाद सन् ९२३ (मगसर सुदी ८ सवत् १५७३) को सिकदर मरा और जलालशाहका भाई **इब्राहीम**शाह दिल्लीके तख्तपर बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जोनपुर **दरियाखां**लोहानीको दे दिया।

९ **दरियाखां**लोहानीके समयमे **वावर** वादशाहने सुलतान **इब्राहीम**को मारकर दिल्ली लेली। उसी समय दरियाखा भी मर गया।

१० **वहादुरशाह** (दरियाखाका वेटा)-वापके पीछे वादशाह हो गया। क्योंकि पठानोकी वादशाही दिल्लीसे जाती रही थी। बावर वादशाहने शाहजादे **हुमायूं**को भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर **हिंदूवेग**को जोनपुरमे रख दिया। उसके पीछे **वावावेग** उसका वेटा जोनपुरमें हाकिम हुआ।

११ **वावावेग**को, **शेरखांसूर**ने, हुमायू बादशाहसे वादशाही लेनेके पीछे जोनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे **आदिलखां**को जोनपुरका हाकिम बनाया।

१२ **आदिलखांसूर**–१२ रवीउल अव्वल सन् ९५२ (जेठ सुदी १४ सवत् १६०२) को शेरशाहके मरनेपर **सलीमशाह** तखतपर बैठा, उसने आदिलखाको वुलाकर वयानेका किला दे दिया और जोनपुर खालसे कर लिया। फिर जोनपुर स्वतन्त्र राज्य नहीं हुआ, पठानोके पीछें मुगलोके राज्यमे भी वहा हाकिम रहते रहे।

यह जोनपुरका सक्षिप्त इतिहास है। जिन्होंने इतिहास नहीं देखा है,

वे यही जानते हैं कि, जोनपुर **जोनाशाह** (मुहम्मद तुगलक) ने वसाया था, और यही सुनसुनाकर **बनारसीदास**जीने भी पहिलाबादशाह **जोना-शाह** लिखा है। यह बात कविवरके ३०० वर्ष पहिले की थी, और सो भी किसी इतिहासके आधारसे नही लिखी थी, पुराने लोगोंसे पूछ पाछके लिखी थी, उसमें इतनी भूल होना सभव है। उन्होंने इस विपयमे स्वत. सशकित चित्त होकर लिखा है।

"हुते पूर्व पुरुपा परधान। तिनके वचन सुने हम कान।
बरनी कथा यथाश्रुत जेम। **मृषादोष** नहिं लागे एम" ३७८॥

(अर्धकथानक)

इस प्रकार **प्रथम** बादशाह जौनाशाह नहीं, किन्तु फीरोजशाहको सम-झना चाहिये। **दूसरा** जो बबक्करशाह लिखा है, वह फीरोजशाह **बार-बुक** है। बारबुकका अपभ्रश बबक्करशाह हो सक्ता है।

तीसरा—जो **सुरहर** सुलतान लिखा है, वह **ख्वाजाजहां** है, जिस का नाम मलिक **सरवर** था, सरवर ही गलतीसे सुरहर लिखा गया है।

चौथा—जिसको **दोस्तमोहम्मद** लिखा है, वह मुबारिकशाह है, जिसका नाम **करनफल** था। शायद जोनपुरवाले उसे **दोस्तमुह-म्मद** कहते थे।

पांचवां—जिसको शाहनिजाम लिखा है, उसका पता मुबारिकशाह और इब्राहीमके बीचमे कुछ नहीं लगता।

छट्ठा—जो शाहब्राहीम लिखा है, वह **इब्राहीम**शाह ही है।

सातवां—जिसे **शाहहुसेन** लिखा है, वह इबराहीमशाहके बेटे महमूद और पोते मुहम्मदशाहके पीछे हुआ था। बीचके इन दों बादशाहोको **बनारसीदास**जीने नहीं लिखा है।

आठवां—जो गाजी लिखा है, वह सैय्यद **बहलोललोदी** है। **शाहहुसेन**के पीछे वही जोनपुरका मालिक हुआ था।

नवमॉ जो बख्यासुलतान लिखा है, यह बहलोलका बेटा बारबुक-शाह हो सक्ता है। जिसे बापने जोनपुरका तख्त दिया था।

बालक **खरगसेन** अपने नानाके घर सुखसे रहने लगा। आठ वर्षकी उमर होने पर उसने पढना प्रारंभ किया और थोडे ही दिनोंमें हिसाब किताब चिट्ठीपत्रीकेकार्यमे व्युत्पन्न हो गया। योग्य वय होनेपर नानाके साथ सोना चांदी और जैवाहिरातका व्यापार सीखने लगा और व्यापार कुशल होनेपर ग्रामान्तरोंमें भी आने जाने लगा। एक दिन खरगसेनने अपनी मातासे मत्र लेकर नानाकी सम्मतिके बिना ही एक घोडेपर सवार होकर **बंगालकी** ओर कूच कर दिया, और वह कई मंजिलें तय करके इच्छित स्थानपर जा पहुचा। उस समय

इस तरह बनारसीदासजीके लेखकी विधि मिल सकती है।

१ जोनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो भी सही है क्योंकि जोनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बडा भारी शहर था, और जब वहा बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली ही बना हुआ था, ४ कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जोनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमे जोनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परन्तु अब अगरेजी अमलदारीमें जोनपुर ५ ही तहसीलोका जिला रह गया है।

जोनपुरकी बस्ती अकबरके समयमे कितनी थी, इसका पता जुगराफिये (भूगोल) जोनपुरसे मिलता है। उसमे लिखा है कि, अकबर बादशाहने गरीबोकी आखोका इलाज करनेकेलिये एक हकीमको भेजा था, वह गरीबोका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोको मोल लेकर दवा देता था। तौ भी हजार पद्रहसौ रुपये रोजकी उसको आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोने जब उससे कहा कि, आज तो ५००, का ही सुरमा विका है, तब उसने एक बडी आह भरी और कहा हाय! जोनपुर वीरान (ऊजड) हो गया। फिर वह उसी दिन **आगरे**को चला गया।

बगालमें सुलेमान सुलतान राज्य करता था। सुलेमान अपने साले लोदीखानपर बहुत प्यार करता था, और उसे अपने पुत्रके स्थानापन्न मानता था। सुलेमानके कोई पुत्र नहीं था। उक्त लोदीखानके दीवानका नाम धन्नाराय श्रीमाल था। दीवान बडा उदारशील और कृपालु था। उसका आश्रयपाकर ५०० श्रीमाल वहां निवास करते थे। खरगसेनजी इन्हींकी सेवामें जाकर उपस्थित हुए। खरगसेनकी आयु अब भी छोटी थी। परन्तु वाक्पटुता और विचारशीलता देखके थोडे दिन अपने आश्रित रखके दीवान साहिबने इन्हें चार परगनोंका पोतदार बना दिया। खरगसेन परगनोंमें जाके अमलदारी करने लगे। छह सात महीनेके पीछे दीवान साहिबने शिखरजीकी यात्राका सघ चलाया, और कुछ दिनोमे वे यात्रासे लौटके घर आ गये। उस दिन सामायिक करते २ उदरशूल उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही उनका प्राण पखेरू उड गया। कविवर कहते हैं—

पुण्यसंजोग जुरे रथपायक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मानि विभौ अगयो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह लेले॥
बंध बढाय करी थिति पूरन, अन्त चले उठि आप अकेले।
हारि हमालकी पोटसी डारिकै, और दिवालकी ओट ह्वै खेले॥

---

१ **सुलेमान** किरानी जातिका पठान था। वह हिजरीसन् ९५६ (सवत् १६०६ से सन् ९८१ (सवत् १६३०) तक बगालका स्वतत्र हाकिम रहा था। उसकी राजधानी **गोड़में** थी, जो बगालका एक पुराना शहर था और जिसपरसे बगालको अब तक **गोडबंगाल** कहते है, और पहिले गौडदेश भी कहते थे। कविवरने सवत् १६२५ मे बगालका राजा शाहसुलेमानको लिखा है, सो बहुत ठीक है। पीछे सन् ९८३ (सवत् १६३२) मे अकबरकी फौजने **सुलेमान**के बेटे **दाऊदखांसे बंगाला** और **उड़ीसा** छीन लिया।

खरगसेन अपनी मातासे नरवरकी विपत्तिका हाल सुन चुके थे, रायसाहबके शरीरपात होनेपर उन्हे वही बात स्मरण हो आई, इसलिये जो कुछ जमा पूजी साथमें थी, उसे लेकर एक दुःखी दरिद्रीका वेष बनाकर वहासे निकल पडे। कई दिनमें मार्ग चलके जौनपुरमे आये। माताके चरणोकी पूजा की। जो कुछ द्रव्य था, उन्हें सोंप दिया और विपत्तिका कारण बतलाया। इस समय खरगसेनकी वय केवल १४ वर्षकी थी, माताने आसू भरके रो दिया।

चार वर्ष जौनपुरमें रहके संवत् १६२६ में खरगसेन आगरे मे व्यापार निमित्त आये। **सुन्दरदास** पीतिया नामक किसी व्यापारीके सांझेमे व्यापार किया। उक्त साझीदारसे ऐसी मित्रता हुई कि, दोनोंकी प्रीति देखकर लोग दोनोको पिता पुत्र समझते थे। चार वर्षके साझेमे बहुतसा द्रव्य एकत्र किया, और पाचवे वर्ष माता और गुरुजनोंके प्रयत्नसे **मेरठनगरके सूरदासजी** श्रीमालकी कन्याके साथ खरगसेनका विवाह हो गया। विवाह होनेके पश्चात् फिर **अर्गलपुर** (आगरा) आकर व्यापार में दत्तचित्त हो गये।

इसी समय अर्थात् संवत् १६३१ मे मित्रवर्य सुन्दरदासजी अपनी भार्याके सहित परलोकयात्रा कर गये, और अपने पीछे मात्र एक पुत्री छोड गये। खरगसेनजी उदारचरित्र पुरुप थे, उन्होंने अपनी ओरसे वडे साजबाजसे मित्रकी पुत्रीका विवाह कर दिया, और पंचोंके सम्मुख सुन्दरदासजीकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुत्रीको सोप दी।

सवत् १६३३ में खरगसेनने आगरा छोड दिया और वे विपुल सम्पत्तिके अधिकारी होकर जौनपुरमे रहने लगे। पीछे जौनपुरके प्रसिद्ध

धनिक लाला रामदासजी अग्रवालके साथ साझेमें जवाहिरात का धंदा करने लगे ।

संवत् १६३५ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु आठ दश दिन जीवित रहके अपनी वाट लग गया । पुत्रके मरनेका खरगसेनको बहुत शोक हुआ । थोडे दिनके पीछे पुत्रलाभकी इच्छासे वे रोहतकपुरकी सती की यात्रा करनेको सकुटुम्ब गये । परन्तु भाग्यके फेरसे मार्गमें चोरोंने सर्वस्व लूट लिया, एक फूटी कौडी भी पास मे नहीं रही । दम्पती बडी कठिनतासे अपने शरीरको लेकर घर लौटके आये । कविवर कहते है—

गये हुते मांगनको पूत । यह फल दीनों सती अऊत ।
प्रगट रूप देखे सब सोग । तऊ न समुझे मूरखलोग ॥

खरगसेनके नाना मदनसिंघजी बहुत वृद्ध हो गये थे, इसलिये उन्होंने सब कार्य खरगसेनको सोंप दिया था, और आप शान्तिभावसे कालयापन करते थे । सवत् १६४१ में शान्तिभावके साथ उनका शरीर छूट गया । नानाकी मृत्युके दो वर्षके पश्चात् अर्थात् सवत् १६४३ में खरगसेनजी पुत्रलाभकी इच्छासे फिर सतीकी यात्राको गये । अबकी वार कुशल हुई कि, आनन्दसे लौट आये । और थोड़े दिनके पीछे उनकी मनःकामना भी पूर्ण हो गई । आठ वर्षके पश्चात् पुत्रका मुह देखा, इस लिये सविशेष आनन्द मनाया गया । दम्पति सुखससुद्रमें गोते लगाने लगे । पुत्रका जन्मकाल और नाम नीचेके पद्यसे प्रगट होगा,—

संवत् सोलह सौ तेताल । माघमास सितपक्ष रसाल ।
एकादशी वार रविनन्द । नखत रोहिणी वृपको चन्द ॥

रोहिनि त्रितिय चरनअनुसार। खरगसेन घर सुत अवतार।
दीनों नाम विक्रमाजीत। गावहिं कामिनि मंगलगीत ॥

पुत्र जब छह सात महीनेका हुआ, तब खरगसेन सकुटुम्ब पार्श्वनाथकी यात्राको काशी गये। भगवत्की भावपूर्वक पूजन करके उनके चरणोंके समीप पुत्रको डाल दिया और प्रार्थना की,—

चिरंजीवि कीजे यह बाल। तुम शरणागतके रखपाल।
इस बालकपर कीजे दया। अब यह दास तुम्हारा भया ८८

प्रार्थना करते समय मन्दिरका पुजारी वहा खड़ा था। उसने थोड़ी देर कपटरूप पवनसाधने और मौनधारण करनेके पश्चात् कहा कि, पार्श्वनाथ भगवानका यक्ष मेरे ध्यानमें प्रत्यक्ष हुआ है, उसने मुझसे कहा है कि, इस बालककी ओरसे कोई चिन्ता न करनी चाहिये। परन्तु एक कठिनता है, सो उसके लिये कहा है कि,—

जो प्रभु पार्श्वजन्मको गांव। सो दीजे बालकको नांव॥९१॥
तो बालक चिरजीवी होय। यह कहि लोप भयो सुर सोय॥

खरगसेनने पुजारीके इस मायाजालको सत्य समझ लिया और प्रसन्न होकर पुत्रका नाम बनारसीदास रख दिया। यही बनारसीदास हमारे इस चरित्रके नायक हैं।

बाल्यकाल।

हरषित कहै कुटुम्ब सब, स्वामी पास सुपास।
दुहुंको जनम बनारसी, यह बनारसीदास ॥९३॥

बालक बड़े लाड चावके साथ बढने लगा। मातापिताका पुत्र पर निःसीम प्रेम था। एक पुत्रपर किस मातापिताका प्रेम नहीं होता?

सवत् १६४८ में पुत्र सग्रहणीरोगसे ग्रसित हुआ। मातापिताके शोकका ठिकाना न रहा । ज्यों त्यों मत्र यत्र तंत्रोंके प्रयोगोसे सग्रहणी उपशान्ति हुई कि, शीतलाने आ घेरा । इस प्रकार १ वर्षके लगभग वालक अतीव कष्टमें रहा । शीतला शान्त होनेपर उक्त वालककी पीठपर एक वालिकाका जन्म हुआ ।

संवत् १६५० में वालकने चटशालामें जाकर पाडे रूपचन्द-जीके पास विद्या पढना प्रारभ किया । पांडे रूपचन्दजी अध्यात्मके विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे । उनका वनाया हुआ **पंचमंगलपाठ** एक हृदयग्राही श्रेष्ठ काव्य है । सारे जैनसमाजमें इसका प्रचार है । जैनी मात्रको यह कठस्थ रहता है । वालककी बुद्धि वहुत तीक्ष्ण थी, वह दो तीन वर्षमें ही अच्छा व्युत्पन्न हो गया ।

जिस समयका यह इतिहास है, उस समय मुसलमानोंका प्रताप-सूर्य मध्याह्नमें था, उनके अत्याचारोंके भयसे देशमें वालविवाहका प्रचार विशेषतासे हो रहा था । अतएव ९ वर्षकी वयमे अर्थात् सवत् १६५२ में **खैराबाद**के शेठ कल्यानमलजीकी कन्याके साथ वालककी सगाई कर दी गई । संवत् १६५३ में एक वडा भारी दुष्काल पड़ा, लोग अन्नकेलिये वेहाल फिरते दिखाई दिये । अतः इस वर्ष विवाह नहीं हुआ । जब दुष्काल क्रम २ से शात हो गया, तव सवत् १६५४ में माघ सुदी १२ को **वनारसीदास**-की वरात **खैराबाद**को गई । विवाह शुभमुहूर्तमें आनन्दके साथ हो गया । वरात लौटके घर आ गई । जिस दिन वरात घर आई उसदिन खरगसेनजीके एक पुत्रीका और भी जन्म हुआ, और उसी दिन वृद्धा नानीने कूच कर दिया! कवि कहते है,—

नानीमरन सुताजनम, पुत्रवधू आगौन ।
तीनों कारज एक दिन, भये एक ही भौन ॥ १०७॥

यह संसारविडम्बना, देख प्रगट दुख खेद।
चतुरचित्त त्यागी भये, मूढ़ न जानहिं भेद॥ १०८॥

उस समय विवाह होनेपर बरातके साथ ही दुलहिन श्वसुरालयमे आती थी, उसी प्रथाके अनुसार दो महीने वधू जौनपूरमें रही, पश्चात् अपने काकाके साथ लिवाई हुई, पित्रालयको चली गई।

एक बडी भारी विपत्ति आई। जौनपुरके हाकिम कुलीचने

---

१ **कुलीच तुर्की** भाषाका शब्द है, इसका अर्थ मालूम नही है। जिस नवाव **कुलीच**का जुलम जौहरियोपर वनारसीदासजीने लिखा है, उस **कुलीचखांका अकवरनामे** और **जहागीरनामे**के सैकडो पन्ने उलट पुलट करनेसे इतना पता लगा है कि, **कुलीचखां इंदूजान**का रहनेवाला **जानीकुरवानी** जातिका एक तुर्क था। **इंदूजान तूरान** देशका एक शहर है। जो अव शायद **रूस** या **अमीरकावुल**के कवजेमें है।

कुलीचखांके वाप दादा मुगल वादशाहोके नोकर थे। **कुलीचखां**को **अकवरवादशाह**ने सन् १७ जलूसी (सवत् १६२९) में **सूरत**की किलेदारी, और सन् २३ (सवत् १६३५) मे **गुजरात**की सूवेदारी दी थी। सन् २५ (सवत १६३७) में उसे **वज़ीर** वनाया। सन् २८ (सवत् १६४०) में फिर **गुजरात**को भेजा और सन् ९९७ (सवत् १६४६) मे राजा **तोडरमल**के मरनेपर वह दीवान वनाया गया, सो सन् १००२ (सवत् १६५०) तक रहा। इसी बीचमें सन् १००० (सवत् १६४८) में **जोनपुर** भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। सन् १००५ (सवत् १६५३) में वादशाहने शाहजादे **दानियाल**को इलाहावासके सूवेमे भेजा, तो कुलीचखाको उसका अतालीक (शिक्षक) करके साथ किया। उसकी वेटी शाहजादेको व्याही थी।

फिर सन् ४४ (१६५६) मे **आगरे**की, और सन् ४६ (१६५८) में **लाहौर** तथा **कावुल**की सूवेदारी उसको दी गई।

सम्पूर्ण जौहरियोंको पकड़वाके बुलवाया, और एक बड़ा भारी नग मांगा, परन्तु उस समय जौहरियोंके पास उतना बड़ा जितना हाकिम चाहता था, कोई नग नहीं था । इसलिये वेचारे नहीं दे सके । इसपर हाकिमका क्रोध और भी उबल उठा । उसने सबको एक कोठरीमें कैद कर दिये । और जब कुछ फल नहीं हुआ तब सबेरे सबको कोडोंसे (दुर्रोंसे) पीट २ के छोड़ दिया । इस अत्याचारसे अतिशय व्यथित होकर सम्पूर्ण जौहरियोंने सम्मतिपूर्वक नगर छोड़ दिया और सब यत्र तत्र चले गये । खरगसेनजीने भी अपने परिवारसहित पश्चिमकी ओर गमन किया । हाय! उस राज्यमें कैसा अन्याय था[1] ।

गंगापार कड़ामाणिकपुरके निकट शाहजादपुर नगर है । वहां तक आते २ मूसलाधार पानी बरसने लगा, घोर अंधकार छा गया । मार्ग कीचड़से पूर्ण हो गये, एक पैड़ चलना भी कठिन हो गया । लाचार शाहजादपुरकी सरायमें डेरा डालना पड़ा । उस

सन् १०१४ (संवत् १६६७)मे जहांगीर बादशाहने उसको गुजरातमें बदल दिया, और सन् १०१६ (संवत् १६६२) में वह फिर लाहोर भेजा गया ।

सन् ६ जहांगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहां सन् १०२३ (संवत् १६७१) मे मर गया ।

बनारसीदासजीने जो संवत् १६५५ मे कुलीचखांका जोनपुरमे होना लिखा है, सो सही है । क्योकि प्रथम तो जोनपुर कुलीचखांकी जागीरमें ही था । दूसरे संवत् १६५३ में उसकी तईनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जोनपूर भी था ।

समयके कष्टसे कातर होकर खरगसेन दीन अनाथोंकी नाईं रोदन करने लगे। उन्हे स्त्री पुत्र कन्या और विपुलसम्पत्तिकी रक्षा असंभव प्रतीति होने लगी। परन्तु उदय अच्छा था। उस नगरमें करमचन्द नामक माहुरवणिक था। वह एक परमसज्जन पुरुष था, और खरगसेनकी पहिचानका था। वह इनकी विपत्तिकी टोह पाकर दौड़ा हुआ आया, और प्रार्थना करके खरगसेनको सपरिवार अपने गृह ले गया। करमचन्दने बडे आग्रहसे अपना धनधान्यपूर्णगृह खरगसेनको सोप दिया और आप दूसरे गृहमे रहने लगा। खरगसेनने गृहकी धान्यादि प्रचुरसामग्री न लेनेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सच्चे मित्रके प्रेमके आगे उनके आगृहका कुछ फल नहीं हुआ। कविवर कहते हैं—

घन वरसै पावस समै, जिन दीनों निजभौन।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसों वरनै कौन? ॥१२८॥

शाहजादपुरमें खरगसेन सपरिवार सुखसे रहने लगे, और मित्रके अगाध प्रेमका उपभोग करने लगे। पूर्व की विपत्ति सर्वथा भूल गये। इस भूलनेपर अध्यातमके रसिया कविवरने कहा है,—

वह दुख दियो नवाव कुलीच।
यह सुख शाहजादपुर वीच॥
एकदृष्टि वहु अन्तर होय।
एकदृष्टि सुख दुख सम दोय॥
जो दुख देखे सो सुख लहै।
सुख भुंजै सोई दुख लहै॥
सुखमे मानै मैं सुखी, दुखमें दुखमय होय।
मूढपुरुषकी दृष्टिमे, दीसै सुख दुख दोय॥

ज्ञानी संपति विपतिमें, रहै एकही भांति ।
ज्यों रवि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति॥१३०॥

खरगसेनजी शाहजादपुरमें १० महीने रहकर प्रयागको जिसे उस समय इलाहाबास[1] भी कहते थे और जो त्रिवेणीके तटपर बसा है, व्यापारके लिये गये। परन्तु कुटुम्बको शाहजादपुरमें ही छोड़ गये। उस समय अकबरका शाहजादा (जहांगीर) प्रयागमें ही रहता था।

पिताके चले जानेपर इधर बनारसीदासने कौड़ियां बट्टे से खरीदकर बेचनेका व्यापार सीखना प्रारम्भ किया। प्रतिदिन टके दो टके कमाना और चार छह दिन पीछे अपनी दादीके सम्मुख लाकर रखना, ऐसा नियम किया। कौड़ियोंकी कमाईको भोली दादी अपने पौत्रकी प्रथम कमाई समझकर उनकी सीरनी और निकुती लाकर सतीके नामसे बांट देती थी। दादीके भोलेपनके विषयमें कविवरने बहुत कुछ लिखा है। उसका सारांश यह है कि "हमारी दादीके मोह और मिथ्यात्वका ठिकाना नहीं था, वे समझती थीं, कि यह बालक (बनारसी) सती जी की कृपासे ही हुआ है। और इसी विचारमें रात्रि दिवस मग्न रहती थीं। रात्रिको नित्य नये २ स्वप्न देखती थीं, और उन्हे यथार्थ समझके तदनुसार आचरण भी करती थीं।"

तीन महीनेके पीछे खरगसेनजीका पत्र आया कि, सबको लेकर फतहपुर चले आओ। ऐसा ही हुआ, दो डोली किरायेसे करके और सब सामान लेके बनारसी पिताकी आज्ञानुसार फतहपुर आ गये। फतहपुरमे दिगम्बरी ओसवाल जैनि-

1 इलाहाबाद।

योका वडा समूह था, उनमें वासूसाहजी मुख्य थे। वासूसाह अध्यात्मके अच्छे विद्वान् थे। इनके पुत्र भगवतीदासजीने बनारसीदासजीका सत्कार किया, और एक उत्तम स्थान रहनेको दिया। खरगसेनजीका कुटुम्ब फतहपुरमें आनन्दसे रहने लगा परन्तु कुछ दिन पीछे ही उन्होंने पत्र लिखके बनारसीदाससहित इलाहाबाद बुला लिया। इलाहाबादमे उस समय जवाहिरातका व्यापार अच्छा चटका था। दानाशाह सरकारकी जवाहिराती फरमायशको खरगसेन ही पूरी करते थे। पितापुत्र चार महीने इलाहाबाद रहे, पश्चात् फतहपुर आके कुटुम्बसे मिले। इसी समय खबर लगी कि, नबाबकुलीच आगरेको चला गया है, जौनपुरमें सब

१ ये **भगवतीदास**जी कविता भी करते थे, परन्तु **ब्रह्मविलास** के निर्माता ये नहीं है। क्योंकि ब्रह्मविलासके कर्ताके पिताका नाम **लालजी** था, और इनके पिताका नाम **वासूसाह** था। ब्रह्मविलासके कर्त्ता **आगरा**के रहनेवाले थे, और ये जौनपुरके थे। इसके अतिरिक्त **ब्रह्मविलास**ग्रन्थकी रचना सवत् १७५० मे हुई है और यह समय १६५० का है। पुरुषका इतना वडा जीवन होना असम्भव है। नाटक समयसारके अन्तमे भी एक **भगवतीदास**का नाम आया है, जो आगरेमें रहते थे, और उक्त कविवरके पाच मित्रोमे अन्यतम थे।

> **रूपचन्द** पडित प्रथम, दुतिय **चतुर्भुज**नाम।
> तृतिय **भगवतीदास** नर, **कॅवरपाल** गुणधाम॥ ११॥
> **धर्मदास** ये पाचजन, × × × × ×

अथवा जौनपुरके भगवतीदासजी ही कदाचित् ये हों, और आगरेमे आ रहे हों।

२ दानाशाह कौन? कही **शाहदानियाल** तो नही जो अकवर बादशाहका छोटा शाहजादा था और इलाहावासमें कुछ दिनो तक रहा था। कुलीचखा उसका अतालीक (गार्डियन) था।

प्रकार शांति है । खरगसेनजी सकुटुम्ब जौनपुर चले आये । अन्य जौहरी आदि जो भाग गये थे, वे भी सब आ गये थे, और जौनपुर फिर ज्यों का त्यों आबाद हो गया था । सब लोग अपने २ कृत्यमें लग गये, और प्रायः एक वर्षतक जौनपुरमें शान्ति रही । यह समय संवत् १६५६ का था । इसके थोडे दिन पीछे ही एक नवीन विपत्ति आई ।

अकबरका शाहजादा सलीमशाह[1] जो पीछे जहांगीरके नामसे विख्यात हुआ, कोल्हूवनकी आखेटको निकला था । कोल्हूवन जौनपुरके पास है । जौनपुरके नूरमसुलतानके[2] पास इसी समय शाहीफरमान आया कि, शाहजादा तुम्हारे तरफ आ रहा है, कोई ऐसा उपाय करो, जिसमें उसका कोल्हूवनका जाना बन्द हो जावे । नूरमसुलतानने शाहीफरमान सिरपर चढ़ाया, और एक विचित्र उपाय बनाया । जहां तहांके सब मार्ग रोक दिये । शहरके आवागमनके दरवाजे बन्द करा दिये । गोमतीमें नौकायें चलाना बन्द करा दी, और आप गढ़में जाके बैठ गया । बुर्जोंपर तोपें चढवा दी । बन्दूक गोलीबारूदोंका भंडार खोल दिया । इस प्रकार विग्रहका ठाठ देखके प्रजाने भागना प्रारंभ किया । कुछ समझदार धनाढ्य लोगोंने मिलकर सुलतानसे प्रार्थना की, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ, इसलिये वे लोग भी भागे । और थोडे ही समयमें वह महानगर ऊजड़ हो गया । खरगसेनजी भी सकुटुम्ब

---

१ सुलतान **सलीम**को बापने ६ मुहर्रम सन १००८ (आसोजवदी १४ संवत् १६५५) को राना अमरसिंहके ऊपर जानेका हुक्म दिया था, मगर वह बागी होकर इलाहाबास चला गया और फिर बागी ही रहा ।

२ **नूरमसुलतान कुलीच**के पीछे जोनपुरका हाकिम हुआ था ।

भागनेवालोंके साथी हुए, और लछमनपुर नामक ग्राममें चौधरी लछमनदासजीके आश्रयसे जा ठहरे और विपत्तिके दिन गिनने लगे।

सलीम शाहजादा जौनपुरके पास आ पहुचा, परन्तु जब गोमती उतरने लगा, और यह विग्रह देखा, तो कुछ चिंतित हुआ और अपने वकील लालबेगको नूरमसुलतानके पास भेजा। वकीलने सुलतानके पास जाकर दश पाच नर्म गर्म बातें कहीं और शाहजादेके पास उसे ले आया। नूरमसुलतान शाहजादेके पैरोंपर पड गया, तब शाहजादेने गुनह माफ करके अभयदान दिया। नगरमे फिर शान्ति हो गई, भागे हुए लोग पुनः आ गये। खरगसेनजी भी ६-७ दिन लछमनपुरमें रहकर लौट आये, और अपने व्यवसायमे निरत हो गये।

---

१ यह विग्रह क्यों किया गया? इसका फल क्या हुआ? और शाहजादा कैसे मान गया? तुजकजहांगीरीकी भूमिकामें जो हाल जहागीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सक्ता है। उसमें लिखा है कि, तारीख ६ महर सन् १००७ (आसोजवदी १४ सवत् १६५५) को अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेके लिये गये और अजमेरका सूबा शाहसलीमको जागीरमे देकर रानाको सर करनेका हुक्म दे गये। शाहकुलीचखा महरम और राजा मानसिंहकी नोकरी इनके पास बोली गई। बगालेका सूबा जो राजाको सौंपा हुआ था, राजा अपने बडे बेटे जगतसिंहको सौंपकर शाहकी खिदमतमें रहने लगा।

शाहसलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड गया था, और सिपाहियोंको पहाडोमे भेजकर रानाके पकडनेकी कोशिश करने लगे।

यहा खुशामदी और स्वार्थी लोग जो नीचे नहीं बैठा करते है, इनके कान भरा करते थे कि, बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे है और वह मुल्क एकाएकी हाथ आनेवाला नही है, और वे भी वगैर लिये पीछे आनेवाले नही है। इसलिये हजरत जो यहासे लौटकर **आगरे**से परेके आवाद और उपजाऊ परगनोंको ले ले, तो बडे फायदेकी बात हो। वगालेका फिसाद भी कि जिसकी खबरें आ रही है और जो वगैर जाने राजा **मानसिंह**के मिटनेवाला नही है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात **राजामानसिंह**के भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने वगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस वास्ते उसने भी हामे हा मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

शाहसलीम इन बातोंसें रानाकी मुहिम अधूरी छोडकर **इलाहाबाद**को लोट गये। जब **आगरे**में पहुचे तो वहाका किलेदार **कुलीचखां** पेशवाईको आया, उस वक्त लोगोने बहुत कहा कि, इसको पकडलेनेसे आगरेका किला जो खजानोंसे भरा हुआ है, सहजमे ही हाथ आता है, मगर इन्होंने कुबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबासका रस्ता लिया। इनकी दादी हौदेमे वैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिये किलेसे उतरी थी कि, ये नावमे वैठकर जलदीसे चल दिये और वे नाराज होकर लोट आई।

१ सफर सन् १००९ (द्वि० सावन सुदी ३ सवत् १६५७) को **शाहसलीम** इलाहाबादके किलेमे पहुचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर अपने नोकरोको जागीरमें दे दिये। विहारका सूबा **कुतबुद्दीनखां**को दिया। जौनपुरकी सरकार **लालाबेग**को, और **कालपी**की सरकार **नसीमबहादुरको** दी। **घनसूर** दीवानने तीन लाखरुपयेका खजाना विहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि **शाहसलीम**ने जो **लालाबेग**को जोनपुर दिया था, **नूरमसुलतान लालाबेग**को लेने नही देता होगा,

बनारसीदासजीकी वय इस समय १४ वर्ष की हो चुकी थीं, बाल्यकाल निकल गया था, और युवावस्थाका प्रारभ था। इस समय प० देवदत्तजीके पास पढना ही उनका एक मात्र कार्य था। धनजयनाममालादि कई ग्रन्थ वे पढ चुके थे। यथा—

पढी नाममाला शतदोय। और अनेकारथ अवलोय।
ज्योतिष अलंकार लघुकोक। खंडस्फुट शत चार श्लोक॥

यौवनकाल।

युवावस्थाका प्रारंभ बहुत बुरा होता है, अनेक लोग इस अवस्थामे शरीरके मदसे उन्मत्त होकर कुलकी प्रतिठा सपति सतति आदि सबका चौका लगा देते हैं। इस अवस्थामें गुरुजनोका प्रयत्न मात्र रक्षाकर सक्ता है, अन्यथा कुशल नही होती। हमारे चरित्र-नायक अपने माता पिताके इकलोते लडके थे, इसलिये माता, पिता और दादीका उनपर अतिशय प्रेम होना स्वाभाविक है। सो असाधारण प्रेमके कारण गुरुजनोंका पुत्रपर जितना भय होना चाहिये, उतना बनारसीदासजीको नही था। फिर क्या था?

तजि कुलकान लोककी लाज।
भयो बनारसि आसिखबाज[1] ॥ १७० ॥

और—

करै आसिखी धरित न धीर।
दरदवन्द ज्यों शेख फकीर
इकटक देख ध्यानसों धरै।
पिता आपुनेको धन हरै ॥ १७१ ॥

जिसपर **शाहसलीम** शिकारका वहाना करके गया था, फिर **नूरसबेग**के हाजिरहोनेपर **लालाबेग**को वहा रख आया होगा।

१ शुद्ध शब्द इश्कबाज है।

चोरै चूनी माणिक मनी।
आने पान मिठाई घनी॥
भेजे पेशकशी हित पास।
आप गरीव कहावै दास॥ १७२॥

हमारे चरित्रनायक जिस समय इस अनंगरगमें सरावोर हो रहे थे, उसी समय जौनपुरमें खडतरगच्छीय यति भानुचन्द्र-जीका आगमन हुआ। यति महाशय सदाचारी और विद्वान् थे, उनके पास सैकडों श्रावक आते जाते थे। एक दिन वनारसीदा-सजी अपने पिताके साथ, यतिजीके पास गये। यतिजीने इन्हें सुवोध देखकर स्नेह प्रगट किया। वनारसीदास प्रतिदिन आने जाने लगे। पीछे इतना स्नेह वढ गया कि, दिनभर यतिके पास हीं पाठ-शालामे रहने लगे। केवल रात्रिको घर आते थे। यतिके पास पच-संधिकी रचना, अष्टौन, सामायिक, पडिकोण (प्रतिक्रमण), छन्द-शास्त्र, श्रुतवोध, कोष और अनेक स्फुटश्लोक आदि विषय कंठस्थ पढे। आठ मूलगुण भी धारण कर लिये, परन्तु इश्क नही छूटा—यथा—

कवहूं आइ शब्द उर धरै।
कवहूं जाइ आसिखी करै।

१ यति भानुचन्द्रजी श्वेताम्बर थे, ऐसा जान पडता है। क्योकि खडतरगच्छ श्वेताम्बरसम्प्रदायका ही है, और अष्टौन आदि विषय भी मुख्यतासे श्वेताम्बरीय हैं, जो कविवर ने उनके पास से पढे थे। परन्तु जान पडता है कि, उस समय दिगम्बर श्वेताम्बरोमें आजकलके समान शत्रुभाव नही था।

पोथी एक बनाई नई ।
मित हजार दोहा चोपई ॥ १७८ ॥
तामें नवरस रचना लिखी ।
पै विशेप वरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि **बनारसि** भये ।
मिथ्या ग्रन्थ बनाये नये ॥ १७९ ॥
कै पढना कै आसिखी, मगन दुहूंरसमाहिं ।
खानपानकी सुधि नहीं, रोजगार कछु नाहिं ॥ १८० ॥

विद्या और अविद्यारूपइश्क इनदोनोंकी संयोगरूप विचित्र भवरमे भ्रमते हुए बनारसीकी आयुके दो वर्ष इस प्रकार शीघ्र ही वीत गये । १५ वर्ष १० माह की वयमें पाउजा (गौना, मुकलावा) करनेके लिये उन्हें खैराबाद जाना पडा । वडे ठाठवाटसे ससुरालमे पहुचे । ससुरालके प्रेमयुक्त आदर सत्कारमें एक मास बीत गया । इतनेहीमें पूर्व कर्मके अशुभ उदयसे पौपमासके शुक्लपक्षमें श्वसुरग्रहवासी बनारसीके चन्दविनिन्दित शरीरको कुष्ट राहुने आकर घेर लिया, युवावस्थाका मनोहरशरीर ग्लानिपूर्ण हो गया । लोग देख २ के नाक भौंह सिकोडने लगे । विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड दिया । यथा—

भयो **बनारसिदास** तन, कुष्टरूप सरवंग
हाड़ हाड़ उपजी वृथा, केश रोम भ्रुवभंग ॥ १२५ ॥
विस्फोटक अगनित भये, हस्त चरण चौरंग ।
कोऊ नर साले ससुर, भोजन करहि न संग ॥ १२६ ॥

ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥१२७॥

खैराबादमें एक नाई कुष्टरोगका धन्वन्तरि था । वह बनारसीकी टहल चाकरी और साथ ही औषधि करता था । उसने दो महीने जी तोड़ परिश्रम करके हमारे चरित्रनायकके राहुग्रसित शरीरको ससारके गगनमडलपर पुनः निर्मल प्रकाशित कर दिया । नाईको यथोचित दान देकर स्वास्थ्यलाभ करके बनारसदासजी घरको लौटे। परन्तु साससुरने अपनी लडकीकी विदाई नहीं की । घर आके—

आय पिताके पद गहे, मा रोई उर ठोकि ।
जैसी चिरी कुरीजकी, त्यों सुतदशा विलोकि ॥
खरगसेन लज्जित भये, कुवचन कहे अनेक ।
रोये बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५ ॥

दश पांच दिनके पश्चात्, फिर पाठशालामें पढनेको जाने लगे और—

"कै पढना कै आसिखी, पहिली पकरी चाल । "

खरगसेनजी इसी समय व्यापारके निमित्त पटनेको चले गये । चार महीने बीत जानेपर बनारसीदासजी फिर ससुरालको गये, और भार्याको लेकर घर आ गये । अब आप गृहस्थ हो गये, इस कारण गुरुजन उपदेश देने लगे ...

गुरुजन लोग देहिं उपदेश ।
आसिखबाज सुनें दरवेश ॥
बहुत पढ़े बामन अरु भाट ।
बनिक पुत्र तो बैठें हाट ॥

बहुत पढ़ैं सो मांगे भीख।

मानहु पूत ! बड़ोंकी सीख ॥ २०० ॥

परन्तु गुरुजनोंके वचनवृन्दरूप ओसके कनूके बनारसीके हृदय-कमलपर उन्मत्तताकी प्रवल वायुके कारण कब ठहरनेवाले थे? बढते हुए यौवन-पयोधिके प्रवाहको क्या कोई रोक सक्ता है? सबका कहा सुना इस कानसे सुना और उस कानसे निकाल दिया, फिर हलकेके हलके हो गये। गुरुजीसे विद्या पढना और इश्कबाजी करना ये दो कार्य ही उन्हें सुखके कारण प्रतीत होते थे। मतिके अनुसार गति हुआ करती है। कुछ दिनके पीछे विद्या पढना भी बुरा जॅचनें लगा। ठीक ही है, विद्या और अविद्याकी एकता कैसी? सवत् १६६० में पढना छोड दिया। इस सवत् में आपकी बहिनका विवाह हुआ और एक पुत्रीने[1] जन्म लिया। पुत्री ६–७ दिन रहके चल बसी। विदाईमें पिताको बीमार करती गई। बनारसीदासजीको बडी भारी बीमारी लगी। बीस लघनें करनी पडीं। २१ वें दिन वैद्यने और भी १०–५ लघनें करानेकी बात कही, और यहा क्षुधाके मारे प्राण जाते थे, तब एक विचित्र रग खेला, रात्रिको घर सूना पाकर आप आधसेर पूरी चुराके उडा गये !!। आश्चर्य है कि, वे पूरी आपको पथ्यका काम कर गई, और आप शीघ्र ही निरोग हो गये। इसी सवत्में खरगसेनजीने एक बडा भारी व्यापार किया, जिसमें कि सौगुणा लाभ हुआ! सम्पत्तिसे घर भर गया।

सवत् १६६१ में एक संन्यासी देवता आये। उन्होने बडे आदमीका लडका समझके बनारसीको फॅसानेके लिये जाल वि-

---

१ इस पुत्रीका नाम टिप्पणीमे वीरबाई लिखा है।

आया। जाल काम कर गया। बनारसी फांस लिये गये। सन्यासीने रंग जमाया कि मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई उसे एक वर्षतक नियमपूर्वक जपे, तथा किसीपर प्रगट न करे, तो साल बीतनेपर गृहद्वारपर प्रतिदिन एक सुवर्णमुद्रा पड़ी हुई पावे। टकनाओंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है। इस कल्पद्रुम मंत्रकी बातसे उनकी लार टपक पड़ी। लगे सन्यासीकी सेवा सुश्रूषा करने, उधर सन्यासी लगा पैसे ठगनेकी बातें बनाने। निदान भरपूर द्रव्य खर्च करके सन्यासीसे मंत्र सीख लिया, और तत्काल ही जप करना प्रारंभ कर दिया। इधर सन्यासीजी मौका पाकर नौ दो ग्यारह हो गये। मंत्र जपते २ एक वर्ष बड़ी कठिनतासे पूर्ण हुआ। प्रातःकाल ही स्नान ध्यान करके बनारसी महाशय बड़ी उत्कंठासे प्रसन्न होते हुए गृहद्वारपर आये। लगे जमीन सूंघने, परन्तु वहां क्या खाक पड़ी थी? । आशा बुरी होती है, सोचा कि कहीं दिन गिननेमें मेरी भूल न हो गई हो, अस्तु एक दो दिन और सही। और भी चार छह दिन सिर पटका परन्तु मुहर तो क्या फूटी कौड़ी भी नहीं मिली। सन्यासीकी तरफसे अब कुछ २ आंखें खुलीं। आपने एक दिन यह अपनबीती गुरु भानुचन्द्रजीको कह सुनाई। गुरूजीने सन्यासीके छल कपटोंको विशेष प्रगट कर कहा, तब आप सचेत हुए।

थोड़े दिन पीछे एक जोगीने आकर अपना एक दूसरा ही रंग जमाया। एक बार शिक्षा पा चुके थे, परन्तु भोले बनारसीपर फिर भी रंग जमते देर न लगी। जोगीने एक शंख तथा कुछ पूजनके उपकरण दिये और कहा कि, यह सदाशिवकी मूर्ति है। इसकी पूजासे महापापी भी शीघ्र ही शिव (मोक्ष) प्राप्त करता

है। भोले बनारसीने जोगीकी बात सिर आंखोंसे मान ली और जोगीकी सेवा सुश्रूषा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेंटादि देके उसे खूब सतुष्ट किया। दूसरे दिनसे ही सदाशिवकी पूजन होने लगी। पूजनके पश्चात् शिव शिव—कहकर एकसौआठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जपमें इतनी श्रद्धा हुई कि, पूजन जप किये विना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवश किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप लूखा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु ध्यान रहै, यह पूजन गुप्तरूपसे होती थी, कोई गृहकुटुम्बी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होती रही। संवत् १६६१ मे मुकीम हीरानदजी ओसवालने शिखरजीको सघ चलाया, गांव २ नगर २ में सघकी पत्रिकायें भेज दी। हीरानंदजी सलीम शाहजादेके जौहरी थे, अतः उस समय इनकी वडी प्रतिष्ठा थी। खरगसेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष पत्र आया, इसलिये ये गगाके किनारे हीरानंदजीसे मिले और हीरानदजीके आग्रहसे वहींके वहीं यात्राको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे; तब उन्होंनें घर सूना पाकर चैनकी गुड्डी उडाना शुरू किया। पिताके जानेपर पूत निरकुश हो गये, और नित्य घरमें कलह मचाने लगे। एक दिन बैठे २ एक सुबुद्धि सूझी कि, पार्श्वनाथकी यात्राको चलना चाहिये। मातासे आज्ञा मागी, परन्तु जब उसने सुनी अनसुनी कर दी, तब आपने दही, दूध, घी, चावल, चना, तैल, ताम्बूल और पुष्पादि पदार्थोंको छोड दिया, और प्रतिज्ञा की कि, जब तक यात्रा नहीं करूंगा, तब तक ये पदार्थ भोगमें नहीं लाऊंगा। इस प्रतिज्ञाको ६ महीने बीत गये। कार्तिकी पूर्णिमा आ गई। शैव लोग गगास्नानको और जैनी पार्श्वनाथकी यात्राको

तव वनारसी भी अवसर पाकर किसीसे विना पूछेताछे उनके साथ हो लिये। वनारसमें पहुंच कर गंगास्नान पूर्वक भगवान् पार्श्वसुपार्श्वकी पूजन दशदिन तक बड़े हावभावसे की। स्मरण रहे कि, सदाशिवकी पूजन वहां भी छोड नहीं दी थी, वह नियमसे होती थी। यात्रा करके संखोली लिये हुए बडे हर्षके साथ घर आ गये। कविवरने अपने जीवनचरित्रमे सदाशिवपूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकारमें इस प्रकार कहा है...

शंखरूप शिव देव, महाशंख वानारसी।
दोऊ मिले अवेव, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७ ॥

रेलतारके कारण जैसी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी उस समय नहीं थी। जो यात्रा आज १० दिनमें पूरी हो जाती है, उस समय उसमें १ वर्ष वीत जाता था। अतः मुकीम हीरानन्दजीका सघ वहुत दिनके पीछे लौटके आया। आते २ अनेक लोग मर गये, अनेक वीमार हो गये, और अनेक लुट गये। खरगसेनजीको उदर रोगने धर दवाया। ज्यों त्यों वडी कठिनतासे सघके साथ अपने घर जौनपुर तक आये। जौनपुरमें सघका खरगसेनजीकी ओरसे यथोचित आतिथ्यसत्कार किया गया, पश्चात् यहींसे सघ विखर गया, सब लोग अपने २ ग्राम नगरोंकी राह लग गये—

संघ फूटि चहुंदिशि गयो, आप आपको होय।
नदी नाव संजोग ज्यों, बिछुर मिलै नहिं कोय २२३

खरगसेनजी घर रहकर धीरे २ स्वास्थ्य लाभ करने लगे। हाटबाजारमें जाने आने लगे और पश्चात् प्रसन्नतासे रहने लगे। यात्रासे आनेके पहिले आपके एक पुत्रने जन्म लिया था, परन्तु वह दो

चार दिनसे अधिक नही ठहरा। इसी समय बनारसीदासके पुत्र हुआ। परन्तु उसकी भी वही दशा हुई।

संवत् १६६२ के कार्तिकमें बादशाह जलालुद्दीन अकबरकी मृत्यु आगरामें हो गई। यह खबर जिस समय जौनपुरमें आई, प्रजाके हृदयमे असीम व्याकुलताका उदय हुआ। इस व्याकुलताके अनेक कारण थे। एक तो आजकलकी नाईं उस समय एक सम्म्राट्का शरीरपात हो जानेपर दूसरा सम्राट् शान्तिताके साथ राज्यासनपर नहीं बैठ सक्ता था। विना खूनखरावी हुए तथा प्रजापर नाना अत्याचार हुए विना बादशाहत नहीं बदलती थी। दूसरे मुसलमानोमें अकबर सरीखे प्रजाप्रिय बादशाह बहुत थोडे होते थे। यद्यपि अकबरकी राजनीति अतिशय कूट कही जाती है, परन्तु प्रजा उसके राजत्वकालमें दुःखी नहीं रही, यह निश्चय है। आज उस प्रजावत्सल नरनाथकी परलोकयात्रासे प्रजा अनाथ हो गई। चारों ओर कोलाहल मच गया। लोगोंको विपत्ति मुह फाडके भय दिखाने लगी। सबने अपनी २ जमा पूंजीकी रक्षामे चित्त लगाया—

घर घर दर दर दिये कपाट।
हटवानी नहिं बैठें हाट।
हॅडवाई(?)गाढी कहुं और।
नकद माल निरभरमी ठौर॥

१ अकवरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ सवत् १६६२ मगलवारकी रात्रिको हुआ था, और दूसरे दिन बुधवारको उत्तरक्रिया हुई थी।

भले वस्त्र अरु भूषन भले।
ते सब गाढ़े धरती तले॥
घर घर सबनि विसाहे शस्त्र।
लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढो कंवल अथवा खेस।
नारिन पहिरे मोटे वेस॥
ऊंच नीच कोउ न पहिचान।
धनी दरिद्री भये समान॥
चोरि धाढ़ दीसै कहुं नाहिं।
यों ही अपभय लोग डराहिं॥ २५५॥

यह अशान्तिकी हवा दश बारह दिन बड़े जोर शोरसे चलती रही। तेरहवें दिन शान्तिसूचक बादशाही चिट्ठियां आईं और घर २ बाट दी गईं। चिट्ठिया बाटते ही अशान्तिने विदा ले ली। सन्नाटा खिंच गया। घर २ जयजयकार होने लगा। जो धनी और गरीबोंका भेद उठ गया था, वह अब फिर आ डॅटा। धनियोंके वस्त्र वेष चमचमाने लगे, बेचारे दरिद्री भीख मांगते हुए नजर आने लगे। चिट्ठीमें समाचार इस प्रकार थे—

प्रथम पातशाही करी, बावनवरष जलाल[1]।
अब सौलहसै बासठै, कार्तिक हूओ काल॥
अकबरको नन्दन बड़ो, साहिब शाह सलेम।
नगर आगरेमें तखत, वैठो अकबर जेम॥ २६८॥

---

१ अकबरका नाम जलालउद्दीन था।

नाम धरायो नूरदी, जहांगीरसुलतान।
फिरी दुहाई मुलकमे, जहँ तहँ वरती आन ॥२६९॥

कविवर वनारसीदासजीका हृदय वहुत कोमल था, वे अकवरके धर्मरक्षादि गुण सुनकर वहुत प्रशसा किया करते थे। अकवरकी मृत्युकी खबर जिस समय जौनपुर आई, उस समय ये घरकी सीढीपर वैठे हुए थे, सुनते ही मूर्च्छा आ गई। शरीर सीढीसे नीचे ढुलक गया, माथा फूट गया, खून वहने लगा और उसमें कपडे सरावोर हो गये। माता पिता दोडे हुए आये, पुत्रको गोदमें उठा लिया। पंखा करके पानीके छींटे डालके मूर्च्छा उपशान्ति की गई, घावमें कपडा जलाके भर दिया गया। थोडे समयमें अच्छे हो गये। नवीन वादशाहके तिलककी खुशीमें घर २ उत्सव मनाया गया। राज्यभक्त प्रजाने भिखारियोको वहुत सा दान दिया।

पाठकोको स्मरण रहै कि, अभी तक सदाशिवकी पूजन निरंतर हुआ करती थी, उसमें वनारसीने कभी भूल नहीं की। उस दिन एकान्तमें वैठे २ सोचने लगे।...

जब मैं गिरयो परयो मुरझाय।
तब शिव कछु नहिं करी सहाय! ॥

इस विकट शंकाका समाधान जव उनके हृदयमें न हुआ, तव उन्होने सदाशिवजीका आसन कहीं अन्यत्र लगा दिया, और पूजन करना छोड दिया। वनारसीके नानारसी हृदयने इस समयसे ही पलटा खाया। उनके शरीरमेंसे वालकपन कभीका निकल गया था। युवावस्था विराजमान थी। विद्यादेवीने युवावस्थाकी सहचरी उन्मत्ततासे वहुत झगडा मचा रक्खा था, परन्तु कुसगति और

स्वतन्त्रताके कारण वह विजयलाभ नहीं कर सकी थी । अब स्वतन्त्रता गृहजंजालको देखके रफूचक्कर हो गई थी, बेचारी कुसंगतिको सदा साथ रहनेका अवकाश नही था । अतएव विद्यादेवी अपना काम कर गई । उसने कोमल हृदयमें कोमल शान्तिरसका बीज बो दिया । कविवर बनारसीदासजीके पास अब केवल शृंगाररसका गुजारा नहीं रहा ।

एक दिन संध्याके समय गोमती नदीके पुलपर बनारसीदास अपनी मित्रमंडलीके साथ समीरसेवन कर रहे थे, और सरिताकी तरल–तरंगोको चित्तवृत्तिकी उपमा देते हुए कुछ सोच रहे थे । बगलमें एक सुन्दर पोथी दब रही थी । मित्रगण भी इस समय चुपचाप नदीकी शोभा देख रहे थे । कविवर आप ही आप बडबडाने लगे "लोगोसे सुना है कि, जो कोई एक बार भी झूठ बोलता है, वह नरकनिगोदके नाना दुःखोका पात्र होता है । परन्तु न जाने मेरी क्या दशा होगी, जिसने झूठका एक पुंज बनाके रक्खा है । मैंने इस पोथीमें स्त्रियोंके कपोलकल्पित नखशिख हावभाव विभ्रमविलासोकी रचना की है । हाय ! मैंने यह अच्छा नही किया-मैं तो पापका भागी हो ही चुका, अब परपरा लोग भी इसे पढकर पापके भागी होगे" । इस उच्चविचारने कविवरके हृदयको डगमगा दिया । वे आगे और विचार नहीं कर सके, और न किसीकी सम्मतिकी प्रतीक्षा कर सके । तत्क्षण गोमतीके उस अथाह और भीषण–वेगयुक्तप्रवाहमें उस रसिकजनोकी जीवनरूपा स्वकृत नव्य-निर्मित पोथीको डालकर निश्चित हो गये । पोथीके पन्ने अलग २ होकर बहने लगे, और मित्र हाय २ करने लगे, परन्तु फिर क्या होता था ? गोमतीकी गोदमेंसे पोथी छीन लेनेका किसीने साहस नहीं

किया। सब लोग मन मारके अपने २ घर चले आये। कविवर भी प्रसन्नतासे अपने घर गये। पाठक! एक वार विचार कीजिये, अमूल्य-रस-रतको इस प्रकार तुच्छ समझके फेंक देना और तत्काल विरक्त हो जाना, क्या रसिकशिरोमणिकी सामान्य उदारता हुई? नहीं! यह कार्य बडी उदारहृदयता और स्वार्थत्यागका हुआ। उस दिनसे कविवरने एक नवीन अवस्था धारण की—

तिस दिनसों बानारसी, करी धर्मकी चाह।
तजी आसिखी[1] फांसिखी[2]; पकरी कुलकी राह॥

खरगसेनजी पुत्रका उक्त वृत्तान्त सुनकर वहुत हर्षित हुए। उन्हें आशा हो गई कि, मेरे कुलका नाम जैसा आज तक रहा है, वैसा आगे भी रहेगा। पुत्रकी पूर्वावस्थासे साम्प्रत अवस्थाका मिलान कर वे चकित हो गये। निश्चय किया कि,—

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाय।
जैसे वालककी दशा, तरुण भये मिट जाय॥२७२॥

और—

उदय होत शुभकर्मके, भई अशुभकी हानि।
ताते तुरत वनारसी, गही धर्मकी वानि॥ २७३ ॥

थोड़े ही समयमे क्या से क्या हो गया। जो वनारसी संसारके एक क्लेशजन्यरसके रसिया थे, वे ही अब जिनेन्द्रके शान्तरसके वशमें हो गये। अडौस पडौसके लोग तथा कुटुम्बीजन जिसको कल गली कूचोमे भटकते देखते थे, आज उसी वनारसीको जिन-मन्दिरको अष्टद्रव्ययुक्त जाते देखते है। जिनदर्शन किये विना

---

१ आशिकी। २ फासिकी अर्थात् पापकर्म।

भोजनके त्यागकी प्रतिज्ञायुक्त देखते हैं। चतुर्दश नियम, व्रत, सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमणादि नाना आचार-विचार-युक्त देखते हैं। और देखते हैं, सच्चे हृदयसे सम्पूर्ण क्रियाओंको करते। स्वभावका इस प्रकार पलटना बहुत थोडा देखा जाता है।

तब अपजसी बनारसी,
अब जस भयो विख्यात ॥

खरगसेनजीके दो कन्या थी, जिसमेंसे एक तो **जौनपुर**से विवाही गई थी, दूसरी कुमारी थी। इस वर्ष अर्थात् संवत् १६६४ के फाल्गुणमासमे **पाटलीपुर** (पटना)मे किसी धनिकके पुत्रसे उसका भी विवाह कर दिया गया। कन्याका विवाह सानन्द हो चुकनेपर इसी वर्ष—

बानारसिके दूसरो; भयो और सुतकीर।
दिवस कैकुमें उडि गयो, तज पिंजरा शरीर ॥ २८० ॥

इस पोतेके मरनेसे **खरगसेन**जीको विशेष दुःख रहा। परन्तु तीन वर्षतक पुत्रके रग ढग अच्छे रहे, यह देखकर उन्हें बहुत कुछ शान्तवन भी मिलता रहा। संवत् १६६७ मे एक दिन **खरगसेन**जीने पुत्रको एकान्तमें बुलाके कहा "बेटा! अब तुम सयाने हो गये। हमारा वृद्धकाल आया। पुत्रोंका धर्म है कि, योग्य-वय-प्राप्त होनेपर पिताकी सेवा करे, इस लिये अब तुम यह घरका सब कार्यभार सभालो और हम दोनोंको रोटी खिलाओ" यह सुनके पुत्र लज्जावनत हो रहा, उससे कुछ कहा नहीं गया। पिताका प्रेम देखके आखोमें आसूं भर लाया। उसी समय पिताने अपने हाथसे पुत्रको गोदमें लेके हरिद्राका तिलक कर दिया, और घरका सब काम सोप दिया। पीछे

दो मुद्रिका, चौवीस माणिक, चौंतीस मणि, नौ नीलम, वीस पन्ना, और चार गांठ फुटकर चुनी, इस प्रकार तो जवाहिरात, और २० मन घीव, दो कुप्पे तैल, दौ सौ रुपयाका कपडा इस प्रकार माल और कुछ नकद रुपया देकर व्यापारके लिये आगराको जानेकी आज्ञा दी। पुत्रने आज्ञा शिरोधार्य करके सब माल गाडियोंपर लदाके अनेक साथियोके साथ आगरेकी यात्रा कर दी। प्रतिदिन ५ कोसके हिसावसे चलके गाडियां इटावाके निकट आई, वहां मजिल पूरी हो जानेसे एक ऊजड़ स्थानमें डेरा डाल दिया। थोडे समय विश्राम कर पाये थे, कि मेघ उमड आये, अंधकार हो गया, और लगा मूसलधार पानी वरसने। साथके सब लोग गाड़िया छोडके इधर उधर भागने लगे। कुछ लोग पयादे होकर शहरकी सरायमें गये, परन्तु सरायमे कोई उमराव ठहरे हुए थे, इससे स्थान खाली नहीं मिला। वाजारमें भी कोई जगह खाली नही देखी, आधी और मेघकी झड़ीके मारे घर २ के कपाट वन्द थे, कहीं खडे होनेका भी ठिकाना नहीं पडा। कविवर कहते हैं—

फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहै न कोय।
तलै कीचसों पग भरें, ऊपर वरसत तोय॥ २९४॥
अंधकार रजनी विषै; हिमरितु अगहनमास।
नारि एक बैठन कह्यो; पुरुष उठ्यो लै वॉस!॥ २९६॥

नगरमें जब रातनिकालनेका कहीं भी ठीक न पडा, तव लाचार होके गोपुरके पार एक चौकीदारकी झोपडी थी, वहां आये, और चौकीदारोंको अपनी सब आपत्ति कह सुनाई। चौकीदारोका

हृदय इन बेचारोंकी कथा सुनके पिघल आया । उन्होंने कहा अच्छा आज रातभर आप लोग यहां आनन्दसे रहो, हम अपने घर जाके सोवेंगे । परन्तु इतना ध्यान रखना कि, सबेरे नगरका हाकिम आवेगा, वह विना तलाशी लिये नहीं जाने देगा, इस लिये उसे कुछ दे लेके राजी कर लेना । चौकीदार चले गये, इन लोगोंने पानी लाके हाथ पैर धोये, गीले कपडे सूखनेको डाल दिये और प्याल बिछाके सबके सब विश्रामकी चिन्तामें लगे । लोगोंकी आखें झपती ही जाती थीं, कि इतनेमें एक जबर्दस्त आदमी आया, और लगा डाट डपट बतलाने । तुम लोग किसके हुक्मसे यहां आये? कौन हो? यहांसे अब शीघ्र चले जाओ, नहीं तो अच्छा नहीं होगा इत्यादि । इस नवीन आपत्तिसे भयभीत होके बेचारे उठ बैठे, और विना कुछ कहे सुने चलने लगे । परन्तु इन लोगोंकी तत्कालीन दशा देखके पत्थर भी पसीजता था, नवागन्तुक तो आदमी ही था । इनके सीधेपनको देखके उससे न रहा गया, जाते हुए लौटा लिया और अपना एक टाट बिछानेको दे दिया । चौकीमें जगह इतनी थोडी थी कि, सोना तो दूर रहा, चार आदमी सुभीतेसे बैठ भी नहीं सकते थे । तब टाटपर नीचे तो दुखिया बनारसी तथा उनके साथी सोये और ऊपर खाट बिछाके नवागन्तुक अपने पांव फैलाके सोया! समय पडनेपर इतनी ही गनीमत है! ज्यों त्यों रात्रि पूरी हो गई, सबेरे देखा तो, वर्षा बंद हो चुकी थी, आकाश निखरके निर्मल हो गया था । उठके अपनी २ गाडियोंपर आये, और मार्गका सुभीता देखके गाडी चला दीं । आगरा निकट आ गया । बनारसीदासजी सोचने लगे, कहां जाना चाहिये? माल कहां उतराना चाहिये? और मुझे कहां ठहरना चाहिये? क्योंकि उन्हें

व्यापारके लिये घरसे बाहिर निकलनेका यह पहिला ही अवसर था। निदान चित्तमें कुछ निश्चय करके गाडियोको पीछे छोड आप मोतीकटलेमें पहुचे। आपके छोटे बहनेउ, बन्दीदासजी चांपसी-के घरके पास रहते थे, उन्हींके यहा गये। बहनेऊने सालेका यथोचित सत्कार किया। दो चार दिनमें बहनेऊकी सम्मतिसे एक दूसरा मकान किराये से लिया और उसमें सब माल असबाब रखके वेचना खर्चना आरभ कर दिया।

पहिले कपडा वेचके उसका हिसाब तयार किया तो, व्याजमूल देके कुछ घाटा रहा, पश्चात् घीव तैल बेचा, उसका भी यही हाल हुआ, केवल चार रुपया लाभमें रहे। कपडा और घी तैलकी विक्रीका रुपया हुंडीसे जौनपुर भेज दिया और सबके पीछे जवाहि-रातपर हाथ लगाया। बनारसीदास व्यापारसे अभी तक एक तो प्रायः अनभिज्ञ थे, दूसरे आगरेका व्यापार! अच्छे २ ठगा जाते है, इनकी तो बात ही क्या थी। जिस तिसको साधु असाधुकी जाच किये विना ही आप जवाहिरात दे देते थे, और उसके साथ जहां चाहे तहा चले जाते थे। जौहरियोंके लिये यह वर्ताव वडे धोखेका है। परन्तु अच्छा हुआ कि, किसी लुच्चे लफगेकी दृष्टि नहीं पडी। तौ भी अशुभ कर्मका उदय था, इजारबन्दके नारेमें कुछ छूटा जवाहिरात बांध लिया था, वह न मालूम कहां खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे चोट भी गहरी लगी, परन्तु किसीसे कुछ कहा नहीं। आपत्तिपर आपत्तिया प्रायः आती हैं। किसी कपड़ेमें कुछ माणिक बधे थे, वे डेरेमे रक्खे थे उन्हें चूहे कपडे समेत ले गये! दो जडाऊ पहुची किसी शेठको बेचीं थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया! एक जडाऊ मुद्रिका थी, वह

सडकपर गांठ लगाते हुए नीचे गिर पडी, परन्तु जब नीचे देखा तब कुछ भी पता नहीं लगा, न जाने किस उठाईगीरेके हाथमें सफाईसे पड़ गई । इन एकपर एक आई हुई अनेक आपत्तियोंसे बनारसीका कोमलहृदय कम्पित हो गया । और संध्याको खूब जोरसे ज्वर चढ-आया । चिन्ताके कारण बीमारी बढ गई । वैद्यने दश कोरी लघनें कराई, पीछेसे पथ्य दिया । पथ्यके पश्चात् अशक्तिताके कारण महीने भर तक बाजारका आना जाना नहीं हुआ । इस बीचमें पिताके अनेक पत्र आये, परन्तु किसीका भी उत्तर नही दिया । तौ भी वात छुपी नहीं रही । **उत्तमचन्द** जौहरी जो आपके बडे बहनेऊ थे, उन्होंनें **खरगसेन**जीको अपने पत्रमें लिख भेजा कि, **बनारसीदास** जमा पूजी सब खोके भिखारी हो गये हैं । इस खबरसे **खरगसेन**जीके घरमे रोना पीटना होने लगा । उन्होंने अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे **बनारसी**को घरका मौर बांधा था, इस-लिये स्त्रीसे कलह पूर्वक कहने लगे कि "मैं तो पहिले ही जानता था कि, पूत धूल लगावेगा, परन्तु तेरे कहनेसे तिलक किया था, उसका यह फल हुआ—

कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत ।
पूंजी खोई वेहया, गया बनज गये सूत ॥ ३२१ ॥

यहा **बनारसीदास**जी जो कुछ वस्तु पासमे थी, सो सब बेच २ के खाने लगे, और इसतरह जब पासमे केवल दो चार टके रह गये, तब हाट बाजारका जाना भी छोड दिया । दिन व्यतीत

करनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको डेरेमें बैठे हुए पढा करते थे। पोथियोंको सुननेके लिये दो चार रसिक-पुरुष भी पास आ बैठते थे, और प्रसन्न होते थे। श्रोताओंमें एक कचौडीवाला था, उसके यहांसे आप प्रतिदिन दोनों वक्त कचौडी उधार लेके खाया करते थे। जब उधार खाते २ बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन पोथी सुनकर जाते हुए कचौडीवालेको एकान्तमें बुलाकर लज्जित होते हुए आपने कहा कि,—

तुम उधार कीन्हों बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहांसों लेहु? ॥

---

१ **मृगावती** यह एक कल्पित कथा है। इसके बनानेवाले कविका नाम कुतुवन था। कुतबन जातिके मुसलमान थे और विक्रम संवत् १५६० के लगभग विद्यमान थे। शेख बुरहानके दो चेले थे, एक **कुतुवन** और दूसरा मलिक **मुहम्मदजायसी**। ये दोनों ही हिन्दीके अच्छे कवि हो गये हैं। मलिक़ मुहम्मदजायसीका **पद्मावतकाव्य** हिन्दीमें एक उत्कृष्ट श्रेणीका ग्रन्थ है। यह काव्य **मृगावती**से ३७ वर्ष पीछे बनाया गया है। **मृगावती**की कथा जिस प्रकार देव और परियोंकी असम्भवबातोंसे भरी है, उस प्रकार पद्मावतकी कथा नहीं है। पद्मावत ऐतिहासिक कथाके आधारपर लिखा गया है, और मृगावती केवल कल्पनाका प्रबन्ध है। परन्तु मृगावती कल्पितप्रबन्ध होनेपर भी सुन्दरता और सरलतासे कूट २ कर भरा है, इससे रसिकोंका जी उसे विना पढे नहीं मानता। विपत्तिके समय कविवरके चित्तको इससे अवश्य विश्राम मिलता होगा। **कुतुवन** जौनपुरके बादशाह **शेरशाहसूर**के पिता **हुसेनशाह**के आश्रित थे, ऐसा **समालोचक** भाग ३ अंक २७-२८-२९ में प्रकाशित हुआ है, परन्तु शेरशाहको हुसेनशाहका बेटा बतलानेमें भूल हुई जान पडती है। क्योंकि शेरशाहका जौनपुरके हुसैनशाहसे कुछ

कचौरीवाला भला आदमी था, वह जानता था कि, बनारसीदास कोई अविश्वस्त पुरुष नहीं है, किन्तु एक विपत्तिका मारा हुआ व्यापारी है । उसने कहा कि, कुछ चिन्ताकी बात नही है । आप उधार लेते जावें, मेरे द्रव्यकी परवाह न करे, और जहां जी चाहे, आवें जावें । समयपर मेरा द्रव्य वसूल हो जावेगा । इस सज्जनकी बातका बनारसीदास और कुछ उत्तर न दे सके, और पूर्वोक्त क्रमसे दिन काटने लगे । छह महीने इसी दशामे बीत गये । एक दिन मृगावतीकी कथा सुननेको ताँबीताराचन्दजी नामके एक पुरुष आये । यह रिश्तेमें बनारसीदासजीके श्वसुर होते थे । कथाके हो चुकनेपर उन्होने बनारसीदासजीसे पहिचान निकालके बडा स्नेह प्रगट किया और एकान्तमें ले जाके प्रार्थना की कि, कल प्रभातकाल

सम्बन्ध नहीं था । वह शूर जातिका पठान था और उसका असली नाम फरीद, बापका हसन और दादाका इब्राहीम था । इब्राहीम घोडोका व्यापार करता था, परन्तु उसका बेटा हसन व्यापार छोडके सिपाही बना और बहुत दिनोतक **रायमल** शेखावतकी नौकरी करता रहा । वहासे सुलतान सिकन्दर लोदीके अमीर नसीरखाके पास नौकर रहा । फरीद बापसे रुठकर पहिले लोदी पठानो और फिर बाबरबादशाहके मुगल अमीरोके पास रहा । बाबरने इसकी आखोंमे फसाद देखकर पकडनेका हुक्म दिया, जिससे वह भागकर सहस्रमके जगलोमे लूट मार करने लगा । फिर विहार और बगालेका मुल्क दबाते २ हुमायू बाहशाहसे लडा और उनको निकालके सवत् १६९७ मे हिन्दुस्थानका बादशाह बन बैठा ।

२ **मधुमालती** हमारे देखनेमे नहीं आई, इसके बनानेवाले कवि **चतुर्भुजदासनिगम** (कायस्थ) है । इस ग्रन्थकी रचना भी सवत् १६०० के लगभग हुई जान पडती है । मधुमालतीकी श्लोकसख्या १२०० है । कहते हैं कि, यह एक प्राचीनपद्धतिका पद्यबन्ध उपन्यास है ।

मेरे घरको आप अवश्य ही पवित्र करें। ऐसा कहकर चले गये और दूसरे दिन फिर लिवानेको आ पहुंचे। वनारसीदासजी साथ हो लिये, इधर श्वसुर महाशय अपने एक नौकरको गुप्तरीतिसे आज्ञा दे गये कि, तू इस मकानका भाडा वगैरह चुकाकर और डेरा डंडा उठाकर अपने घर पीछेसे ले आना। नौकरने आज्ञाकी पूरी २ पालना की। भोजनोपरान्त वनारसीदासजीपर जव यह वात प्रगट हो गई, तव श्वसुरने हाथ जोडके कहा कि, इसमें आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। यह घर आपका ही है, आप यदि प्रसन्नतासे रहें, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा। संकोची वनारसीदासजी कुछ कर न सके और श्वसुरालयमे रहने लगे। दो महीने वीत गये। व्यापार करनेकी चिन्ता रात्रि दिन सताती रही, निदान धरमदास जौहरीके साझेमे व्यापारका प्रयत्न किया। जसू[1] और अमरसी[2] दो भाई थे, यह जातिके ओसवाल थे। अमरसीका पुत्र धरमसी अथवा धरमदास जौहरी था। धरमसीका चालचलन अच्छा नहीं था, थोडीसी उमरमें ही उसके पीछे अनेक व्यसन लग चुके थे। इन व्यसनोंसे पीछा छुडानेके लिये ही वनारसीदासजीकी संगति उसके वापने तजवीज की और निरन्तर समागम रखनेके लिये ५००) की पूंजी देकर दोनोंको साझी वना दिया।

दोनों साझी माणिक, मणि, मोती, चुनी आदि खरीदने और वेचने लगे। कुछ दिनोंमें जव वनारसीदासजीनें थोडासा द्रव्य क-

---

१–२ ये दोनों नाम कच्छी तथा गुजरातीसे जान पडते है। उस समय आगरा राजधानी थी, इससे वहा भिन्न २ प्रान्तवालोने आकर दूकाने की थीं।

माया, तव कचौरीवालेका हिसाव कर उसके रुपया चुका दिये । कुल १४) चौदह रुपयाका जोड हुआ । पाठको ! वह कैसा समय था, जव आगरे सरीखे शहरमें भी दोनो वक्तकी पूरी कचौरियोंका खर्च केवल दो रुपया मासिक था ! और आज कैसा समय है, जव उन दो रुपयोंमें एक सप्ताहकी भी गुजर नहीं होती ! ! भारतवासियोंको इस अंग्रेजी राज्यमें भी क्या वह समय फिर मिलैगा ? इस साझेके व्यापारमें दो वर्ष पूरे हो गये, पर विशेष लाभ कुछ नहीं सूझा, इससे वनारसी विषादयुक्त हुए और आगरा छोड देनेका विचार किया । जसूसाहुसे साझेका सव हिसाव किया तो, दो वर्षकी कमाई २००) निकली, और इतना ही खर्च वैठ गया । चलो छुट्टी हुई, हिसाव वरावर हो गया । कविवर कहते हैं—

निकसी थोथी सागर मथा, ।
भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल वैठि,
पूंजी गई * * में पैठि ॥ ३६७ ॥

आगरा छोडके आप खैरावाद (ससुराल) को जानेके विचारमें थे, कि एकदिन वाजारसे लौटते हुए सडकमें एक गठरी पडी हुई मिली, उसमें आठ सुन्दर मोती वंधे थे । वडी खुशी हुई । धनार्थी मोही—जीवको प्रसन्नता ओर कव होगी ? वडे यत्नसे मोती कमरमें लगालिये । और दूसरे दिन रास्ता नापने लगे । रात्रिको श्वसुरालयमें पहुंचे वडे आदरसे लिये गये, सवको प्रसन्नता हुई । समयपर भार्यासे एकान्त समागम हुआ । सामान्य संयोगसे, सामान्य प्रेमसे, सामान्य आनन्दसे हमारे दम्पतिका यह सयोग, प्रेम, आनन्द कुछ विलक्षण ही था ।

पतिप्राणा स्त्री पतिके सम्मुख कुछ समयको स्तंभित हो रही, कुछ समयको पति भी स्थकित हो रहा। दोनोंके पौद्गलिक शरीरोंने इस प्रकार सब ओरसे मौन धारण कर लिया। परन्तु यह शरीर क्रिया ऐसी ही नहीं वनी रही, पतिप्राणास्त्रीने साहस करके कुछेक अस्फुटित स्वरोंसे प्राणपतिकी शारीरिक कुशलता पूछी, और स्वामीसे सुन्दर शब्दोंमें उत्तर पाया। पश्चात् व्यापारसम्वन्धी प्रश्न किये, जिनका उत्तर पतिने मनगढन्तकरके अयथार्थ देना चाहा, क्योंकि वीती कथा कहनेके योग्य नहीं थी, परन्तु अर्द्धांगिनी भावभंगीसे उनका वाक्छल ताड़ गई, और अपनी स्नेहचतुराईसे शीघ्र ही पतिका आन्तरिक विषय जाननेमें सफलमनोरथा हुई। वनारसीदासजी अपनी प्रियतमासे कुछ छुपाकर न रख सके। जिन दम्पतियोंके दो शरीर एक मन हैं, उनके वीचमें कपट को स्थान कव मिल सक्ता है? पतिकी दशाका अनुमानकर साध्वी स्त्रीने आजकलकी स्त्रियोंकी नाईं पैसेकी प्रीति नहीं दिखलाई। वडी गभीरतासे पतिको आश्वासन दिया और कहा—

समय पायके दुख भयो, समय पाय सुख होय।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुण्य फल दोय॥ ३७६॥

इसप्रकार नाना सुखशोकके संभाषणोमे और सयोग वियोगके चिन्तवनमें रात्रिकाल शेष हो गया। सयोगकी रातें वहुत छोटी होती हैं! शीघ्र ही सवेरा हो गया। दिवसमें एकान्त पाकर उस पतिप्राणा स्त्रीने अपने पतिके करकमलोंमें २०) रु० कहींसे लाके रक्खे और हाथ जोरके कहा—

ये मैं जोरि धरे थे दाम। आये आज तुम्हारे काम।
साहिव! चिन्त न कीजे कोय। 'पुरुष जियै तो सव कछु होय॥'

अहाहा! यह अन्तका वनितावदन-विनिर्गत-पद कैसा मनोहर है? ऐसे शब्द भाग्यवान् पुरुषोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोको सुनना नसीब नहीं होते। उस वन्दनीय स्त्रीकी तृप्ति इतनेहीमें नहीं हुई, उसने एकान्त पाकर अपनी माताकी गोदमें सिर रख दिया और फूट २ के रोने लगी। पतिकी आर्थिक अवस्थाके शोकसे उसका हृदय कितना विद्ध हुआ है, सो माताको खोलके दिखलाने लगी। बोली—"जननी! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है। यदि तू साहाय्य नहीं करेगी, तो प्राणपति–सर्वस्व न जानें क्या करेंगे। वे इतने लज्जालु हैं कि, अपने विषयमे किसीसे याच्ञा तो दूर रहै, एक अक्षर भी नहीं कह सक्ते। मुझसे न जाने उन्होंने कैसे कह दिया है। उनका चित्त बहुत डांवाडोल है। वे न तो घर जाना चाहते हैं और न यहां रहना चाहते हैं, परन्तु यदि तू कूछ आर्थिक सहायता करेगी, तो व्यवसाय अवश्य ही करने लगेंगे।" (धन्य पति-व्रते!), पुत्रीके हृदयदुःख को जानकर माताने आश्वासन देते हुए आसू पोछकर कहा, "बेटी! उदास–निराश मत हो। मेरे पास ये दोसौ रुपये हैं, सो तुझे देती हूं, इससे वे आगरेको जाकर व्यापार कर सकेंगे" (धन्य जननी!)

पुनः रात्रि हुई। दम्पति समागम हुआ। पति परायणा सा-ध्वीने अपने कोकिल-कण्ठ-विनिन्दित-स्वरसे लालायितनेत्रोंद्वारा पति-की मुखच्छबि अवलोकन करते हुए कहा "नाथ! मैं समझती हूं कि आप जौनपुर जानेके विचारमे नहीं होंगे, और यथार्थमे वहा जाना इस दशामे अच्छा भी नहीं है। मेरे कहनेसे आप आगरेको एक बार फिर जाइये! एक बार फिर उद्योग कीजिये! अबकी बार अवश्य ही आप सफलमनोरथ होंगे। मैं दोसौ रुपया और भी आपको

देती हूं। इन्हें मैंने अपने प्राणोंमेंसे निकाले हैं। आप ले जाइये और व्यापारमें लगाइये।" भाग्यशाली बनारसी भार्याकी कृतिपर अवाक् हो रहे। हां, न, कुछ भी नहीं कहा गया। रजनी विविधविचारोंमें पूर्ण हो गई।

दूसरे दिनसे व्यापारकी ओर चित्त लगाया गया। कपडा, मोती, माणिक्यादि खरीदना शुरू किया! इस तयारीमें और श्वसुरालयके सत्कारमें चार महीने गत हो गये। अवकाश बहुत मिला, इसलिये कविता भी समय २ पर अल्पबहुत की गई। अजितनाथके छन्दों[1] और धनंजयनाममालाके[2] दोसौ दोहोंकी रचना इसी समय की। पश्चात् अगहनसुदी १२ को माल भराके आगरेकी ओर रवाना हुए।

अबकी बार कटलेमें माल उतारा। समयपर श्वसुरके घर भोजन करना, बाजारमें कोठीपर सोना, और दिनभर दूकानमें बैठना, बस यही उस समयका नित्यकर्म था। समयकी बलिहारी! कपडेका भाव बिलकुल गिर गया। बिक्री एकदम गिर गई। अतः बजाजीसे हाथ धोकर मोती माणिक्योंमें चित्त दिया। मोतीका एक हार जो ४०) में खरीदा था, ७०) में बेचा। ३०) लाभ हुआ, इससे संतोष हुआ। तब आपने विचार किया, कि आगामी कपडेका व्यापार कभी नहीं करना, जवाहिरातका ही करना। देखो! सहज ही पौन दूने हो गये।

श्रीमाल-खोवरागोत्रज वेणीदासजीके पौत्र नरोत्तमदास, बालचन्द और बनारसीदास इन तीनोंमें बडी गाढी मैत्री थी। ये तीनों रात्रिंदिन

---

१ बनारसीविलास-पृष्ठ १९३।

२ **नाममाला** एकवार हमारे देखनेमें आई थी, परन्तु फिर बहुत खोज करने पर भी नहीं मिली। बडी अच्छी-सरल कविता है।

एकत्र रहकर आमोद प्रमोदमे सुखसे कालयापन करते थे । एक दिन तीनों मित्र एक विचार होकर कोल (अलीगढ) की यात्राको गये । वहा ससारकी प्रबल-तृष्णाकेवशीभूत होकर भगवत्से प्रार्थी हुए—

* * * * * * । हमको नाथ! लच्छमी देहु ।
लछमी जब देहो तुम तात । तब फिर करहिं तुम्हारी जात[1]॥

(हाय ! यह लक्ष्मी ऐसी ही वस्तु है। यह भगवत्से ससारक्षयकी प्रार्थनाके वदले ससारवृद्धिकी प्रार्थना कराती है और किये हुए शुभ-फल-प्रदायक-पुण्यकर्मरूप वृक्षको इस याचना और निदानके कुठारसे काट डालती है । आज भी न जाने कितने लोग इसके कारण देवी देवताओं को मना रहे होंगे ?) बस, यही प्रार्थना करके हमारे तीनो मित्र घरको लौट आये, कोलकी यात्रा समाप्त हुई ।

फाल्गुणमें बालचन्दका विवाह था । बरातकी तैयारी हुई । मित्रने बनारसीदासजीसे साथ चलनेको अतिशय आग्रह किया । तब अन्तर्द्रव्य मोती आदि बेचके ३२) रुपया पासमे किये और बरातमें शामिल हो गये, नरोत्तमदासको भी साथ जाना पडा । बरातमे सब रुपया खर्च हो गये । लौटके आगरे आये और खैराबादी कपडेको झारके फरोख्त कर दिया, परन्तु हिसाब किया तो मूल और व्याज देके ४)रु० घाटेमें रहे ! अदृष्टको कौन जानता है ? व्यापारकार्य निःशेष हो चुकनेपर घरको जानेका दृढनिश्चय कर लिया । परन्तु मित्रवर्य्य नरोत्तमदासजीने कहा—

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।
भाईसों क्या मित्रता? कपटीसों क्या नेह? ४०६

१ जात्रा (यात्रा) ।

इस पर बनारसीदासजीने बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। मित्रके यहा रहना ही पडा।

कुछ दिनके पश्चात् साहुकी आज्ञासे नरोत्तमदास, उनके श्वसुर, और बनारसीदासजी तीनो पटनाकी ओर रवाना हुए। सेवक कोई साथमें नहीं लिया। फीरोजावादसे शाहजादपुरके लिये गाडीभाडा किया। शाहजादपुरमें पहुचते ही भाडेवालेने अपना रास्ता पकडा। सरायमें डेरा डाल दिया। मार्गकी थकावटके मारे तीनोंको पड़ते ही गहरी निद्राने घेर लिया। एक प्रहरके बाद जब एक मित्रकी निद्रा-टूटी, उस समय चांदनी का कुछ धुधला २ उजेला था, इसलिये उसने समझा कि, प्रभात हो गया। अतः दोनो साथियोंको जगाया और उसी वक्त कूच कर दिया। एक कुली किरायेपर करके अपने साथ कर लिया, और उसपर बोझा लाद दिया। परन्तु दो चार कोस चलकर ही रास्ता भूल गये। एक बडे बीहड जगलमें जा फँसे। कुली रोने लगा और थोड़ा बहुत चलकर नौ दो ग्यारह हो गया। बडी विपत्ति उपस्थित हुई। उस जंगलमें इन दुखियोंके सिवाय चौथा जीव ही न था, यदि सहायता मांगते तो किससे? अतः तीनोंने बोझेके तीन हिस्से करके अपने २ सिरके हवाले किये और लगे रोते गाते रास्ता काटने। आधी रातके पश्चात् आपत्तिके मारे एक चोरोंके ग्राममे पहुचे। पहिले पहिले चोरोके चौधरीसे ही सामना हुआ। उसने पूछा कि, तुम कौन हो और कहांसे आये हो? इस समय सबके होश गायब थे, क्योंकि इस ग्रामकी कथा पहिलेसे सुनी हुई थी। परन्तु बनारसी-दासजीकी बुद्धि इस समय काम कर गई, उन्होंने अपना कल्पित नामग्राम बताके एक श्लोक पढा और उच्चस्वरसे चौधरीको आशीर्वाद दिया। श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनके चौधरी कुछ मृदु हुआ। उसने ब्राह्मण समझके दंडवत किया और बडे आदरके

साथ अपने घर ले गया। तथा "आप लोग मार्ग भूल गये हैं, रात्रिभर विश्राम कर लें, प्रातः आपको रास्ता बतला दिया जावेगा" इस प्रकार वचनामृत कहके संतोषित किया। सशंकितचित्त मित्र चौधरीके घर ठहर गये। जब चौधरी अपने शयनागारमें चला गया, तब तीनोंने सूत बटकर जनेऊ बनाकर धारण किये और मिट्टी घिसके मस्तक त्रिपुण्ड्रोंसे सुशोभित किये। यथा—

माटी लीन्हीं भूमिसों, पानी लीन्हों ताल।
विप्रवेष तीनों धरयो, टीका कीन्हों भाल॥ ४२४॥

नानाप्रकारकी चिन्ताओंमें रात बिताई। सूरज निकलनेके पहिले ही हयारूढ चौधरीने आकर प्रणाम किया। विप्रोंने आशिष दी, और बोरिया बसना बांदके तीनों साथ हो गये। तीन कोस चलनेपर फतहपुरकी रास्ता मिलगई, तब चौधरी तो शिष्टाचारपूर्वक अपने घरको लौटा, और ये दो कोस चलने पर फतहपुर मिला, वहां दो मजदूर करके इलाहाबास गये। सरायमें डेरा लिया। गंगाके तट पर रसोई बनाके भोजन किये। पश्चात् बनारसीदासजी घूमनेके लिये नगरमे निकले। एक स्थानमें अचानक पिता खरगसेनजीके दर्शन हो गये। पुत्र पिताके चरणोंसे लपट गया, परन्तु पिताका चिरपुत्रवियोगी हृदय इस अचानकसम्मिलनको सह न सका, खरगसेनजीको तत्काल ही मूर्च्छा आ गई!

बनारसीदास और नरोत्तमदास दोनों एक डोली भाडे करके और उसमें खरगसेनको सवार कराके जौनपुर आये। फिर जौनपुरमें दो चार दिन ठहरके व्यापारके लिये बनारस आये। बनारस जाकर पार्श्वनाथ परमेश्वरकी पूजन की। इस समय हार्दिक

भक्तिका अतिशय उद्धार हुआ। अतः दोनों मित्रोंने सदाचारकी अनेक प्रतिज्ञायें कीं—

अडिल्ल।

सांझ समय दुविहार, प्रात नवकार सहि।
एक अधेली पुण्य, निरन्तर नेम गहि॥
नौकरवाली एक, जाप नित कीजिये।
दोष लगै परभात, तो घीव न लीजिये॥ ४३७॥

दोहा।

मारग वरत यथा शकति, सब चौदस उपवास।
साखी कीन्हें पार्श्वजिन, राखीं हरी पचास॥
दोय विवाह सु सुरति द्वै, आगे करनी और।
परदारा संगम तज्यो, दुई मित्र इक ठौर॥ ४३९॥

भगवत्की पूजन करके दोनों मित्र घर आये। भोजनादि करके हसी खुशीकी बातें कर रहे थे, इतनेमें पिताकी चिट्ठी मिली। उसमें अत्यन्त दुःखप्रद समाचार थे। "तुम्हारे तीसरे पुत्रका जन्म हुआ, परन्तु १५ दिनके पीछे ही वह चल बसा, साथमें अपनी माताको भी लेता गया!" बस इससे आगे और नहीं पढ़ा गया। शोकसे छाती फटने लगी, आखोंसे आसुओंकी धारा खर २ बहने लगी। अपनी सुयोग्य सहधर्मिणीके अलौकिक गुणों और भक्तिभावोंको स्मरण करकर उनके हृदयकी क्या दशा थी, इसका अनुमान हम लोग नहीं कर सक्ते। "हाय! वेचारीसे अन्तसमय भी न मिल सके, एकवार उसके पिपासित नेत्रोंको मेरे ये लालायित नेत्र भी न देख सके। मैंने बड़ा भारी अपराध किया, जो उसकी दुःखावस्थामें साहाय्य न

किया । न जाने बेचारीके प्राण कैसे दुःखमें छूटे होगे । सतीसाध्वि! मैं तुम्हारी भक्तिका कुछ भी बदला न दे सका, क्षमा करना । ” इस प्रकारके उथल पुथल विचारोंमें मग्न बनारसीको नरोत्तम-दासने नाना उपदेशोंसे सचेत किया और चिट्ठी पूरी पढनेको कहा। तब धैर्य्यावलम्बन करके बनारसी आगे पढने लगे, यह लिखा था । “तुम्हारी सारी अर्थात् बहूकी छोटी बहिन कुँआरी है । तुम्हारी ससुरालसे एक ब्राह्मण उसकी सगाईकी बातचीत लेके आया था, सो मैंने तुमसे बिना पूँछे ही शुभमुहूर्त शुभदिनमें सगाई पक्की करली है । भरोसा है कि, तुम मेरी इस कृतिसे अप्रसन्न नहीं होओगे” इन द्विरूपक समाचारोको पढकर कविवरने कहा—

एकवार ये दोऊ कथा । संडासी लुहारकी यथा ।
छिनमें अगिनि छिनक जलपात। त्यों यह हर्षशोककी बात ॥

(अपने गृहससारके इस प्रकार अचानक परिवर्तनसे किसको शोक—वैराग्य नहीं होता ? सबको होता है और अधिक होता है । परन्तु खेद है कि, मोहमाया—परिवेष्टित-चित्तमे यह स्मशान वैराग्य चिरकाल तक नहीं रहता । जगत्के यावत्कार्य नियमानुसार चलते ही रहते हैं, किसीके मरने वा जन्मलेनेसे उनमे अन्तर नहीं आता।) बनारसीदासजीकी भी यही दशा हुई । थोडे दिनों तक उनका चित शोकाकुल रहा, परन्तु पीछे व्यापारादि कार्योंमे लिप्त होके वे सब भूल गये । सब ही भूल जाते हैं।

इन दिनो दोनो मित्रोंने छह सात महीने व्यापारमें बडी मश-क्कत उठाई । आवश्यकतानुसार कभी जौनपुर और कभी बनारसमे रहे, परन्तु निरन्तर साथमें रहे । उस समय जौनपुरका नव्वाब चीनीकिलीचखां था, यह बडा बुद्धिवान, पराक्रमी तथा दानी

था। और बादशाहकी ओरसे "चारहजारीमीर" कहलाता था। इसने एक वार कविवरकी प्रशंसा सुनकर इन्हें बुलाया और बडे प्रेमसे सिरोपाव देकर सत्कार किया। नव्वावमे और कविवरमे अत्यन्त गाढ मैत्री हो गई। नव्वावकी कविवरपर वडी कृपा रहने लगी। कुलीचखा कोई प्रदेश फतह करनेके लिये अन्यत्र चला गया और दो महिनेतक लौटके नहीं आया। इसी समय जौनपुरमे इनका कोई परम वैरी उत्पन्न हुआ, उसने इन दोनो (वनारसी–नरोत्तम) को अतिशय दुःखित किया। और वहुत सी आर्थिक हानि भी पहुचाई।

तिन अनेकविध दुख दियो, कहों कहां लों सोय।
जैसी उन इनसों करी, तैसी करै न कोय॥ ४५२॥

चीनीकिलीचखां देश विजय करके जौनपुर आगया, वनारसी-दासजीसे पूर्वानुसार स्नेह रहा। अवकी वार उसने कविवरसे कुछ विद्याभ्यास करना प्रारंभ किया। नाममाला, श्रुतवोध, छन्द कोष, आदि अनेक ग्रन्थ पढे। किलीचखाके चले जानेपर जिस पुरुषने दु.ख पहुचाया था, उसके विषयमें यद्यपि कविवरने नव्वावसे कुछ भी नहीं कहा था, और अपना पूर्वोपार्जित कर्मोका फल समझकर वे उससे कुछ वदला भी नहीं लेना चाहते थे, परन्तु वह भयभीत हो गया, और नव्वावसे प्रार्थना करके पांच पचोंमेंसे क्षमा मागके झगडेका निबटेरा जव तक न किया, तव तक उसे निराकुलता नहीं हुई। सज्जनोके शत्रु स्वय आकुलित रहा करते हैं। सवत् १६७२ में चीनीकिलीचखांका शरीरपात हो गया। कविवरको इस गुणग्राहीकी मृत्युसे शोक हुआ। वे अपने मित्रके साथ जौनपुर छोडके पटनेको चले गये, वहा छह सात महीने रहकर

खूब व्यापार किया, और विपुल द्रव्य सम्पादन किया। फिर काशी और जौनपुरमें रहकर व्यापार किया, इस तरह दो वर्ष बीत गये।

आगानूर नामके किसी उमरावने बादशाही सिरोपाव पाया था, उसका आगमन अपने नगरोंमें सुनकर लोग घर छोडकर जहां तहां भाग रहे थे। क्योंकि आगानूर बडा जालिम हाकिम सुना जाता था। हमारे दोनों मित्र भी इसी भयसे अपने गृहको आये, परन्तु जौनपुरमें देखा कि, कुटुम्बीजन पहिलेहीसे भागकर कहीं छिप रहे हैं। तब कहीं ठिकाना नहीं देखकर दोनों यात्राके लिये अयोध्याजीको गये, वहां भगवत्की पूजनकरके चल पडे, रहना योग्य नहीं समझा, इसलिये रौनाही आ गये। रौनाही धर्मनाथ भगवानका पूज्यतीर्थ है। वहां सातदिन रहकर भक्तिभावपूर्वक पूजन अध्ययन किया, और फिर दोनों मित्र घरकी ओर लौट पडे। मार्गमे सुना कि—

आगानूर, बनारसी, और जौनपुर बीच।
कियो उदंगल बहुत नर, मारे कर अधमीच॥ ४६९॥
हकनाहक पकरे सकल, जड़िया कोठीवाल।
हुंडीवाल सराफनर, अरु जौहरी दलाल ॥ ४७०॥
काई मारे कोररा, काई बेडी पाँय।
काई राखे भाखसी, सबको देइ सजाय॥ ४७१॥

यह खबर सुनके घरके आनेकी हिम्मत नहीं पडी, और फिर दोनो सुरहरपुरकी ओर लौट पडे। वहां जगलमे ४० दिन तक

रहे। तब तक सुना कि, आगानूर आगरेकी ओर चला गया है। अतः शीघ्र ही सफर करके जौनपुर आ गये।

जौनपुरमें सबलसिंहजी मोठियाका पत्र आया कि, "दोनों सांझी यहा चले आओ, अब पूर्वमे रहनेकी आवश्यकता नहीं है।" पाठकोंको स्मरण होगा कि, यह सबलसिंह वही हैं, जिन्होंने इन दोनोंको साझी करके व्यापारको भेजा था। इस चिट्ठीके साथमें एक गुप्तचिट्ठी नरोत्तमदासजीके नामकी आई थी, जो उनके पिताने भेजी थी। नरोत्तमदासजीने चिट्ठी मनोनिमेष पूर्वक वांची और एक दीर्घनिःश्वास लेकर अपने प्राणाधिकप्रिय मित्र बनारसीके हाथमें वह चिट्ठी दे दी और पाठ करनेको कहा। बनारसी वांचने लगे, उसमें लिखा था—

खरगसेन वानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष।
कपटरूप तुझसों मिले, करि धूरतका भेष॥ ४८१
इनके मत जो चलेगा, सो मांगेगा भीख।
तातें तू हुशियार रह, यही हमारी सीख॥ ४८२

चिट्ठी पढते ही बनारसीके मुखपर कुछ शोककी छाया दिखाई दी। यह देखते ही नरोत्तम हाथ जोड़के गद्गद हो बोला "मेरे अभिन्नहृदय-मित्र! संसारमें मुझे तू ही एक सच्चा बाधव मिला है। मेरे पिताकी बुद्धि अविचारित-रम्य है। वे किसी दुष्टके बहकानेमें लगे है, अतः उनकी भूल क्षन्तव्य है। मेरा अचलविश्वास आपमें याव-च्चन्द्र–दिवाकर रहेगा। आप मुझपर कृपा रक्खें।" मित्रके इस विशदविवेक-पूर्ण और विश्वस्तभाषणसे बनारसी विमुग्ध–अवाक हो रहे। चित्तमें आनन्दकी धारा वहने लगी और उसमेंसे मंद २ शब्द निकलने लगे "यदि ससारमें मित्र हो, तो ऐसा ही हो। अहा!

"विधिना केन सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्" । एक दिन अपने मित्रके गुणोंका मनन करते हुए बनारसीदासजीने निम्नलिखित कवित्त बनाया था । इसे वे निरन्तर पढा करते थे—

नवपद ध्यान गुनगान भगवंतजीको,
करत सुजान दिन ज्ञान जगि मानिये ।
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठों जाम,
रूप-धन-धाम काम मूरति बखानिये ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसको वितान तानिये ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम 'बनारसी' को,
चहुपद आदि अच्छरन नाम जानिये ॥ ४४८ ॥

नरोत्तमदास सवत् १६७३ के वैशाखमें साझेका लेखा करके साहुकी आज्ञानुसार आगरे चले गये । बनारसीदास नहीं जा सके, क्योंकि इस समय उनके पिता खरगसेनजीको बीमारी लगने लगी थी । पुत्रने पिताकी जी जानसे सेवा की, नाना औषधियोंका सेवन कराया, परन्तु फल कुछ भी नही हुआ । मौतका परवाना आ चुका था, अतः विलम्ब नहीं हो सका । (ज्येष्ठकृष्णा पचमीकी कालरात्रिमें खरगसेनजीका प्राणपखेरू शरीर पजरसे देखतेही देखते उड गया । पुत्र अतिशय शोकाकुल हुआ) पूज्य पिताके पूज्य गुणस्मरण करके हाय पिता ! हाय पिता ! कहनेके सिवाय वह और कुछ न कर सका—

कियो शोक बानारसी, दियो नैन भर रोय ।
हियो कठिन कीन्हों सदा, जियो न जगमें कोय ॥ ४९५

पिताके स्वर्गवास होनेपर १ महीने तक पुत्रने पितृशोक मनाया। शोक विस्मृत करनेके लिये लोगोने उन्हें अनेक शिक्षायें देकर, ज्यो त्यों संतोषित किया। जीव इष्टजनोंके वियोगमें दुःखी होते हैं, परन्तु निदान यह ससार है, मोहमायामें शीघ्र ही उसको भूल जाते हैं। बनारसी फिर जगज्जालमें लीन हुए। थोड़े दिन पीछे साहुजीका पत्र आया कि "तुम्हारे विना लेखा नहीं चुकेगा, अतः तुम्हे आगरेको आना चाहिये।" साहुजीकी आज्ञानुसार बनारसीदासजी आगरेको रवाना हुए। इस यात्रामे मुगलाईके न्याय और अत्याचारका कविवरने अपनेपर वीता हुआ वृत्तान्त लिखा है, पाठकोंको वह रुचिकर होगा।

"मैं अपने शाहजीकी आज्ञासे एक शीघ्रगामी अश्वपर सवार होके आगरेको रवाना हुआ। पहिले दिन घेसुआ नामक गांवमें रात्रि हो जानेसे ठहरना पडा। सयोगसे उसी दिन आगरेका एक कोठीवाल महेश्वरी अपने ६ नौकरोंके साथ इसी ग्राममें मेरे पास ही ठहर गया। और भी २-३ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंका संग हो गया। सब १९ मनुष्य हो गये। सब आपसमें यह राय करके कि, आगरे तक बराबर साथ चलैंगे, दूसरे दिन घेसुआसे डेरा उठाके चल पडे। कई दिन चलकर इस संघने घाटमपुरके निकट कुर्रा नामक ग्रामकी सरायमें डेरा डाला। सब लोग अपने २ खाने दानेकी चिन्तामें लगे, कोई बाजार गया, कोई अन्य कहीं गया। मथुरावासी ब्राह्मणोंमेंसे एक दूध लेनेके लिये अहीरके घर गया और दूसरा बाजारमें पैसे भुनाकर खाद्यसामग्री लेके डेरेपर आगया। थोडी देरमें वह सराफ जिसके यहांसे विप्र पैसे लाया था, आ धमका और बोला कि, तू हमको धोखा देकर

खोटा रुपया दे आया है। विप्रने कहा तू झूठ बोलता है, मैं चोखा देके आया हूं। बस! दो चार वार की 'मैं मैं तू तू' में बन पडी। विप्रजीने सराफको खूब मार जमाई। लोगोंने बीच बचाव बहुत करना चाहा, पर चौबेजी कब माननेवाले देवता थे! सराफका एक भाई मदद करनेके लिये दौडा हुआ आया। पर चौबेजीके आगे लडनेमें बचाकी हिम्मत नहीं पडी; इसलिये एक जालसाजी सोची। ठीक ही है "जो बलसे नहीं जीता जावे उसे अकलसे जीतना चाहिये।" ब्राह्मणके कपडोंमें २५) रु० और भी बधे हुए थे, उन्हें सराफके भाईने खोल लिये और "ये भी सब बनावटी तथा खोटे हैं" ऐसा कहता हुआ कोतवालके पास पहुचा। मार्गमे चौबेके असली रुपयोंको कहीं चला दिये और बनावटी रुपये कोतवालके सन्मुख पेश किये और बोला "दुहाई सरकार की! नगरमें बहुतसे ठग आये हुए हैं, वे इसी तरह हजारों खोटे रुपया चला रहे हैं। और ऐसे जबर्दस्त हैं कि, लोगोंको मारने पीटनेसे भी बाज नहीं आते। मेरे भाईको मार २ के अधमुआ कर डाला है। दुहाई हुजूर! बचाइयो!!" कोतवालने इस वणिककी रिपोर्टको नगरके हाकिमतक पहुंचाई। हाकिमने दीवान सा० को तहकीकातके लिये भेज दिया। सध्याका वक्त हो गया था, कोतवाल और दीवानकी सवारी सरायमे पहुची। नगरके सैकड़ो आदमियोंकी सवारी भी सरायमें जा जमी। बडा जमघट्ट हुआ। कोतवाल और दीवानके सामने विप्र हाजिर किये गये। इजहार होने लगे। पहिले उनके नाम ग्रामादि पूछे गये, फिर रुपयोंके विषयमें पूंछताछ की गई। लोग नानाप्रकारकी सम्मतियां देने लगे। कोई बोले ठग हैं, कोई पाखडी वेषी हैं, कोई बोले मालूम तो भले आदमीसे होते हैं। कोतवालने सबकी सुन सुना-

कर हुक्म दिया, इनको और इनके साथियोंको इसीसमय वांध लो। इसपर दीवानसा०नें उन्हें छेड़ा। कहा कि, उतावली नहीं करनी चाहिये। अभी रात्रिको चोर साहका पूरा २ निश्चय नहीं हो सक्ता, जब तक सबेरा न हो, इन्हें पहिरेमें रखनेकी व्यवस्था कीजिये। सबेरे जैसा निश्चय हो, कीजियेगा। दीवानसा०की वात मान ली गई और सब लोग पहिरेमें रक्खे गये। उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि, "घाटमपुर, कुर्रा, बरी आदि तीन चारग्रामोंमेंसे यदि तुम अपनी विश्वस्तताके विषय साक्षी उपस्थित कर सकोगे, तो छोड़ दिये जाओगे अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।" सब लोग चले गये, रात्रि आधी बीतगई, चिन्ताके मारे हम लोगोंके पास नींद खडी भी नहीं हुई। जब कि नगरभरमें वह अपना चक्र चलाके प्रायः सबको प्राणहीन कर चुकी थी। नाना सोच विचारोंमें मेरा कलेजा उछल रहा था कि, एकाएक महेश्वरी कोठीवालने कहा "मित्र! अपनी रक्षाका द्वार निकल आया। मुझे अब स्मरण हो आया कि, मेरा छोटाभाई पासके इसी बरी ग्राममें विवाहा है। अब कोई चिन्ता नहीं है" मेरे-शुष्क हृदयमे आशालताका संचार हुआ; पर एकप्रकारसे संदेह बना ही रहा, क्यों कि इतने विलम्बसे महेश्वरीने जो बात कही है, उसमें कुछ कारण अवश्य है, जो सर्वथा विपत्तिसे खाली नहीं हो सक्ता।

सबेरा हो गया, दीवान और कोतवालकी सवारी आ पहुची। साथमें हम १९ आसामियोंके लिये शूली भी तयार की हुई लाई गई, इन्हें देखते ही दयालु-हृदय पुरुष काप उठे! कि आज किन अभागोंके दिन आ पहुचे! हम लोगोंसे साक्षी मागी गई। महेश्वरीने बरीमे अपनी ससुरालकी बात कही। इसके सुनते ही हम सब लोगोको पहिरेमें छोडके और महेश्वरीको साथ लेके

दीवान कोतवाल वरीकी ओर गये । ससुरालवालोंसे भेट हुई । आदर सत्कार होने लगे । ससुरालवाले बडे प्रतिष्ठित पुरुष थे, उनके भेंट मिलापसे ही कोतवालकी साक्षी पूरी हो गई, वे झख सी मराये लौट आये और हमसे कहने लगे "आप सच्चे साहु हैं, हम लोगोंसे अपराध हुआ जो आप लोगोंको इतना कष्ट पहुचाया, माफ कीजियेगा ।" मैंने कहा आप राजा हम प्रजा हैं । राजा प्रजाका ऐसा ही सम्बन्ध है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है—

जो हम कर्म पुरातन कियो। सो सब आय उदय रस दियो।
भावी अमिट हमारा मता। इसमें क्या गुनाह क्या खता॥

इस प्रकार वातचीत करके दीवानादि लज्जित होते हुए अपने २ घर आये । मैंने एक दिन और भी मुकाम किया । छह सात सेर फुलेल लेकर हाकिम, दीवान, कोतवाल सबकी भेटमें दिया । वे बहुत प्रसन्न हुए । अवसर पाकर मैंने उनसे कहा आपके नगरका सराफ ठग था, हम लोग मुफ्तमें फसाये गये थे । यद्यपि हम लोग अपने भाग्यसे बच निकले, परन्तु उस ठगके विषयमें कुछ भी विचार नहीं किया गया । गरीब ब्राह्मणोंके रुपये दिला देना चाहिये, वे व्यर्थ ही लूट लिये गये हैं । इसपर हाकिमोंने लज्जित होते हुए कहा, हमने आपके विना कहे ही उसको पकडनेकी व्यवस्थाकी थी, परन्तु खेद है कि, भेद खुलनेके पहिले ही वे दोनों यहां से लापता हैं । अतः लाचारी है ।

शामको महेश्वरी शाह आ गये, आनन्द मंगल होने लगे । शेरके पजेसे छुटकारा पाया, सबेरे ही सब लोग चल पडे । नदीके पार होते हुए विप्रलोग मार्गमें आडे पड गये और लगे दाढ़ें मारकर रोने । हमारे रुपये लूट लिये गये, अब हम कैसे जीवेंगे । अब तो

हम यहीं प्राण दे देवेगे। उनके इन दयायोग्य वचनोसे हमलोग दुःखी हो गये। दया आ गई। ब्राह्मणोका विलाप और नहीं सुना गया। हम दोनों (महेश्वरी–वनारसी)ने मिलके २५) रु० विप्रोंको देकर सतुष्ट किया। ब्राह्मण आशिष देते हुए विदा हो गये।

"ब्राह्मण गये अशीष दै,

भये वणिक निष्पाप"

इस प्रकार मुगलाई के एक राजकीय चरित्रका वर्णन समाप्त हुआ। जिस समय आगरा वहुत निकट रह गया था, किसी पथिकने वनारसीदासजीको वह वज्र खबर सुनाई, जिसके सुननेके लिये वे आजन्म प्रस्तुत नही थे। और जिसके सुननेके लिये उनका कोमल हृदय सर्वथा असमर्थ था, परन्तु आनेवाली आपदायें कहकर नही आतीं, अचानक आ दवाती हैं। पथिकने कहा "तुम्हारे मित्र नरोत्तमका परलोक हो गया।" इसके अतिरिक्त बनारसी और कुछ न सुन सके। उनका सुन्दर शरीर तत्काल धराशायी हो गया, विचारशक्ति चली गई, वे मूर्च्छामें आविर्भूत हो गये। उनके साथी इस दशामे वडे व्याकुल हुए, जलसेचनादि उपायोंसे उनकी मूर्च्छा-निवृत्ति की। मूर्च्छानिवृत्तिके साथ शोककी ज्वाला उनके हृदयमें धधक उठी, जिसके कारण मुहमेंसे सतप्त उच्छ्वास निकलने लगे, और नेत्रोसे वाष्पस्वरूप जलधारा निकलने लगी। विषादयुक्त-वदन-विनिर्गत 'हाय मित्र! हाय मित्र! हाय मित्र! कहां गये' आदि शब्द सुननेवालोकी आखोमेसे भी दो चार बूद आसुओके निकालते थे। वड़ी बुरी अवस्था हो गई। लोगोंने ज्यों त्यों समझा बुझाकर उन्हें आगरेमें ठिकानेपर पहुंचाया। वहा

वे अनेक दिन तक शोकाकुल रहे, वडी कठिनतासे मित्रशोकको विस्मृत कर सके ।

एक दिन आगरेसे किस लिये आये हैं? इस वातकी चिन्ता हुई, तव साहुजीके हिसाव करनेके लिये गये । परन्तु साहुजीका शाही दरवार देखके अवाक् हो रहे । उन्होने वणिकोंके घर ऐसा अधाधुध कभी नहीं देखा था । साहुजी तकियेके सहारे पडे हैं । वन्दीजन विरद पढ रहे हैं । नृत्यकारिणी छमाके भर रही है । नानाप्रकारके सुदर वादित्र वज रहे हैं । भाड अपनी रगविरगी नकलोंमे मस्त है । और शेठजी तथा उनके सेवक सवहीमें मस्त है । भला! वहा इनका हिसाव कौन सुने? और वहा इतना अवकाश किसको? कविवर लिखते हैं, कि इस दरवारमे पैर तोडते २ मैने चार महिने खो दिये ।

जवहि कहैं लेखेकी वात । साहु जवाव देहि परभात ।
मासी घरी छमासी जाम । दिन कैसा? यह जाने राम ॥
सूरज उदय अस्त है कहां? विपयी विपय मगन है जहां ॥

साहुजीके अगाशाह नामक वहनेऊ (भगिनीपति) थे, जो वनारसीदासके मित्र थे । इनके द्वारा वनारसीदासने वडी कठिनतासे अपना हिसाव साफ किया । साहुजीने कहने सुननेसे ज्यो त्यो फारकती लिख दी । इसके वाद ही वनारसीदासके भाग्यका सितारा चमका । उन्होंने साझा छोड़के पृथक् दूकान कर ली, और उसमे खूव लाभ उठाया ।

सवत् १६७३ के फाल्गुणमासके लगभग आगरेमे उस रोगकी उत्पत्ति हुई, जो आज सारे भारतवर्षमें व्याप्त है, और जो दशवर्षसे लक्षावधि प्रजाको मुह फाड़ २ के निगल रहा है । जिसके आगे

डाक्टर लोग असमर्थ हो जाते हैं, हकीम लोग जवाब दे देते हैं, और वैद्य बगलें झाकते हैं। जिसे अंग्रेजीमे प्लेग, हिन्दीमें मरी, और मराठी गुजरातीमे मरकी कहते हैं। अनेक लोगोंका ख्याल है कि, यह रोग भारतमे पहिले पहिल हुआ है, परन्तु यह उनकी भूल है। इसके सैकडो प्रमाण मिलते हैं, कि प्लेग अनेक वार हो चुकी है। और उसका यही रूप था जो आज है। कविवरने इस विषयमे जो वाक्य लिखे हैं, वे ये हैं—

---

१ वम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर **'सर जेम्स केम्वले'** ने **'अहमदाबादगेजेटियर'** मे कुछ दिन पहिले इस विषय सम्बन्धी अनेक उल्लेख किये है, जो पाठकोंके जानने योग्य है। उन्होंने लिखा है कि, "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० स० १६७५ के लगभग अहमदाबादमे प्लेग फैल रहा था, जो कि **आगरा-दिल्ली** की ओरसे आया था, और जिसका प्रारभ ई० स० १६११ मे पंजावसे निश्चित होता है। जिस समय **प्लेग** आगरा और दिल्लीमे कहर मचा रहा था, वहाके तत्कालीन बादशाह **जहांगीर** उससे डरकर **अहमदाबाद**मे कुछ दिनोंके लिये आ रहे थे। कहते है कि उनके आनेके थोडे ही दिन पीछे इस छुआ-छूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। साराश—अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र ८ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहा २ प्लेगका उपद्रव होता था, चूहोंकी सख्यामे वृद्धि होती थी।" उस समय हिन्दुस्थानमें जो **यूरोपियन** रहते थे, उन्हें भी **प्लेगमें** फॅसना पडा था। वह काले और गोरोंके साथ नीतिज्ञ राजाकी नाई तब भी एक सा वर्ताव करता था। इस विषयमें **"मि० टेरी"** नामक ग्रन्थकारने लिखा है "नौ

"इस ही समय ईति विस्तरी । परी आगरे पहिली मरी ।
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठका रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिनमाहिं । काहूकी बसाय कछु नाहिं ॥
चूहे मरें वैद्य मर जाहिं । भयसों लोग अन्न नहिं खाहिं ॥"

मरीसे भयभीत होकर लोग भाग २ के दूर २ के खेड़ो और जंगलोंमे जा रहे । वनारसीदासजी भी एक अजीजपुर नामके ग्राममे एक ब्राह्मण मालगुजारके यहा जाके रहने लगे । मरीकी निवृत्ति होनेपर वे अपने मित्र 'निहालचन्द, जीके विवाहको अमृतसर गये, और वहासे लौटकर फिर आगरेमे रहने लगे । माताको भी जौन-

---

दिनके अरसेमे सात अंग्रेजोकी मृत्यु हो गई, प्लेगमे फॅसनेके वाद इन रोगियोमेसे कोई भी २४ घंटेसे अधिक जीता नही रहा, वहुतोने तो १२ घंटेमे ही रास्ता पकड लिया ।" सन् १६८४ मे औरंगजेव वादशाहके लश्करमे भी प्लेगने कहर मचाया था, ऐसा इतिहाससे पता लगा है ।

वनारसीदासजीके नाटकसमयसार ग्रन्थमे भी प्लेगका पता लगता है । उसमे बंधद्वारके कथनमे जगवासी जीवोके लिये कहा है—

"धरमकी बूझी नही उरझे भरम माहिं
नाचि नाचि मर जाहि मरी कैसे चूहे है ।"

पाठकोको जानना चाहिये कि, उस समय प्लेगको मरी कहते थे । यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते है, परन्तु चूहोका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण है, हैजाका नही ।

१ प्लेगका एक विशेप भेद भी है, जिसमे गाठ नही निकलती, केवल ज्वर होता है और ज्वरके पश्चात् मृत्यु । वैद्यक ग्रन्थकारोने प्लेगको "ग्रन्थिक सन्निपात" वतलाया है । यह असाध्य रोग है ।

पुरसे अपने पास बुला लिया, और उनकी आज्ञानुसार खैराबाद जाकर उन्होंनें अपना दूसरा विवाह कर लिया। खैराबादसे आकर कविवरके चित्तमें यात्रा करनेकी इच्छा हुई, इसलिये वे अपनी माता और नवीन भार्याको साथ लेकर 'अहिछिति पार्श्वनाथ'की वदनाको गये, और वहासे हस्तिनागपुर आये। वहा पर भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, और अर नाथकी भक्तिसहित पूजन की। पूजनमें एक तात्कालिक षट्पद वनाकर पढ़ा—

श्री विस[1]सेननरेश—, सूर[2]नृप-राय सुदंसन[3]।
ऐरा-सिरि-आदेवि,(?)कराहिं जिस देव प्रसंसन॥
तासु नँदन सारंग[5]-,छाँग[6]-नन्दावत[7] लंछन।
चालिस-पैतिस-तीस, चाँप[8] काया छवि कंचन।
सुखरास 'बनारसिदास' भनि, निरखत मन आनन्दई।
हथिनापुर—गजपुर—नागपुर, शान्ति—कुन्थु—अर वन्दई॥

हस्तिनापुरसे दिल्ली, मेरठ, कोल होते हुए बनारसीदासजी सकुटुम्ब सकुशल आगरा आ गये। सवत् १६७६ में कविवरको द्वितीयभार्यासे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। ७७ में माताका स्वर्गवास हो गया। ७९ मे पुत्र तथा भार्या दोनोंने विदा मांग ली। और लोकरीतिके अनुसार सवत् ८० में खैराबादके कूकड़ीगोत्रज वेगाशाहजीकी पुत्रीके साथ विवाह हो गया। जैसे पतझर होके वृक्षोंमें पुनः नवीन सुकोमल उत्पलोंकी सृष्टि होती है, उसी प्रकार कविवर

---

१ विश्वसेन। २ सूरसिंह। ३ सुदर्शन। ४ ऐरादेवी, श्रीकान्तादेवी, सुमित्रादेवी। ५ मृग। ६ मेष। ७ नन्दावर्त। ८ धनुष् (माप विशेष)।

एक वार कुटुम्बहीन होके पुन. गृहस्थ हो गये । उस प्रकार थोडे-ही दिनोंमे वनारसीदासजीके संसारमे अनेक उलट फेर हुए ।

आगरेमें अर्थमल्लजी नामक एक सज्जन अध्यात्मरसके परम-रसिक थे । कविवरके साथ उनका विशेष समागम रहता था । वे कविवरकी विलक्षण काव्यशक्ति देखकर हर्षित होते थे परन्तु उनकी कविताको अध्यात्मकल्पतरुके सौरभसे हीन देख-कर कभी २ दु खी भी होते थे, और निरन्तर उन्हें इस ओरको आकर्षित करनेके प्रयत्नमें रहते थे । एक दिन अवसर पाकर उन्हो ने पं० रायमल्लजीकृत वालाववोधटीकासहित नाटकसम-यसार ग्रन्थ कविवरको देकर कहा आप इसको एक वार पढ़िये और सत्यकी खोज कीजिये । कविवरने चित्त लगाकर समयसारका पाठ करना आरभ कर दिया । एक वार पूरा पढ गये, पर सतोष न हुआ अत फिर पढ़ा । इस प्रकार वारवार पढा और भापार्थ मनन किया. परन्तु एकाएक आध्यात्मिक पेच समझ लेना सहज नहीं है । विना गुरुके अध्यात्मका यथार्थ मार्ग नही सूझ सक्ता । क्योंकि विलक्षणदृष्टि पुरुप भी अध्यात्ममें भूलते और चक्कर खाते देखे जाते हैं । कविवरकी बुद्धि इस परम आध्यात्मिक प्रकाशको देख-

१ पडित रायमल्लजी भाषाके वहुत प्राचीन लेखक प्रतीति होते है । प० दुलीचन्दजीने इन्हे तेरहवीशताब्दीके लगभगका बतलाया है । समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पचास्तिकाय टीका, पटप्राभृत टीका, द्रव्यसग्रह टीका, सिन्दूरप्रकर टीका, एकीभाव टीका, श्रावकाचार, भक्तामरकथा, भक्तामर टीका, और अध्यात्मकमल मार्तड आदि ग्रन्थोंके प्रभावशाली रचयिता है । खेद है कि इनमेसे किसी भी ग्रन्थको हमने नही देखा ।

कर भी याथार्थ्य न देख सकी, उन्हे कुछ का कुछ जँचने लगा। बाह्यक्रियाओसे वे हाथ धो बैठे, और जहा तहा उन्हे निश्चयनय ही सूझने लगा। "न इधरके हुए न उधर के हुए" वाली कहावत चरितार्थ हुई। कविवरने अपनी उस समयकी दशा एक दोहेमें इस तरह व्यक्त की है—

करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद।
भई बनारसिकी दशा, जथा ऊंटको पाद ॥ ५९७ ॥

इसी समय आपने ज्ञानपच्चीसी, ध्यानबत्तीसी, अध्यात्मबत्तीसी, शिवमन्दिर, आदि अनेक व्यवहारातीत सुन्दर कविताओंकी रचना की। अध्यात्मकी उपासनाके साथ २ आचारभ्रष्टताकी मात्रा बढने लगी, और जैसा कि उपर कहा है, वे बाह्यक्रियाओको सर्वथा छोड़ ही बैठे। उन्हो ने जप, तप, सामायिक, प्रतिक्रमण, आदि क्रियाओको ही केवल नही छोडा, किन्तु इतनी उच्छृखलता धारण की, कि भगवत् का चढा हुआ नैवेद्य (निर्म्माल्य) भी खाने लगे। इनके चन्द्रभान, उदयकरन, और थानमलजी आदि मित्रोंकी भी यही दशा थी। चारो एकत्र बैठकर केवल अध्यात्मकी चरचामे अपना कालक्षेप करते थे। इस चरचामे अध्यात्मरसका इतना विपुलप्रवाह होता था कि, उसमे प्रत्येक, धर्म, जाति, व्यवहारकी, उचित, अनुचित, श्रव्य, अश्रव्य सम्पूर्ण बाते बे रोक टोक प्रवाहित होती थी। वे जिस बातको कहते तथा सुनते थे, उसीको घुमा फिराके व्यगपूर्वक अध्यात्ममे घटानेकी चेष्टा किया करते थे। साराश यह है कि, उस समय इनके जीवन का अहोरात्रिका एक मात्र यही कार्य हो रहा था। हमारे जैनसमाजमे उक्त मतके अनुयायी अब भी बहुतसे लोग है, जो लोकशास्त्रके उल्लघन करनेको ही

कमर कसे रहते हैं, और अपने अभिप्रायको प्रबल बनानेकी इच्छासे आचार्योंके वाक्योंको भी अप्रमाण कहनेमें नहीं चूकते। श्रावकोंकी क्रियाओंको वे हेय समझते हैं, और निश्चयक्रियाओंमें अनुरक्त रहनेकी डींग मारा करते हैं। ऐसे महाशयोंको इस नायकके उत्तरीय जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये। इस ऊर्द्ध और अधःकी मध्यदशाका पूर्ण वर्णन करनेको जिसमें हमारे कविवर और उनके मित्र लटक रहे थे, हमारे पास स्थान नहीं है। इसलिये एक दोहेमें ही उसकी इतिश्री करना चाहते हैं। पाठक इन शुद्धाम्नायियोंकी अवस्थाका अनुमान इसीसे कर लेंगे—

नगन होंहि चारों जने, फिरहिं कोठरी माहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं॥

इस अवस्थाको देखकर—

कहहिं लोग श्रावक अरु जती। बानारसी 'खोसरामती'।

क्योंकि—

निंदा थुति जैसी जिस होय। तैसी तासु कहैं सब कोय।
पुरजन विना कहे नहि रहैं। जैसी देखैं तैसी कहैं॥

सुनी कहैं देखी कहैं, कलपित कहैं बनाय।
दुराराधि ये जगतजन, इनसों कछु न बसाय॥

कविवरने अपनी इस समयकी अवस्थापर पीछेसे अत्यन्त खेद प्रगट किया है, परन्तु फिर संतोषवृत्तिसे कहा है कि "पूर्वकर्मके उदयसंयोगसे असाताका उदय हुआ था, वही इस कुमतिके उत्पादका यथार्थ कारण था। इसीसे बुद्धिमानों और गुरुजनोंकी शिक्षाये भी कुछ असर न कर सकीं। कुर्मवासना जब तक थी, तब तक उक्त

दुर्बुद्धिके रोकनेको कोन समर्थ हो सक्ता था? परन्तु जब अशुभके उदय का अन्त हुआ, तब सहज ही वह सब खेल मिट गया। और ज्ञानका यथार्थ प्रकाश समक्ष हो गया" इसप्रकार संवत् १६९२ तक हमारे चरित्रनायक अनेकान्तमतके उपासक होकर भी एकान्तके झूलनेमें खूब झूले। पश्चात् जब उदयने पलटा खाया, तब पंडित रूपचन्दजीका आगरेमें आगमन हुआ। मानो आपके भाग्यकी प्रेरणा ही उन्हें आगरेमें खींच लाई। पंडितजीने आपको अध्यात्मके एकान्त रोगमें ग्रसित देखकर गोमट्टसाररूप औषधोपचार करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् आप कविवरको गोमट्टसार पढाने लगे। गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाओंका विधान भलीभांति समझते ही हृदयके पट खुल गये, सम्पूर्ण संशय दूर भाग गये और—

तब बनारसी और हि भयो।
स्याद्वादपरणति परणयो।
सुनि २ रूपचन्दके बैन।
बानारसी भयो दिढ़ जैन॥

हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन बीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच॥

इस ७–८ वर्षके बीचमें अनेक बातें लिखने योग्य हो चुकी हैं, जो उक्त डगमगदशाके सिलसिलेमें पड जानेसे नहीं लिखी जा सकीं, अतः अब लिख दी जाती हैं। संवत् १६८४ में **जहांगीर** सम्राट् काल-

१ हंटर साहिबने **जहांगीर**की मृत्युके विषयमें केवल इतना लिखा है कि, "सन् १६२७ में (संवत् १६८४) में जब कि उसका बेटा

वश हो गये, और उनकी मृत्युके चार महीने पश्चात् शाहजहां सिंहासनारूढ हुए। शाहजहां जहॉगीरके बेटे थे। जहांगीरने २२ वर्ष राज्यभोग किया। कारमीरके मार्गमें उनकी अचानक मृत्यु हो गई। इसी वर्ष बनारसीदासजीकी तीसरी भार्यासे प्रथमपुत्र अव-

---

शाहजहां और वडा सरदार **महतावखां** ये दोनो वागी हो रहे थे, जहागीर मर गया, और शाहजहा अपने बापके मरनेकी खवर सुनते ही मारामारा मुल्क दक्षिणसे उत्तरको आया, और सन् १६२८ मे आगरे आकर उसने गद्दीपर वैठनेका इश्तहार दे दिया। अवश्य ही कविवर लिखित ४ महीने इस वीचमे गुजर गये होगे, और तख्त खाली रहा होगा।

१ **तुजुक जहांगीरी**मे वादशाहकी मृत्युके विषय इस प्रकार लिखा है—"**मच्छी भवन, अजोल** और **वेरनाग**की सैर करके वादशाह **काश्मीर**से **लाहौर**की ओरको वढे, और **वीरमकल्ले**के पहाडमें एक कुतूहलजनक शिकार करनेमे आप मग्न हुए। जमीदार लोग हरिणोको हकालके पहाडकी चोटीपर लाते थे, और वादशाह साहव नीचेसे गोली मारते थे। हरिण गोली खाकर चक्कर खाता हुआ, नीचे तक आता था, इससे आप वडे प्रसन्न होते थे। (पर हाय! उन वेचारे तृणजीवी जीवोको भी क्या प्रसन्नता होती थी?) एक दिन उस देशका एक प्यादा एक हरिणको घेरकर पहाडपर लाया। वह हरिण एक पत्थरकी ओटमे इस तरह हो गया, कि, वादशाह नीचेसे उसे नही देख सक्ते थे, इसलिये वह (प्यादा) उसके हकालनेको फिरसे चला। परन्तु चलनेमे अभागेका पैर फिसल पडा। पास ही एक वृक्ष था, उसको उसने पकडा परन्तु वह उखड आया। निदान उस पहाडकी चोटीसे लुडकता हुआ बुरी तरहसे जमीन पर आ गिरा, और गिरते ही प्राणहीन हो गया। एकके पीछे एक जीवकी यह दशा देखकर वादशाहको वडा उद्वेग हुआ। वे अपने दुखित चित्तको

तरित हुआ, परंतु थोड़े दिन जीकर ही चल वसा। फिर सवत् ८५ में दूसरा पुत्र हुआ, जो दो वर्ष जीकर उसी पथका पथिक बन गया! सवत् ८७ में (तीसरा पुत्र और ८९ में एक पुत्री इस प्रकार दो संतान हुए।) यह पुत्री भी थोडे दिनकी होकर मर गई। पुत्र 'दिन दूने रात चौगुने, के क्रमसे बढने लगा। कविवरका शून्यगृह आनन्दकारी कलरवयुक्त हो गया। सूक्तिमुक्तावली, अध्यात्मबत्तीसी, पैडी, फाग, धमाल, सिन्धुचतुर्दशी, फुटकर कवित्त, शिवपच्चीसी, भावना, सहस्रनाम, कर्मछत्तीसी, अष्टकगीत, वचनिका आदि कविताओका निर्म्माण भी इसी ७–८ वर्षके बीचमें हुआ। यद्यपि कविता निर्माणके समय वे केवल शुद्धरसका आस्वादन करते थे, और वह एकान्त होनेसे जिनागमके अनुकूल नही था,

---

सम्हाल नही सके, और शिकार छोडके दौलतखानेमें आ गये। थोडी देरमें उस प्यादेकी असहाया माता रोती पीटती वादशाहके पास आई। तव उन्होंने वहुत सा नकद रुपया देकर उस बुढियाको थोडी वहुत तसल्ली की, परन्तु स्वत. उनके चित्तकी तसल्ली नहीं हुई। उनकी दशा बुढियासे भी विचित्र हो गई। मानो यमराजने इस कौतुकके मिपसे उन्हें दर्शन दे दिया था।

वादशाह इसी दशामें **वीरमकल्लेसे थेने और थेनेसे राजौरको** गये। फिर वहासे सदाकी नाई पहर दिन रहे कूच किया। मार्गमें प्याला मागा, पर ज्यो ही मुहसे लगाया, छूटकर उलटा आ पडा। दौलतखानेमें पहुचने तक यही दशा रही। वडी कठिनतासे रात निकली। प्रात काल कई स्वास वडी सख्तीसे आये और प्रहर दिन चढेके अनुमान २८ सफर सन १०३७ (कार्तिक वदी ३० सवत् १६८४) को ६० वर्षकी उमरमें हिंदुस्थानके एक शक्तिशाली सम्म्राट्का प्राण निकल गया। सब लोग देखते ही रह गये"।

परन्तु उक्त सब कवितायें भी जिनागमके प्रतिकूल होंगी, ऐसी शंका न करनी चाहिये । वे सब अनुकूल ही हुई हैं । ऐसा कविवरने अर्द्धकथानकमें स्वयं कहा है—

सोलह सौ बानवे लौं, कियो नियतरस पान ।

पै कवीसुरी सब भई, स्याद्वाद परमान ॥

गोमट्टसारके पढ़ चुकने पर पंडित रूपचन्दजीकी कृपासे जब बनारसीके हृदयके कपाट खुल गये, तब उन्होंने भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत नाटकसमयसार ग्रन्थका भाषापद्यानुवाद करना प्रारंभ किया । भाषा साहित्यके भंडारमें यह ग्रन्थ कैसा अद्वितीय, और अनुपम है, अध्यात्म सरीखे कठिन विषयको कैसी सरलता और सुन्दरतासे इसमें कहा है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब एकवार उक्त पुस्तकका आद्यन्त पाठ कर जावेंगे । संवत् १६९३ की आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, ऐसा ग्रन्थकी अन्त्यप्रशस्तिसे प्रगट होता है ।

संवत् ९६ का वह दिन कविवरके लिये बहुत शोकप्रद हुआ, जिस दिन उनके प्यारे इकलौते पुत्रने शरीर छोड़ दिया । ९ वर्षके एक होनहार बालकके इस प्रकार चले जानेसे किस मातापिताको शोक न होता होगा? अबकी बार कविवरके हृदयमें गहरी चोट बैठी, उन्हें यह संसार भयानक दिखाई देने लगा । क्योंकि—

नौ बालक हूए मुवे, रहे नारिनर दोय ।

ज्यों तरुवर पतझार ह्वै, रहे ठूंठसे होय ॥

वे विचार करने लगे कि—

तत्त्वदृष्टि जो देखिये, सत्यारथकी भांति।
ज्यों जाकौ परिग्रह घटै, त्यों ताको उपशांति॥

परन्तु—

संसारी जानें नहीं, सत्यारथकी वात।
परिग्रहसों माने विभव, परिग्रहविन उतपात॥

इस प्रकार विचार करनेपर भी दो वर्ष तक कविवरके मोहका उपशान्त नहीं हुआ। संवत् १६९८ में जब कि यह अर्द्ध कथानक रचा गया है, कुछ मोह उपशान्त हुआ, ऐसा कहकर हमारे चरित्र नायकने कथानकके पूर्वार्द्ध को पूर्ण किया है।

[जीवनचरित्रके अन्तमे नायकके गुणदोषोकी आलोचना करनेकी प्रथा है। विना आलोचनाके चरित्र एक प्रकार अधूरा ही कहलाता है। अतएव कविवरके गुणदोषोंकी आलोचना करना अभीष्ट है। जीवनचरित्रके लेखकोको इस विषयमे बडा परिश्रम करना पडता है, परन्तु तौ भी वे यथार्थ लिखनेमें असमर्थ होते हैं। और अनुमानादिके भरोसे जो थोडा बहुत लिखते भी है, वह नायकके विशेषकर बाह्यचरित्रोंसे सम्बन्ध रखता है। ऐसी दशामे पाठक प्राय: नायकके अन्तर्चरित्रोंसे अनभिज्ञ ही रहते है। परन्तु बडे हर्षकी वात है कि, हमारे चरित्रनायक स्वय अपने चरित्रोको लिखके रख गये हैं, इस लिये हमको इस विषयमे विशेष प्रयास तथा चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हींके अक्षरोंको हम यहां लिखकर अर्द्धकथानकके चरित्रको पूर्ण करते हैं।

अब **बनारसी**के कहों, वर्तमान गुणदोष।
विद्यमान पुर **आगरे**। सुखसों रहै सजोष॥

गुणकथन ।

भाषा कवित अध्यातम माहिं । पंडित और दूसरो नाहिं ॥
क्षमावंत संतोषी भला । भली कवितपढ़वेकी कला ॥
पढै संसकृत प्राकृत शुद्ध । विविध-देशभाषा-प्रतिबुद्ध ।
जाने शब्द अर्थको भेद । ठाने नहीं जगतको खेद ॥
मिठबोला सबहीसों प्रीति । जैनधर्मकी दिढ परतीति ॥
सहनशील नहिं कहै कुबोल । सुथिर चित्त नहिं डांवाडोल ॥
कहै सबनिसों हित उपदेश । हिरदै सुष्ट दुष्ट नहिं लेश ॥
पररमणीको त्यागी सोय । कुव्यसन और न ठानै कोय ॥
हृदय शुद्धसमकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्य कहे गुन जोय । नहिं उतकिष्ट न निर्मल होय ॥

दोषकथन ।

क्रोध मान माया जलरेख । पै लछमीको मोह विशेख ॥
पोतै हास्य कर्मदा उदा । घरसों हुआ न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीत । नहीं दान पूजासों प्रीत ॥
थोरे लाभ हर्ष बहु धरै । अलप हानि बहु चिन्ता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाय । सीखै भंडकला मन लाय ॥
भाषै अकथकथा विरतंत । ठानै नृत्य पाय एकन्त ॥
अनदेखी अनसुनी बनाय । कुकथा कहै सभामें आय ॥
होय निमग्न हास्यरस पाय । मृषावाद विन रह्यो न जाय ॥
अकसात भय व्यापै घनी । ऐसी दशा आय कर बनी ॥

उपसहार ।

कबहूं दोष कबहुँ गुन कोय। जाको उदय सु परगट होय॥
यह बनारसीजीकी बात । कही थूल जो हुती विख्यात॥
और जो सूच्छम दशा अनंत । ताकी गति जाने भगवंत॥
जे जे बाते सुमिरन भई । तेते वचनरूप परिनई ॥
जे बूझी प्रमाद इहि माहिं । ते काहूपै कहीं न जाहिं ॥
अलप थूल भी कहै न कोय । भापै सो जु केवली होय ॥

एक जीवकी एकदिन, दशा होत जेतीक ।
सो कहि सकै न केवली, यद्यपि जाने ठीक ॥
मनपरजय अरु अवधिधर, करहि अलप चितौन ।
हमसे कीटपतंगकी, बात चलावे कौन ॥
तातें कहत बनारसी, जीकी दशा रसाल ।
कछु थूलमे थूलसी, कही वहिर विवहार ।
वरस पंच पंचासलों, भाख्यो निज विरतंत ॥
आगे भावी जो कथा, सो जाने भगवंत ॥
वरस पँचावन ए कहे, वरस पँचावन और ।
वाकी मानुप आयुमे, यह उतकिष्टी दौर ॥
वरस एकसौ दश अधिक, परमित मानुप आव ।
सोलह सौ अट्ठानवे, समय वीच यह भाव ॥
ताते अरधकथान यह, वानारसीचरित्र ।
दुष्ट जीव सुन हँसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र ॥

शेषजीवन।

पूर्वमें कह चुके हैं कि, कविवर बनारसीदासजीकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है। इसके पश्चात् वे कब तक संसारमें रहे? क्या २ कार्य किये? प्रतिज्ञानुसार अपनी शेष जीवनी लिखी कि, नहीं? अन्य नवीन ग्रन्थोंकी रचना की कि नहीं? आदि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु इनका उत्तर देनेके लिये हमारे निकट कोई भी साधन नहीं है। और तो क्या हम यह भी निश्चय नहीं कर सके कि, उनका देहोत्सर्ग कब और किस स्थानमें हुआ? यह बड़े शोककी बात है।

पाठकगण जीवनचरित्रका जितना भाग उपरि पाठ कर चुके हैं, उसपर यदि विचार किया जावे, तो निश्चय होगा कि, वह समय उनकी आपत्तियोंका था। उस ५५ वर्षके जीवनने उन्हें बहुत थोड़ा समय ऐसा दिया है, जिसमें वे सुखसे रहे हों। बहुत थोड़े पुरुषोंके जीवनमें इस प्रकार एकके पश्चात् एक, अपरिमित आपत्तियें उपस्थित हुई हैं। इस ५५ वर्ष की आयुके पश्चात् मोहके उपशान्त होने पर उनके सुखका समय आया था, मानो विधाताने उनके जीवनके दुःख सुखमय दो विभाग स्वयं कर दिये थे और इसी लिये कविवरने इस प्रथम जीवनको पृथक् लिखनेका प्रयास किया था। आश्चर्य नहीं कि दूसरे सुखमय

---

१ 'बनारसीविलास' कविवरकी अनेक रचनाओंका संग्रह है। उसमें "कर्मप्रकृतिविधान" नामक सबसे अन्तिम कविता है, जो संवत् १७०० के फाल्गुणकी रची हुई है। इसके पश्चात्की कोई भी कविता प्राप्य नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है कि, कदाचित् कविवरका सुखमय जीवन १०-५ वर्षसे अधिक नहीं हुआ हो।

जीवनको भी उन्होंने हम लोगोंके लिये लिखा हो। परन्तु वह आज हमको प्राप्त नहीं है। यह हम लोगोका अभाग्य है।

इतिहास लिखने में जनश्रुतिया भी साधनभूता हैं। क्योंकि अनेक इतिहासोके पत्र केवल जनश्रुतियोंके आधार पर ही रगे जाते हैं। कविवरके जीवनकी अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। परन्तु अनुमानसे जाना जाता है कि, वे सब प्रथम जीवनके पश्चात्की हैं, इसलिये हम उन्हे शेषजीवनमें सम्मिलित करना ठीक समझते है।

१ शाहजहां वादशाहके दरवारमें कविवर बनारसीदासजीने वडी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वादशाहकी कृपाके कारण उन्हें प्रतिदिन दरवारमे उपस्थित होना पडता था और महलमे जाकर प्रायः निरन्तर सतरज खेलना पडती थी। कविवर सतरंजके वडे खिलाडी थे। कहते है कि, वादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्यके साथ सतरज खेलना पसन्द ही नही करते थे। वादशाह जिस समय दौरेपर निकलते थे, उस समय भी वे कविवरको साथमे रखते थे। तव अनेक राजा और नवाव खूव चिढते थे, जव वे एक साधारण वणिकको वादशाहकी वरावरी पर वैठा देखते थे, और अपनेको उससे नीचे। सवत् १६९८ के पश्चात् कविवरका मोह उपशान्त होने लगा था, ऐसा कथानकमें कहा गया है। और हम जो कथा लिखते है, वह उसके भी कुछ पीछेकी है, जव कि, उनके चरित्र और भी विशद हो रहे थे, और जव वे अष्टाग सम्यक्त्वकी धारणा पूर्णतया कर रहे थे। कहते है कि उस समय कविवरने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी। अर्थात् उन्होंने संसारको तुच्छ समझके यह निश्चय किया था कि, मैं

१ सतरजपर कविवरने अनेक कवितायें लिखी है।

जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसीके भी आगे मस्तक नम्र नहीं करूगा। जब यह बात फैलते २ बादशाहके कानोतक पहुची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नही हुए। वे कविवरके स्वभावसे और धर्मश्रद्धासे भलीभाति परिचित थे, परन्तु उस श्रद्धाकी सीमा यहां तक पहुच गई है, यह वे नहीं जानते थे, इसीसे विस्मित हुए। इस प्रतिज्ञाकी परीक्षा करनेके रूपमें उस समय बादशाहको एक मसखरी सूझी। आप एक ऐसे स्थानमे बैठे, जिसका द्वार बहुत छोटा था, और जिसमें विना सिर नीचा किये हुए कोई प्रवेश नहीं कर सक्ता था। पश्चात् कविवरको एक सेवकके द्वारा बुला भेजा। कविवर द्वारपर आते ही ठिठक गये, और हुजूरकी चालाकी समझके चटसे बैठ गये। पश्चात् शीघ्र ही द्वारमे पहिले पैर डालके प्रवेश कर गये। इस क्रियासे उन्हे मस्तक नम्र न करना पड़ा। बादशाह उनकी इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुए, और हँसकर बोले, कविराज! क्या चाहते हो? इस समय जो मागो मिल सक्ता है, कविवरने तीन वार वचनबद्ध करके कहा, जहापनाह! यह चाहता हू कि, आजके पश्चात् फिर कभी दरबारमे स्मरण न किया जाऊ! इस विचित्र याचनासे बादशाह तथा अन्य समस्त दरबारी जो उस समय उपस्थित थे, चकित तथा स्तभित हो रहे। बादशाह इस वचनके हार देनेसे बहुत दुःखी हुए, और उदास होके बोले, कविवर! आपने अच्छा नहीं किया। इतना कहके अन्तःपुरमें चले गये, और कई दिनतक दरबारमें नहीं आये। कविवर अपने आतमध्यानमें लवलीन रहने लगे।"

२ जहांगीरके दरबारमें भी इससे पहिले एक बार और यह बात

चली थी, कि बनारसीदास किसीको सलाम नही करते है। कहते हैं कि, उससमय जब उनसे सलाम करनेके लिये कहा गया था, तब उन्हों ने–यह कवित्त गढकर कहा था—

जगतके[1] मानी जीव, ह्वै रह्यो गुमानी ऐसो,
आस्रव असुर दुखदानी महा भीम है।
ताको परिताप खंडिवेको परगट भयो,
धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है॥
जाके परभाव आगे भागें परभाव सब,
नागर नवल सुखसागरकी सीम है।
संवरको रूप धरै साधै शिवराह ऐसो,
ज्ञानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है॥

२ एक वार बनारसीदासजी किसी सडकपर शुष्कभूमि देखकर पेशाब करने लगे, यह देखकर एक शाही सिपाहीने जो तत्काल ही भरती हुआ था, और जो कविवरको पहिचानता नहीं था, पासमे आकर इन्हे पकड लिया और दो चार चपत (तमाचे) जड दिये। कविवरने तमाचे सह लिये, चू तक नही किया और चलते बने। दूसरे दिन शाहीदरबारमें कार्यवशात्, दैवयोगसे वही सिपाही उस समय हाजिर किया गया, जब कविवर बादशाहके निकट ही बैठे हुए थे। उन्हें देखकर बेचारे सिपाहीके प्राण सूख गये। वह समझा कि, अब मेरी मृत्यु आ पहुँची है, तब ही मैंने कल इस दरबारीसे खडे बैठे शत्रुता कर ली है। आज इसीने शिकायत करके मुझे उपस्थित कराया है। इन विचारो-

१ यह कवित्त "नाटक समयसार" मे भी है।

से वह थर २ कापने लगा। बनारसी उसके मनका भाव समझ गये। सिपाही जिसकार्यके लिये बुलाया गया था, जब उसकी आज्ञा दे दी गई, तब पीछेसे कविवरने बादशाहसे उसकी सिफारिश की कि, हुजूर! यह सिपाही बहुकुटुम्बी और अतिशयदीन है, यदि सरकारसे इसका कुछ वेतन बढा दिया जावे, तो बेचारेका निर्वाह होने लगेगा। मैं जानता हू, यह ध्यानतदार नौकर है। कविवरके कहने पर उसी समय उसकी वेतन वद्धि कर दी गई। इस घटनासे सिपाही चकित स्तभित हो गया। उसके हृदयमें कविवरके लिये 'धन्य! धन्य!' शब्दोकी प्रतिध्वनि वारम्वार उठने लगी। वह उन्हें मनुष्य नही किन्तु देवरूपमे समझने लगा, और उस दिनसे नित्य प्रात.काल उनके द्वारपर जाके जब नमस्कार कर आता, तब अपनी नौकरीपर जाता था।

४ आगेरेमे एक वार "बाबा शीतलदासजी" नामके कोई सन्यासी आये हुए थे। लोगोमे उनकी शान्तिता और क्षमाके विषयमे नाना प्रकार अतिशयोक्तिया प्रचलित हो रही थी, जिन्हें सुनकर कविवर उनकी परीक्षा करनेको प्रस्तुत हो गये। एक दिन प्रभातकालमें सन्यासीजीके पास गये, और बैठके भोली २ बाते करने लगे। बातोंका सिलसिला टूटने पर पूछने लगे, महाराज! आपका नाम क्या है? बाबाजी बोले, लोग मुझे 'शीतलदास' कहा करते हैं। कुछ देर पीछे यहा वहाकी वार्ता करके फिर पूछने लगे, कृपानिधान! मैं भूल गया, आपका नाम? उत्तर मिला, शीतलदास। एक दो बाते करनेके पीछे ही फिर पूछ बैठे, महाशय! क्षमा कीजिये, मै फिर भूल गया, आपका नाम? इस प्रकार जब तक आप वहा बैठे रहे, फिर २

कर नाम पूछते रहे, और उसी प्रकार उत्तर भी पाते रहे। फिर वहांसे उठके जब घरको चलने लगे, तब थोडी दूर जाके लौटे और फिर पूछ बैठे, महाराज! क्या करूं, आपका नाम सर्वथा अपरिचित है. अत मैं फिर भूल गया, फिर बतला दीजिये। अभी तक तो बाबाजी शान्तिताके साथ उत्तर देते रहे, परन्तु अबकी बार गुस्सेसे बाहर निकल ही पडे। झुँझलाके बोले, अबे बेवकूफ! दशवार कह तो दिया कि, शीतलदास! शीतलदास!! शीतलदास!!! फिर क्यों खोपडी खाये जाता है? बस! परीक्षा हो चुकी, महाराज फेल (अनुत्तीर्ण) हो गये। कविवर यह कह कर वहांसे चलते बने कि, महाराज! आपका यथार्थ नाम 'ज्वालाप्रसाद' होने योग्य है, इसी लिये मैं उस गुणहीन नामको याद नही रख सक्ता था।

५ एकवार दो नग्नमुनि आगरेमें आये हुए थे, और मन्दिरमें ठहरे थे। सब लोग उनके दर्शन वन्दनको आते जाते थे, और अपनी २ बुद्ध्यनुसार प्राय. सब ही उनकी प्रशसा किया करते थे। कविवर परीक्षाप्रधानी जीव थे। उन्हें सब लोगोंकी नाई, दर्शन पूजनको जाना ठीक नही जँचा, जब तक कि मुनि परीक्षित न हो। अतएव स्वय परीक्षाके लिये उद्यत हुए। एक दिन उक्त मुनिद्वय मन्दिरके दालानमें एक झरोखे (गवाक्ष)के निकट बैठे हुए थे और सम्मुख भक्तजन धर्मोपदेश सुननेकी आशासे बैठे थे। झरोखेकी दूसरी ओर एक बाग था। उस बागमें मुनियोंकी दृष्टि भलीभाति पहुंचती थी, और बागमें टहलनेवाले पुरुषकी दृष्टि भी मुनियोपर स्पष्टरीत्या पडती थी। कविवर उस बगीचेमें पहुचे, और झरोखेके

समीप खड़े हो गये। जब किसी मुनिकी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अंगुली दिखाके उसे चिढ़ाते थे। मुनियोंने उनकी यह कृति कई बार देखके मुख फेर लिया, परन्तु कविवरने अपनी अंगुली मटकाना बन्द न किया। निदान मुनिद्वय क्षमा विसर्जन करनेको उद्यत हो गये। और भक्तजनोकी ओर मुंह करके बोले, कोई देखो तो बागमें कोई कूकर ऊधम मचा रहा है। इतने शब्दोंके सुनते ही जब तक कि, लोग बागमें देखनेको आये, कविवर लम्बे २ पैर रखके नौ दो ग्यारह हो गये। देखा तो वहा कोई न था। बनारसीदासजी पैर बढाये हुए चले जा रहे थे। फिरके मुनि महाशयोसे कहा, महाराज! वहा और तो कूकर शूकर कोई न था, हमारे यहाके सुप्रतिष्ठित पंडित बनारसीदासजी थे, जो हम लोगोके पहुचनेके पहिले ही वहांसे चले गये। यह जानके कि, वह कोई विद्वान् परीक्षक था, मुनियोंको कुछ चिन्ता हुई, और दोचार दिन रहके वे अन्यत्र विहार कर गये। कहते हैं कि, कविवर परीक्षा कर चुकनेपर फिर मुनियोके दर्शनोंको नहीं गये।

६ भाषाकवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई हुई रामायणका भारतमें असाधारण प्रचार है, और यथार्थमे वह प्रचारके योग्य ही ग्रन्थ है गोस्वामीजी बनारसीदासजीके समकालीन थे। संवत् १६८० में जिस समय तुलसीदासजीका शरीरपात हुआ था, बनारसीदासजीकी आयु केवल ३७ वर्षकी थी। इस लिये जो अनेक कथाओमे सुनते हैं कि, बनारसीदासजी और तुलसीदासजीका कई बार मिलाप हुआ था, सर्वथा निर्मूलक भी नहीं हो सक्ता।

गोस्वामीजी निरे कवि ही नहीं थे, वे एक सच्चरित्र महात्मा थे। और सज्जनोंसे भेट करना बनारसीदासजीका एक स्वभाव था, इस लिये भी दन्तकथाओंपर विश्वास किया जा सक्ता है। यद्यपि कविवरकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है, और उसमें इस विषयका उल्लेख नहीं है, तो भी दन्तकथाओंमें सर्वथा तथ्य नही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सक्ता। एक साधारण बात समझके जीवनीमें उसका उल्लेख न करना भी सभव है।

कहते हैं कि, एकबार तुलसीदासजी बनारसीदासजीकी काव्य-प्रशसा सुनकर अपने कुछ चेलोंके साथ आगरे आये तथा कविवरसे मिले। कई दिनोंके समागमके पश्चात् वे अपनी बनाई हुई रामायणकी एक प्रति भेट देकर विदा हो गये। और पार्श्वनाथस्वामीकी स्तुतिमय दो तीन कवितायें जो बनारसीदासजीने भेटमें दी थी, साथमे लेते गये। इसके दो तीन वर्षके उपरान्त जब दोनों कविश्रेष्ठोंका पुनः समागम हुआ, तब तुलसीदासजीने रामायणके सौन्दर्य्य विषयमें प्रश्न किया। जिसके उत्तरमें कविवरने एक कविता उसी समय रचके सुनाई—

"विराजै रामायण घटमाहि, विराजै रामायण॰"

(बनारसीविलास पृष्ठ २४२।)

तुलसीदासजी इस अध्यात्मचातुर्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले "आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है," मैं उसके बदलेमे आपको क्या सुनाऊ? । उस दिन आपकी पार्श्वनाथस्तुति पढके मैने भी एक पार्श्वनाथस्तोत्र बनाया था, उसे आपको ही भेट करता हूं। ऐसा कहके "भक्तिविरदावली" नामक एक सुन्दर कविता कविवरको अर्पण की। कविवरको उस कवितासे

बहुत सतोष हुआ, और पीछे बहुत दिनो तक दोनो सज्जनोकी भेट समय २ पर होती रही।

भक्तिविरदावलीकी कविता सुन्दर है, उसकी रचना अनेक छन्दोमें है। तौ भी रामायणकी कविताका ढग उसमें नही है, इस लिये उक्त किवदन्तीपर एकाएक विश्वास नही हो सक्ता। पाठकोंके जाननेके लिये उसके अन्तिम दो छन्द यहा उद्धृत किये जाते हैं—

गीतिका।

पदजलज श्री भगवानजूके, बसत है उर माहिं।
चहुँगतिविहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं॥
थकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सु बपुरा कौन?
तिहि लसत करुणाजन–पयोधर, भजहिं भविजन तौन॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत, दहन दोष अधीर॥
जिहि नाथ पारस जुगल पंकज, चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत तुलसीदास॥

उक्त विरदावलीमें 'तुलसीदास' इस नामके अतिरिक्त जो कि पाच छह स्थानोमे आया है, और कोई बात ऐसी नही है, जिससे यह निश्चय हो सके कि, यह 'तुलसी' गुसाईजी ही थे, अथवा कोई अन्य। परन्तु गुसाईजी का होना सर्वथा असंभव भी नही कहा जा सक्ता। क्योंकि उस समयके विद्वानोमें आजकलकी नाईं धर्मद्वेष नहीं था। वे बडे सरलहृदयके भक्त थे।

७ कविवरका देहोत्सर्गकाल अविदित है, यह ऊपर कहा

जा चुका है, परन्तु मृत्युकालकी एक किवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि, अन्तकालमे कविवरका कठ अवरुद्ध हो गया था, रोगके सक्रमणके कारण वे वोल नहीं सक्ते थे। और इसलिये अपने अन्त समयका निश्चयकर ध्यानावस्थित हो रहे थे। लोगोको विश्वास हो गया था कि, ये अव घटे दो घटेसे अधिक जीवित नहीं रहेगे, परन्तु कविवरकी ध्यानावस्था जव घटे दो घटेमें पूर्ण नहीं हुई, तव लोग तरह २ के ख्याल करने लगे। मूर्खलोग कहने लगे कि, इनके प्राण माया और कुटुम्बियोंमें अटक रहे हैं, जव तक कुटुम्बीजन इनके सम्मुख न होंगे और दौलतकी गठरी इनके समक्ष न होगी, तव तक प्राणविसर्जन न होगे। इस प्रस्तावमे सवने अनुमति प्रकाश की, किसीने भी विरोध नहीं किया। (मूर्खमडलको नमस्कार है!) परन्तु लोगोके इस तरह मूर्खता-पूर्ण विचारोको कविवर सहन नहीं कर सके। उन्होने इस लोकमूढताका निवारण करना चाहा, इसलिये एक पट्टिका और लेखनीके लानेके लिये निकटस्थ लोगोको इशारा किया। वडी कठिनताके साथ लोगोने उनके इस सकेतको समझा। जव लेखनी पट्टिका आ गई, तव उन्होंने निम्नलिखित दो छन्द गढकर लिख दिये। इन्हें पढकर लोग अपनी भूलको समझ गये, और कविवरको कोई परम विद्वान् और धर्मात्मा समझकर वैयावृत्यमे लवलीन हुए।

ज्ञान कुतका हाथ, मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनंत सु सोहना॥
जा परजैको अंत, सत्यकर मानना।
चले वनारसिदास, फेर नहिं आवना॥

इस कथासे जाना जाता है कि, कविवरकी मृत्यु किसी ऐसे स्थानमे हुई है, जहां उनके परिचयी नहीं थे । क्योंकि आगरे अथवा जौनपुरमे उनकी बडी प्रतिष्ठा थी, वहा इस प्रकारकी घटना नहीं हो सक्ती थी ।

बनारसीदासजीकी रचना ।

बनारसीविलास, नाटकसमयसार, नाममाला, और अर्द्धकथानक, ये चार ग्रन्थ कविवरकी रचनाके प्रसिद्ध हैं । बाबा दुलीचन्दजी सगृहीत ग्रन्थोंकी सूची (जैनशास्त्र नाममाला) में बनारसीपद्धति ग्रन्थ भी आपका बनाया हुआ लिखा है । अभी तक हम अर्धकथानक और बनारसीपद्धति दोनोंको एक समझते हैं, परन्तु दुलीचन्दजीके लेखसे दो पृथक् ग्रन्थ प्रतीत होते हैं । क्योंकि उन्होने बनारसीपद्धतिको जयपुरके भंडारमें मौजूद बतलाया है । अतः हो सक्ता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ हो, अथवा

---

१ और पाचवा ग्रन्थ वह है, जो यमुनानदीके विशालगर्भमें सदाके लिये विलीन हो गया है । और जिसके लिये कर्ता महाशयके रसिक मित्र दु.खी हुए थे । पाठको ! स्मरण है, वह **शृङ्गाररस**का ग्रन्थ था ।

२ **बनारसीपद्धति**की श्लोकसख्या बाबा दुलीचन्दजीने ५०० लिखी है, और अर्धकथानककी श्लोकसख्या उससे दुगुनीके अनुमान है । अर्धकथानकमे ६७० दोहा चौपाई है । अत. सदेह होता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ होगा, यदि बाबाजीका लिखना सत्य हो तो । इसके अतिरिक्त बाबाजीने बनारसीपद्धतिको भाषा छन्दोबद्ध विलासोके कोष्टकमें भी लिखा है । जिससे प्रतीत होता है कि, यह भी कोई बनारसीविलास सरीखा सग्रह है, जो किसी दूसरेने किया है, अथवा स्वय कविवरका किया हुआ है ।

अर्द्धकथानकका ही उत्तरार्द्ध हो, जिसमें उत्तरजीवनकी कथा लिखी गई हो, और अपर नाम बनारसीपद्धति हो। परन्तु हमारे देखनेमे यह ग्रन्थ नहीं आया। प्रयत्नसे यदि प्राप्त हो जावेगा, तो वह भी कभी पाठकोंके समक्ष किया जावेगा।

१ बनारसी विलास—यह कोई स्वतत्र ग्रन्थ नहीं है, किन्तु कविवर रचित अनेक कविताओका संग्रह है, इस सग्रहके कर्त्ता आगरानिवासी पडित जगजीवनजी हैं। आप कविवरकी कविताके बडे प्रेमी थे। सवत् १७७१ मे आपने बड़े परिश्रमसे इस काव्यका सग्रह किया है, ऐसा अन्त्यप्रशस्तिसे स्पष्ट प्रतिभासित होता है। सज्जनोत्तम जगजीवनजी आगराके ही रहनेवाले थे, इससे संभवतः उनकी सब कविताओंका सग्रह आपने किया होगा, परन्तु हमको आशा है कि, यदि अब भी प्रयत्न किया जावेगा, तो बहुत सी कवितायें एकत्रित हो सकेगी। इस भूमिकाके लिखते समय हमने दो तीन स्थानोको इस विषयमें पत्र लिखे थे। यदि अवकाश होता, तो बहुत कुछ आशा हो सक्ती थी, परन्तु शीघ्रता की गई, इससे कुछ नहीं हो सका। तथापि दो तीन पद इस संग्रहके अतिरिक्त मिले हैं, जिन्हे हमने ग्रन्थान्तमें लगा दिये है। 'बनारसी विलास' की कविता कैसी है, इसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। "कर ककनको आरसी क्या?" काव्यरसिक पाठक स्वय इसका निर्णय कर लेंगे।

२ नाटक समयसार—यह ग्रन्थ भाषासाहित्यके गगनमंड-

१ सग्रहकर्त्ताने इस ग्रन्थमे थोडेसे पद्य कँवरपालकी छापवाले भी सग्रह कर लिये है। यह कँवरपालजी बनारसीदासजीके पाच मित्रोंमें अन्यतम थे।

लका निष्कलंक चन्द्रमा है। इसकी रचनामें कविवरने अपनी जिस अपूर्व शक्तिका परिचय दिया है, उसे भाषासाहित्यके अध्यात्मकी चरमसीमा कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी। नाटक समयसारकी रचना आदिका समय पहिले लिखा जा चुका है, यहा उसके काव्यका परिचय देनेके लिये हम दो चार छन्द उद्धृत करते हैं। पाठक ध्यानसे पटें, और देखे हमारा लिखना कहा तक सत्य है।

(१)

मोक्ष चलवेको सौन[1], करमको करै वौन[2],
जाको रस भौन बुध लौन ज्यों घुलत है।
गुणको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ,
जाको जस कहत सुरेश अकुलत है॥
याहीके जो पक्षी सो उड़त ज्ञान गगनमें,
याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है।
हाटक[3] सो विमल विराटक सो विसतार,
नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है॥

(२)

काया चित्रसारीमें करम परजंक[4] भारी,
मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना।
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये,
मोहकी मरोर यह लोचनको ढपना॥

१ जीना (सीढिया)। २ वमन (उलटी)। ३ सुवर्ण। ४ पलंग।

उदै बल जोर यहै स्वासको शवद घोर,
विषय सुख काजकी दौर यहै सपना ॥
ऐसी मूढ दशामे मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजालमे न पावै रूप अपना ॥

(३)

काजविना न करै जिय उद्यम, लाजविना रन माहिं न जूझै ।
डीलविना न सधै परमारथ, शीलविना सतसौं न अरूझै ॥
नेमविना न लहै निहचैपद, प्रेमविना रस रीति न वूझै ।
ध्यानविना न थंभै मनकी गति, ज्ञानविना शिवपंथ न सूझै ॥

(४)

रूपकी न झाँक[1] हिये करमको डॉक पिये,
ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक[2] जैसे घनमें ।
लोचनकी ढॉकसों न माने सदगुरु हॉक,
डोलै पराधीन मूढ रॉक[3] तिहूंपनमे ॥
टॉक[4] इक मांसकी डलीसी तामे तीन फॉक[5],
तीनिको सो ऑक[6] लिखि राख्यो काहू तनमें ।
तासों कहै 'नॉक' ताके राखिवेको करै कॉक,
लॉकसो[7] खरग वांधि वॉक[8] धरै मनमे ॥

१ झलक। २ चन्द्रमा। ३ रक (दीन)। ४ टक (परिमाण-विशेष)। ५ टुकडे। ६ अक (सख्या)। ७ लक (कमर)। ८ वकता (टिडाई)।

(५)

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं ।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सबमाहिं ॥

(६)

कायासे विचारि प्रीति मायाहीमे हारजीति,
लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी ।
चुंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़े पै न छांड़े टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठोर पावे,
धावै चहुंओर ज्यों वढ़ावै जाल मकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जंजीरनसों जकरी ॥

(७)

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है ।
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदान की सु,
राची नरवाची ठौर सांची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधा रस पंथनिमे ग्रंथनिमे गाई है ।
संततिकी मानी निरवानी नूरकी निशानी,
याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

पाठक ! इस ग्रन्थकी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकारकी है। जिस पद्यको देखते हैं, जी चाहता है कि, उसीको उद्धृत कर ले, परन्तु इतना स्थान नही है, इसलिये इतनेमें ही सतोष करना पडता है। आपकी इच्छा यदि अधिक बलवती हो, तो उक्त ग्रन्थका एकवार आद्यन्त पाठ कर जाइये।

नाटकसमयसार मूल, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रन्थ है। उसपर परमभट्टारक श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत सस्कृत टीका तथा कलशे है। और पडित रायमलजीकृत बालावबोधिनी भाषा-टीका है। इन्ही दोनो तीनों टीकाओंके आश्रयसे कविवरने इस अपूर्व पद्यानुवादकी रचना की है।

३ **नाममाला**—यह महाकवि श्रीधनजयकृत नाममालाका भाषा पद्यानुवाद है। शब्दोंका ज्ञान करनेके लिये यह एक अत्यन्त सरल और उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ हमारे देखनेमें नही आया। परन्तु ग्रन्थप्रकाशक महाशयने मुजफ्फरपुरजिलेके छपरौली ग्रामके बालकोको एकवार पढते हुए सुना था, परन्तु पीछे प्रयत्न करने पर भी नही मिला। नाममालाके कुछ दोहे नाटक समयसारमें इस प्रकार लिखे हैं—

प्रज्ञा धिपना शेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि॥

---

१ पण्डित जयचन्दजी, और पडित हेमराजजीने भी समयसारकी भाषाटीका की है। पडित जयचन्दजीकी टीका सबसे विस्तृत और बोधप्रद कही जाती है।

२ शेमुषीधिषणा प्राज्ञा, मनीषा धीस्तथाशय॥ ११०॥

निपुन विचच्छन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान।
पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान॥
कलावान कोविद कुशल, सुमन दच्छ धीमन्त।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त॥

४ अर्द्धकथानक—यह कविवरकी रचनाका चौथा ग्रन्थ है, इसमें ६७३ दोहा चौपाई हैं। हमने यह जीवनचरित्र इसी ग्रन्थके आधारसे लिखा है। इसकी कविताका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीवनचरित्रमें यत्र तत्र इसके अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। अनुमानसे जाना जाता है कि यह ग्रन्थ बड़ी शीघ्रतासे लिखा गया है, क्योंकि अन्य कविताओंकी नाईं कविवरने इसमें यमकानुप्रासादिपर ध्यान नहीं दिया है। केवल व्यतीतदशाका कथन ही इसके रचनेका मुख्य उद्देश रहा है। फिर भी कहीं २ के स्वाभाविक पद्य बड़े मनोहर हुए हैं।

उपसंहार।

अन्तमें हिन्दीके प्रिय गुणग्राही पाठकगणोंसे निवेदन करके यह लेख पूर्ण किया जाता है कि, ग्रन्थकर्ता, प्रकाशक और सबके अन्तमें संशोधक तथा चरित्रलेखकके परिश्रमका विचार करके वे इसे ध्यानसे पढ़ें, पढ़ावें, और सर्व साधारणमें प्रचार करें। इतनेसे ही हम लोग अपना परिश्रम सफल समझेंगे। प्रकाशक महाशयकी आदरणीय प्रेरणासे मैंने इस ग्रन्थके संशोधनादिका कार्य अपनी मन्दबुद्ध्यनुसार किया

---

१ प्राज्ञामेधादिमान्विद्वानभिरूपो विचक्षण ।
पण्डित. सूरिराचार्यो वाग्मी नैयायिक स्मृत· ॥ १११ ॥

है, उसमें कहातक सफलता हुई है, इसके निर्णयका भार पाठकोंपर ही है। यदि वाचकोंने हमारे इस परिश्रमका किंचित् भी आदर किया तो, शीघ्र ही वृन्दावनविलासादि काव्य ग्रन्थ कवियोंके विस्तृत इतिहाससहित दृष्टिगोचर करनेका प्रयत्न किया जावेगा।

हिन्दीके माननीय पत्रसम्पादकों और समालोचकोंसे प्रार्थना है कि, वे कृपाकर इस ग्रन्थकी आद्यन्त-पाठपूर्वक निष्पक्षदृष्टिसे समालोचना करनेकी कृपा करें और हम लोगोंके उत्साह और हिन्दी-प्रचारकी रुचिको बढावें।

बनारसीदासजीके चरित्र लिखनेमें माननीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ जोधपुरसे मुसलमानी इतिहासकी बहुत सी बातोंकी सहायता मिली है, इस लिये यह ग्रन्थ और लेखक दोनों उनके आभारी हैं!

ग्रन्थसंशोधन तथा जीवनचरित्रमें दृष्टिदोषसे तथा प्रमादवशसे यदि कोई भूल रह गई हो, तो पाठकवृन्द क्षमा करें। क्योंकि—

"न सर्वः सर्वं जानाति" इत्यलम् विद्वद्वरेषु।

बम्बई-चन्दाबाड़ी। }
३०-९-०५ ई० }

विनयावनत—
नाथूराम प्रेमी।
देवरी (सागर) निवासी।

बनारसीविलास ग्रन्थकी

विषयानुक्रमणिका.

विषयनाम. पृष्ठसंख्या.

नमः श्रीवीतरागाय.

जैनग्रन्थरत्नाकरस्थ—रत्न ७ वां

बनारसीविलास.

विषय सूचनिका.

कवित्त मनहर

प्रथम सहस्रनाम[१] सिन्दूरप्रकर[२]धाम, बावनीसवैया[३] वेद-
निर्णय[४] पचासिका । त्रेसठशलाका[५] मार्गना[६] करमकी[७] प्रकृति-
कल्याणमन्दिर[८] साधुवन्दन[९] सुवासिका ॥ पैड़ी[१०] करमछत्तीसी[११]
पीछे ध्यानकी वत्तीसी[१२], अध्यातम[१३] वत्तीसी पचीसी[१४] ज्ञान
शासिका । शिवकी पचीसी[१५] भवसिन्धुकी चतुरदशी[१६], अध्यात-
मफाग[१७] तिथिषोड़स[१८]विलासिका ॥ १ ॥

तेरहकाठिया[१९] मेरे मनका सुप्यारागीत[२०], पंचपद[२१] विधान
सुमति देवीशत[२२] है । शारदा वड़ाई[२३] नवदुरगा[२४] निर्णय नाम[२५],
नौरतन[२६] कवित्त सु पूजा[२७] दानदत[२८] है ॥ दशवोल[२९] पहेली[३०] सुप्रश्न[३१]

प्रश्नोत्तरमाला[३२], अवस्था[३३] मतान्तर[३४] दोहरा[३५] वरणत है। अजितके[३६] छन्द शान्तिनाथछन्द[३७] सेनानव[३८], नाटककवित्त[३९] चार, वानी मिथ्या[४०] मत है ॥ २ ॥

फुटकररसवैया[४१] वनाये वच गोरखके[४२], वेद आदिभेद[४३] परमारथ[४४] वचनिका । उपादान[४५] निमित्तकी चिट्ठी तिनहीके[४६] दोहे, भैरों[४७] रामकली[४८] ओ विलावल[४९] सचनिका ॥ आशावरी[५०] वरवा[५१] सु धनाश्री[५२] सारंग[५३] गौरी[५४], काफी[५५] ओ हिडोलना[५६] मलारकी[५७] मचनिका । भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदैमें, विरधौ! वनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

दोहा.

ये वरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त ।
इनमें गर्भित भेद वहु, तिनकी कथा अनन्त ॥ १ ॥
महिमा जिनके वचनकी, कहै कहा लग कोय ।
ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यो त्यो अधिकी होय ॥२॥

इति विषयसूचनिका

श्री

अथ जिनसहस्रनाम.

दोहा.

परमदेव परनामकर, गुरुको करहुं प्रणाम ।
बुधिबल वरणों ब्रह्मके, सहसअठोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहो, कहो सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविधि शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपाई १५ मात्रा

प्रथमोकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ॥
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द । गिरातीत गुणमूल अनन्द ॥ १ ॥
गुणी गुप्त गुणग्राहक बली । जगतदिवाकर कौतूहली ॥
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अलख अमूरति अरस अखेद । अचल अबाधित अमर अवेद ॥
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनँदकन्द ॥ ३ ॥
प्राणनाथ पावन अमलान । शील सदन निर्मल परमान ॥
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाण । अविनाशी अस्पर्श अमान ॥
अमल अनादि अदीन अछोभ । अनातङ्क अज अगम अलोभ ॥५॥

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अघट अनूप ॥
अपट अरूपी अभय अमार । अनुभवमडन अनघ अपार ॥६॥
विमल[1]पूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ॥
नभवत पुंडरीकवत हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस ॥ ७ ॥
निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ॥
सुखधर्मी सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा

अम्बरवत आकाशवत, क्रियारूप करतार ।
केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥१॥

चौपाई.

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ॥
अप्रमाण अघहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण॥१३॥
कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारूढ असहाय ॥
सुगम अनन्तराम गुणग्राम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १४॥
लोकविकाशी लक्षणवन्त । परमदेव परब्रह्म अनन्त ॥
दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम दिकपाल ॥ १५ ॥
सत्यारथ सुखदायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ॥
ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान । नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

---

१ 'विपुल' ऐसा भी पाठ है

अकथ अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत[1] ॥
मगलकारी मगलमूल । विद्यासागर विगतदुकूल[2] ॥ १७ ॥
नित्यानन्द विमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मविधान ।
ध्यानी धामवान धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ॥
तपसागर तपपुञ्ज अछेद । भवभयभजन अमृत अभेद ॥१९॥
गुणावास गुणमय गुणदाम । स्वपरप्रकाशक रमता राम ॥
नवल पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥२०

दोहा

लघुरूपी लालचहरन, लोभविदारन वीर ।
धारावाही धौतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयशतक ॥२॥

पद्धरिछन्द.

चिन्तामणि चिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ॥
चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूडामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥२२॥
चारित्रधाम चित् चमत्कार । चरनातम रूपी चिदाकार ॥
निर्वाचक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥२३॥
निरभोग निरास्रव निराहार । नगनरकनिवारी निर्विकार ।
आतमा अनक्षर अमरजाद । अक्षर अबध अक्षय अनाद॥२४॥

---

१ 'विपति अतीत' ऐसा भी पाठ है २ वस्त्र

आगत अनुकम्पामय अडोल। अशरीरी अनुभूती अलोल ॥
विश्वंभर विस्मय विश्वटेक। व्रजभूषण व्रजनायक विवेक॥२५॥
छलभजन छायक छीनमोह। मेधापति अकलेवर अकोह ॥
अद्रोह अविग्रह अग अरंक। अद्भुतनिधि करुणापति अवंक २६
सुखराशि दयानिधि शीलपुंज। करुणासमुद्र करुणाप्रपुज ॥
वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ। निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ २७
जिननायक जिनकुंजर जिनेश। गुणपुज गुणाकर मगलेश ॥
क्षेमंकर अपद अनन्तपानि। सुखपुजशील कुलशील खानि॥२८॥
करुणारसभोगी भवकुठार। कृषिवत कृशानु दारन तुसार ॥
कैतवरिपु अकल कलानिधान। धिषणाधिप ध्याता ध्यानवान २९

दोहा.

छंपाकरोपम[1] छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ ॥
अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्मांकृत यज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पद्धरिछन्द.

लोकांत लोकप्रभु लुप्तमुद्र। सवर सुखवारी सुखसमुद्र ॥
शिवरसी गूढ़रूपी गरिष्ट। वलरूप वोधदायक वरिष्ट ॥३१॥
विद्यापति धीधव विगतवाम। धीवंत विनायक वीतकाम ॥
धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल। लीलाविलास जिन शारदूल ॥३२
परमारथ परमातम पुनीत। त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ॥
तपराशि तेजकुल तपनिधान। उपयोगी उग्र उदोतवान॥३३॥

१ चन्द्रोपम

उत्पातहरण उद्दामधाम । व्रजनाथ विमक्षर विगतनाम ॥
वहुरूपी वहुनामी अजोप । विषहरण विहारी विगतदोष॥३४॥
छितिनाथ छमाधर छमापाल । दुर्गम्य दयार्णव दयामाल ॥
चतुरेश चिदातम चिदानंद । सुखरूप शीलनिधि शीलकन्द॥३५॥
रसव्यापक राजा नीतिवत । ऋषिरूप महर्षि महमहत ॥
परमेश्वर परमऋषि प्रधान । परत्यागी प्रगट प्रतापवान॥३६॥
परतक्षपरमसुख करमसुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
सर्वज्ञ सुदर्शन सदातृप्त । शकर सुवासवासी अलिप्त ॥ ३७॥
शिवसम्पुटवासी सुखनिधान । शिवपथ शुभंकर शिखावान ॥
असमान अशधारी अशेष । निर्द्वन्दी निर्जड़ निरवशेष ॥३८॥

दोहा

विस्मयधारी वोधमय, विश्वनाथ विश्वेश ।
वधविमोचन वज्रवत, वुधिनायक विवुधेश ॥ ३९ ॥

इति लोकात नाम चतुर्थ शतक ॥४॥

छन्दरोडक

महामंत्र मगलनिधान मलहरन महाजप ।
मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ मतिमथन महातप ॥
निस्तरङ्ग निःसङ्ग नियमनायक नंदीसुर ।
महादानि महज्ञानि महाविस्तार महागुर ॥ ४० ॥
परिपूरण परजायरूप कमलस्थ कमलवत ।
गुणनिकेत कमलासमूह धरनीश ध्यानरत ॥

भूतिवान भूतेश भारछम भर्म उछेदक ।
सिहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥
शिवकारण शिवकरन भविक वधव भवनाशन ।
नीरिरंश निःसमर सिद्धिशासन शिवआसन ॥
महाकाज महाराज मारजित मारविहडन ।
गुणमय द्रव्यस्वरूप दशाधर दारिदखडन ॥ ४२ ॥
जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर ।
जगतबंधु जिनराज शीलसचय सुखसागर ॥
महाशूर सुखसदन तरनतारन तमनाशन ।
अगनितनाम अनतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥
वारिजवत जलजवत पद्म उपमा पंकजवत ।
महाराम महधाम महायशवत महासत ॥
निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि ।
प्रशमरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द.

सुरसभोगी रसील समुदायकी चाल—

शुभकारनशील इह सील राशि सकट निवारन ।
त्रिगुणातम तपतिहर परमहसपर पंचवारन ॥
परम पदारथ परमपथ, दुखभजन दुरलक्ष ।
तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामत्र नाम पचम शतक ॥५॥

रोडक छन्द

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिकन्दन ।
परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवदन ॥
जिन जिनपति जिनसिह, जगतमणि बुधकुलनायक ।
कल्पातीत कुलालरूप, दृग्मय दृगदायक ॥ ४६ ॥
कोपनिवारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुंजय ।
करुणासदन समाधिरूप, शिवकर शत्रुजय ॥
परावर्त्तरूपी प्रसन्न, आतमप्रमोदमय ।
निजाधीन निर्द्वन्द, ब्रह्मवेदक व्यतीतमय ॥ ४७ ॥
अपुनर्भव जिनदेव सर्वतोभद्र कलिलहर ।
धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥
त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलातपपादप ।
सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन अविषादप ॥४८॥
लोकअग्रवासी त्रिकालसाखी करुणाकर ।
गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥
धीरज धौरी धौतकर्म धर्म्मग धामेश्वर ।
रत्नाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥
निरलिङ्गी शिवलिङ्गधार बहुतुंड अनानन ।
गुणकदम्ब गुणरसिक रूपगुण अजिक पानन ॥
निरअकुश निरधाररूप निजपर परकाशक ॥
विगतास्रव निरबध बंधहर बधविनाशक ॥ ५० ॥

केवलब्रह्म धरमधनधारी । हतविभाव हतदोष हँतारी ॥
भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
शंभु सर्वदर्शी शिवपथी । निराबाध निःसँग निर्ग्रन्थी ॥
यती यंत्रदाहत (?) हितकारी । महामोहवारन बलधारी॥६९॥
चितसन्तानी चेतनवशी । परमाचारी भरमविध्वसी ॥
सदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेशी अनन्त परिणामी॥७०॥
वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥
चारु चिदङ्कित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जीती ॥ ७१ ॥
शुभकारण शुभकर शुभमत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ७२

दोहा

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।
मुक्ति मुकुन्द महेश हर, महदानद मुनीश ॥ ७३ ॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥ ८ ॥

मगलकमला

दुरित दलन सुखकन्द । हत भीत अतीत अमन्द ॥
शीलशरणहत कोप । अनभंग अनंग अलोप ॥ ७४ ॥
हसगरभ हतमोह । गुर्णसंचय गुणसन्दोह ॥
सुखसमाज सुख गेह । हतसंकट विगत सनेह ॥ ७५ ॥
क्षोभदलन हतशोक । अगणित बल अमलालोक ॥
धृतसुधर्म कृतहोम । सतसूर अपूरव सोम ॥ ७६ ॥

१ दूसरी पुस्तकमे 'त्रिगुणातम निज सन्दोह' ऐसा पाठ है

हिमवत हतसंताप । अजव्यापी विगतालाप ॥
पुण्यस्वरूपी पूत । सुखसिंधु स्वयं संभूत ॥ ७७ ॥
समयसारश्रुतिधार । अविकलप अजलपाचार ॥
शांतिकरन धृतशांति । कलरूप मनोहरकान्ति ॥ ७८ ॥
सिंहासनपर आरूढ़ । असमंजसहरन अमूढ ॥
लोकजयी हतलोभ । कृतकर्मविजय धृतशोभ ॥ ७९ ॥
मृत्युंजय अनजोग । अनुकम्प अशंक असोग ॥
सुविधिरूप सुमतीश । श्रीमान् मनीषाधीश ॥ ८० ॥
विदित विगत अवगाह । कृतकारज रूपअथाह ॥
वर्द्धमान गुणभान । करुणाधरलीलविधान ॥ ८१ ॥
अक्षयनिधान अगाध । हतकलिल निहतअपराध ॥
साधिरूप साधक धनी (?) । महिमा गुणमेरु महामनी (?) ८२
उतपति वैध्रुववान । त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान ॥
जगजीत जगदाधार । करुणागृह विपतिविदार ॥ ८३ ॥
जगसाक्षी वरवीर । गुणगेह महागंभीर ॥
अभिनंदन अभिराम । परमेयी परमोद्दाम ॥ ८४ ॥

दोहा

सगुण विभूती वैभवी, सेमुषीश सबुद्ध ।
सकल विश्वकर्मा अभव, विश्वविलोचन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक ॥ ९ ॥

सगलकमला

शिवनायक शिव एव । प्रवलेश प्रजापति देव ॥
मुदित महोदय मूल । अनुकम्पा सिधु अकूल ॥ ८६ ॥
नीरोपम गर्त पक । नीरीहत निर्गत शक ॥
नित्य निरामय भौन । नीरन्ध्र निराकुल गौन ॥ ८७ ॥
परम धर्म रथ सारथी (१) । धृत केवल रूप कृतारथी (२) ॥
परम नित्य भंडार । सवरमय सयमधार ॥ ८८ ॥
शुभी सरवगत सत । शुद्धोधन शुद्ध सिद्धत ॥
नैयायक नय जान । अविगत अनत अभिधान ॥ ८९ ॥
कर्मनिर्जरामूल । अघभंजन सुखद अमूल ॥
अद्भुत रूप अशेष । अवगमनिधि अवगमभेष ॥ ९० ॥
वहुगुण रत्नकरड । ब्रह्मांड रमण ब्रह्मड ॥
वरद वधु भरतार । महंढग महानेतार ॥ ९१ ॥
गतप्रमाद गतपास । नरनाथ निराथ निरास ॥
महामंत्र महास्वामि । महदर्थ महागति गामि ॥ ९२ ॥
महानाथ महजान । महपावन महानिधान ॥
गुणागार गुणवास । गुणमेरु गभीर विलास ॥ ९३ ॥
करुणामूल निरंग । महदासन महारसंग ॥
लोकवन्धु हरिकेश । महदीश्वर महदादेश ॥ ९४ ॥

---

१ क=पाप २ महत्+अग ३ महत्+आसन ४ महत्+ईश्वर ५ महत्+आदेश

महाविभु महधववंत । धरणीधर धरणीकत ॥
कृपावंत कलिग्राम । कारणमय करत विराम ॥ ९५ ॥
मायावेलि गयन्द । सम्मोहतिमरहरचन्द ॥
कुमति निकन्दन काज । दुखगजभंजन मृगराज ॥९६॥
परमतत्त्वसत सपदा (?) । गुणत्रिकालदर्शीसदा (?) ॥
कोपदवानलनीर । मदनीरदहरणसमीर ॥ ९७ ॥
भवकांतारकुठार । संशयमृणालअसिधार ॥
लोभशिखरनिर्घात । विपदानिशिहरणप्रभात ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, श्रीपति शीलनिकाय ॥
महादेव मनमथमथन, सुखमय सुखसमुदाय ॥ ९९ ॥

इति श्रीशिवनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा.

इति श्रीसहसअठोतरी, नाम मालिका मूल ।
अधिक कसर पुनरुक्ति की, कविप्रमादकी भूल ॥१००॥
परमपिंड ब्रह्मंडमें, लोकशिखर निवसत ।
निरखि नृत्य नानारसी, बानारसी नमत ॥ १०१ ॥
महिमा ब्रह्मविलासकी, मोपर कही न जाय ।
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
संवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
करनक्षत्र तिथि पंचमी, प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥

इति भाषाजिनसहस्रनाम ।

ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता

सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिंदूरप्रकर.)

धर्माधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

सिन्दूरप्रकरस्तपःकरिशिरःक्रोडे कषायाटवी-
  दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।
मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव-
  प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥१॥

षट्पद ।

शोभित तपगजराज, सीस सिन्दूर पूरछवि ।
बोधदिवस आरंभ, करण कारण उदोत रवि ॥
मंगल तरु पल्लव, कषाय कातार हुताशन ।
बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाकमलाशन ॥
इहिविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण संताप हर ।
जिनराय पार्श्वनखज्योति भर नमत बनारसि जोर कर ॥१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः
सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।
किं वाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथने न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधकान्तबेसरीछन्द ।

जैसे कमल सरोवर वासै । परिमल तासु पवन परकाशै ।
त्यों कवि भाषहि अक्षर जोर । सत सुजस प्रगटहि चहुँओर ॥
जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा होय ।
जो कवि अक्षर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

इन्द्रवज्रा ।

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधकान्तबेसरीछन्द ।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहि । धर्म विशेष जान आराधहि ।
धरम प्रधान कहै सब कोय । अर्थ काम धर्महितै होय ॥
धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्मपंथसाधनविना, नर तिर्यंच समान ॥ ३ ॥

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥

कवित्त मात्रिक (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष कोइ धन कारण, हीडत दीपदीप चढ़ यान ।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि, डारत जलधि जान पाषान ॥
तैसे भ्रमत भ्रमत भवसागर, पावत नर शरीर परधान ।
धर्मयत्न नहि करत 'बनारसि' खोवत वादि जनम अज्ञान ४

मन्दाक्रान्ता ।

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्यैधभारम् ।
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थं
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

मतगयन्द (सवैया)

ज्यो मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतङ्गज ईधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ सुधारससो पगधोवै ॥
वाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यो यह दुर्लभ देह '**बनारसि**', पाय अजान अकारथ खोवै५

शार्दूलविक्रीडित ।

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ।
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥

कवित्त मात्रिक. (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर उखारि कलपतरु, बोवत मूढ कनक[1]को खेत।
ज्यों गजराज बेच गिरिवर सम, कूर कुबुद्धि मोल खर[2] लेत॥
जैसे छांड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखंडमन देत।
तैसे धर्म विसार 'बनारसि' धावत अधम विषयसुखहेत॥६॥

शिखरिणी।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः।
ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते॥ ७॥

सोरठा।

ज्यों जल बूढत कोय, वाहन तज पाहन गहै।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छांड़ि सेवत विषय॥ ७॥

द्वार गाथा।

शार्दूलविक्रीडित।

भक्तिं तीर्थकरे गुरौ जिनमते संघे च हिंसानृत-
स्तेयाब्रह्मपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम्।
सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां
वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः॥८॥

---

१ धतूरा २ गर्दभ (गधा)

पट्पद ।

जिन पूजहु गुरुनमहु, जैनमतवैन बखानहु ।
सघ भक्ति आदरहु, जीव हिसा नविधानहु ॥
झूठ अदत्त कुशील, त्याग परिग्रह परमानहु ।
क्रोध मान छल लोभ जीत, सज्जनता ठानहु ॥
गुणिसग करहु इन्द्रिय दमहु, देहु दान तप भावजुत ।
गहि मन विराग इहिविधि चहहु, जो जगमै जीवनमुकत॥८॥

पूजाधिकार ।

**पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम् ।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥९॥**

२१ मात्रा सवैया छन्द ।

लोपै दुरित हरै दुख संकट, आपै रोग रहित नितदेह ।
पुण्य भँडार भरै जश प्रगटै, मुकति पंथसौ करै सनेह ॥
रचै सुहाग देय शोभा जग, परभव पँहुचावत सुरगेह ।
कुगति वंध दलमलहि वनारसि; वीतराग पूजा फल येह ॥९॥

**स्वर्गस्तस्य गृहाङ्गणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुभा
सौभाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि ।
संसारः सुतरः शिवं करतलक्रोडे लुठत्यञ्जसा
यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः १०**

देवलोक ताको घर ऑगन; राजरिद्ध सेवै तसु पाय।
ताको तन सौभाग्य आदि गुन, केलि विलास करै नित आय॥
सोनर त्वरित तरै भवसागर, निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य भाव बिधि सहित बनारसि; जो जिनवर पूजै मन लाय १०

शिखरिणी।

कदाचिन्नातङ्कः कुपित इव पश्यत्यभिमुखं
विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम्।
विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगतिः सङ्गमुदयो
न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चां रचयतः ॥११॥

ज्यौ नर रहै रिसाय कोपकर, त्यौ चिन्ताभय विमुख बखान।
ज्यौ कायर शंकै रिपु देखत, त्यौ दरिद्र भाजै भय मान॥
ज्यौ कुनार परिहरै खंडपति, त्यौ [illegible]।
हितु ज्यौ विभौ तजै नहि सगत, सो [illegible]

शार्दूलविक्री[illegible]

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते
यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः॥

जो जिनेंद्र पूजै फूलनसों, सुरनैनन पूजा तिस होय।
वंदै भावसहित जो जिनवर, वंदनीक त्रिभुवनमै सोय॥

जो जिन सुजस करै जन ताकी; महिमा इन्द्र करै सुरलोय।
जो जिन ध्यान करत वनारसि; ध्यावै मुनि ताके गुण जोय॥१२॥

गुरु अधिकार।

वंशस्थविलम्।

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम्॥ १३॥

अडिल्ल छन्द।

पापपंथ परिहरहि, धरहिं शुभपंथ पग।
पर उपगार निमित्त; वखानहि मोक्षमग॥
सदा अवछित चित्त, जु तारन तरन जग।
ऐसे गुरुको सेवत, भागहि करम ठग॥ १३॥

मालिनी।

विदलयति कुवोधं वोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् १४

हरिगीतिका छन्द।

मिथ्यात दलन सिद्धात साधक, मुकतिमारग जानिये।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप वखानिये॥
संसारसागरतरनतारन, गुरु जहाज विशेखिये।
जगमाहि गुरुसम कह वनारसि, और कोउ न देखिये॥ १४॥

शिखरिणी ।

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनुनिवहः
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।
निमज्जन्तं जन्तु नरककुहरे रक्षितुमलं
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥१५॥

मत्तगयन्द ।

मात पिता सुत बन्धु सखीजन; मीत हितू सुख कामन पीके ।
सेवक साज मतंगज बाज; महादल राज रथी रथनीके ॥
दुर्गति जाय दुखी विललाय, परै सिर आय अकेलहि जीके ।
पंथ कुपथ गुरू समझावत, और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।
किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं
सर्वे येन विना विनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः॥

वस्तु छन्द ।

ध्यान धारन ध्यान धारन, विषै सुख त्याग ।
करुनारस आदरन, भूँमि सैन इन्द्री निरोधन ॥
व्रत संजम दान तप; भगति भाव सिद्धंत साधन ॥
ये सब काम न आवहीं; ज्यौं विन नायक सैन ॥
शिवसुख हेतु बनारसी; कर प्रतीत गुरुवैन ॥ १६ ॥

जिनमताधिकार।

शिखरिणी।

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेनं न कुगुरुं
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम्।
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नापि निपुणं
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥१७॥

कुडलिया छन्द।

देव अदेव नही लखै, सुगुरु कुगुरनहि सूझ।
धर्म अधर्म गनै नहीं, कर्म अकर्म न बूझ॥
कर्म अकर्म न बूझ, गुण रु औगुण नहि जानहि।
हित अनहित नहिं सधै; निपुणमूरख नहि मानहि॥
कहत बनारसि ज्ञानदृष्टि नहिं अब अबेवहि।
जैनबचनदृगहीन, लखै नहि देव अदेवहि॥ १७॥

शार्दूलविक्रीडित।

मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-
र्निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाविनीम्।
दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां
सार्वज्ञः समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथिः॥

३१ मात्रा सवैया छन्द।

ताको मनुज जनम सब निष्फल, मन निष्फल निष्फल जुगकान।
गुण अर दोष विचार भेद विधि; ताहि महा दुर्लभ है ज्ञान॥

ताको सुगम नरक दुख संकट; अगमपंथ पदवी निर्वान ।
जिनमतवचन दयारसगर्भित; जे न सुनत सिद्धंतवखान १८

पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमःस्तोमव-
न्मित्रं शात्रववत्स्रजं भुजगवच्चिन्तामणिं लोष्ठवत् ।
ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत्स मनुते कारुण्यपण्यापणं
जैनेन्द्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥१९॥

छप्पय ।

अंमृतको विष कहै, नीरको पावक मानहि ।
तेज तिमिरसम गिनहिं, मित्रकों शत्रु वखानहि ॥
पहुपमाल कहि नाग, रतन पत्थर सम तुल्लहिं ।
चंद्रकिरण आतप स्वरूप, इहि भांत जु भुल्लहि ॥
करुणानिधान अमलानगुन, प्रघट वनारसि जैनमत ।
परमत समान जो मनधरत, सो अजान मूरख अपत ॥ १९ ॥

धर्मं जागरयत्यघं विघटयत्युत्थापयत्युत्पथं
भिन्ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मथ्नाति मिथ्यामतिम् ।
वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य-
त्तज्जैनं मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ॥२०॥

मरहटा छन्द ।

शुभ धर्म विकाशै, पापविनाशै, कुपथउथप्पनहार ।
मिथ्यामतखडै, कुनयविहंडै, मडै दया अपार ॥
तृष्णामदमारै, राग विडारै, यह जिनआगमसार ।
जो पूजै ध्यावै, पढैं पढावै; सो जगमाहि उदार ॥२०॥

संघ अधिकार ।

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव
स्वर्गः कल्पमहीरुहामिव सरः पङ्केरुहाणामिव ।
पाथोधिः पयसामिवेन्दुमहसां स्थान गुणानामसा-
वित्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जैसै नभमडल तारागण, रोहनशिखर रतनकी खान ।
ज्यो सुरलोक भूरि कलपद्रुम, ज्योंसरवर अवुज वन जान ॥
ज्यों समुद्र पूरन जलमडित, ज्यो शशिछविसमूह सुखदान ।
तैसै सघ सकल गुणमन्दिर, सेवहु भावभगति मन आन २१

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।
यस्मै स्वर्गपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते
स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यताम्

जे ससार भोग आशातज, ठानत मुकति पन्थकी दौर ।
जाकी सेव करत सुख उपजत, तिन समान उत्तम नहिं और ॥
इन्द्रादिक जाके पद वदत, जो जंगम तीरथ शुचि ठौर ।
जामै नित निवास गुन मडन, सो श्रीसंघ जगत शिरमौर ॥२२॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात्कीर्तिस्तमालिङ्गति
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।
स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति [illegible] स्तमा[illegible]
यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः २

ताको आय मिलै सुखसंपति, कीरति रहै तिहूं जग छाय।
जिनसों प्रीत बढै ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय।
बानारसि गुनरास संघकी, जो नर भगति करै मनलाय॥२३॥

यद्भक्तेः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृषेः सस्यव-
चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिकं गीयते।
शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः
संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम् ॥

जाके भगत मुकतिपद पावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ॥
ज्यों कृषि करत धानफल उपजत, सहज पयार घास भुस होय॥
जाके गुन जस जंपनकारन, सुरगुरु थकित होत मदखोय।
सो श्रीसघ पुनीत बनारसि, दुरित हरन विचरत भविलोय २४

अहिंसा अधिकार।

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजःसंहारवात्या भवो-
दन्वन्नौर्व्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम्।
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला
सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

घनाक्षरी।

सुकृतकी खान इन्द्र पुरीकी नसैनी जान
पापरजखंडनको, पौनरासि पेखिये।
भवदुखपावकबुझायवेको मेघ माला,
कमला मिलायवेको दूती ज्यों विशेखिये ॥

सुगति वधूसों प्रीत, पालवेकों आलीसम,
कुगतिके द्वार दृढ, आगलसी देखिये ॥
ऐसी दया कीजै चित, तिहूँलोकप्राणीहित,
और करतूत काहू, लेखेमें न लेखिये ॥ २५ ॥

शिखरिणी ।

यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥

अभानक छन्द ।

जो पश्चिम रवि उगै; तिरै पाषान जल ।
जो उलटै भुवि लोक, होय शीतल अनल ॥
जो मेरू डिगमिगै; सिद्धि कहँहोय मल ।
तब हू हिंसा करत, न उपजत पुण्यफल ॥ २६ ॥

मालिनी ।

स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता-
दमृतमुरगवक्रात्साधुवादं विवादात् ।
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा-
दभिलपति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

घनाक्षरी छन्द ।

अगनिमै जैसें अरविंद न विलोकियत;
सूर अथवत जैसें वासर न मानिये ।

सापके बदन जैसै अमृत न उपजत,
कालकूट खाये जैसै जीवन न जानिये ॥
कलह करत नहि पाइये सुजस जैसै,
बाढ़तरसांस रोग नाश न बखानिये ।
प्राणी बधमांहि तैसै, धर्मकी निशानी नाहि,
याहीतै **बनारसी** विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

शार्दूल विक्रीडित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ।
आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरं
संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रान्तरम्॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम, गुण संपति आनंद निवास ।
उन्नति विभव सुगम भवसागर, तीन भवन महिमा परकास ॥
भुजबलवंत अनंतरूप छवि, रोगरहित नित भोगविलास ॥
जिनके चित्तदयाल तिन्होंके, सब सुख होंहि **बनारसिदास** ॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं दैवैः कृताराधनं
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम् ।
श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् २९

पट्पद ।

गुणनिवास विश्वास वास; दारिदटुखखंडन ।
देवअराधन योग, मुकतिमारग मुखमंडन ॥
सुयशकेलि आराम, धाम सज्जन मनरंजन ।
नागवाघवशकरन, नीर पावक भयभंजन ॥
महिमा निधान सम्पतिसदन, मंगल मीत पुनीत मग ।
सुखरासि **बनारसि दास** भन, सत्यवचन जयवंत जग २९

शिखरिणी ।

यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनं
निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ।
न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा
कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥३०॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जो भस्मंत करै निज कीरति, ज्यों वनअग्नि दहै वन सोय ।
जाके सँग अनेक दुख उपजत, वढै वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
जामैं धरम कथा नहिं सुनियत, ज्यों रवि वीच छाहिं नहि होय ।
सो मिथ्यात्व वचन **वानारसि;** गहत न ताहि विचक्षण कोय ३०

वंशस्थविलम् ।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासद्म समृद्धिवारणम् ।
विपन्निदानं परवञ्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम्॥

रोडक छन्द ।

कुमति कुरीत निवास, प्रीत परतीत निवारन ।
रिद्धसिद्धसुखहरन, विपत दारिद दुख कारन ॥
परवंचन उतपत्ति, सहज अपराध कुलच्छन ।
सो यह मिथ्यावचन, नाहि आदरत विचच्छन ॥३१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किङ्कराः
कान्तारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगारिर्मृगः ।
पातालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विषं
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्याश्चितं वक्ति यः ३२

घनाक्षरी ।

पावकतै जल होय, वारिधतै थल होय,
शस्त्रतै कमल होय, ग्राम होय वनतै ।
कूपतै बिवर होय, पर्वततें घर होय,
वासवतै दास होय, हितू दुरजनतै ॥
सिंघतै कुरंग होय, व्याल स्यालअंग होय,
बिपतै पियूष होय, माला अहिफनतै ।
विषमतै सम होय, सकट न व्यापै कोय,
एते गुन होंय सत्य, बादीके दरसतै ॥ ३२ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-
स्तमभिसरति कीर्तिर्मुञ्चते तं भवार्तिः ।

स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं
परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

रोडक छन्द ।

ताहि रिद्धि अनुसरै, सिद्धि अभिलाष धरै मन ।
विपत सगपरिहरै, जगत विस्तरै सुजसधन ॥
भवआरति तिहि तजै, कुगति बंछै न एक छन ।
सो सुरसम्पति लहै, गहै नहि जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

शिखरिणी ।

अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः
शुभश्रेणिस्तस्मिन्वसति कलहंसीव कमले ।
विपत्तस्माद्दूरं व्रजति रजनीवाम्बरमणे-
र्विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥३४॥

(३१ मात्रा) सवैया छन्द ।

ताको मिलै देवपद शिवपद [illegible] ज्यों विद्याधन लहै विनीत ।
तामै आय रहै शुभ सम्प[illegible] ज्यो कलहस कमलसों मीत ॥
ताहि विलोक दुरै दु[illegible] [illegible]ारेद, ज्यों रवि आगम रैन विदीत ।
जो अदत्त धन त[illegible] [illegible]नारसि, पुण्यवत सो पुरुष पुनीत ३४

शार्दूलविक्रीडित ।

यन्निर्वर्तित[illegible]र्तधर्मनिधनं सर्वागसां साधनं
प्रोन्म[illegible]द्धवन्धनं विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम् ।
दौर्गत्यैकनिबन्धनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं
प्रोत्सर्पत्प्रधन जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ३५

मरहटा छन्द ।

जो कीरति गोपहि, धरम विलोपहि, करहि महाअपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुरगति लोरहि, जोरहि युद्ध उपाध ॥
जो सकट आनहिं, दुर्गति ठानहि, वधवधनको गेह ।
सब औगुण मडित, गहै न पडित, सो अदत्तधन येह ॥३५॥

हरिणी ।

परजनमनःपीडाक्रीडावनं वधभावना-
भवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमण्डलम् ।
कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं
नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकाङ्क्षिणाम् ॥ ३६ ॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जो परिजन संताप केलिवन, जो बध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिवेलघनमंडल, जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दृढ आगल, जो अपहरण मुक्तिसुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन, निजहितहेत **बनारसिदास** ३६

शीलाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक-
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ३७

(३१ मात्रा) सवैया।

सो अपयशको डंक बजावत; लावत कुल कलंक परधान।
सो चारितको देत जलांजुलि, गुन बनको दावानल दान॥
सो शिवपन्थकिवार बनावत, आपति विपति मिलनको थान।
चिन्तामणि समान जग जो नर, शील रतन निजकरत मलान ३७

मालिनी।

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्कं
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम्॥ ३८॥

रोडक छन्द।

कुल कलंक दलमलहि, पापमलपंक पखारहि।
दारुन संकट हरहि, जगत महिमा विस्तारहि॥
सुरग मुकति पद रचहि, सुकृतसंचहि करुणारसि।
सुरगन बंदहि चरन; शीलगुण कहत बनारसि॥३८॥

शार्दूलविक्रीडित।

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजन्ति क्षयं
कल्याणानि समुल्लसन्ति विबुधाः सांनिध्यमध्यासते।
कीर्तिः स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघं
स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदधते ये शीलमाबिभ्रते॥३९॥

मत्तगयन्द।

ताहि न बाघ भुजंगमको भय, पानि न बोरै न पावक जालै।
ताके समीप रहै सुर किन्नर, सो शुभ रीत करै अघ टालै॥

तासु विवेक बढै घट अंतर, सो सुरके शिवके सुख मालै।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग; जो नर शील अखंडित पालै॥३९॥

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद्ध्रुवम् ४०

षट्पद।

अग्नि नीरसम होय, मालसम होय भुजंगम।
नाहर मृगसम होय, कुटिल गज होय तुरंगम॥
विष पियूषसम होय, शिखरपाषान खंडमित।
विघन उलट आनंद, होय रिपुपलट होयहित॥
लीलातलावसम उदधिजल, गृहसमान अटवी विकट।
इहिविधि अनेक दुख होहि सुख, शीलवंत नरके निकट॥४०॥

परिग्रहाधिकार।

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन्धर्मद्रुमोन्मूलनं
क्लिश्नन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीं लोभाम्बुधिं वर्धयन्।
मर्यादातटमुद्रुजञ्छुभमनोहंसप्रवासं दिश-
न्किं न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः॥४१॥

३१ मात्रा सवैया।

अंतर मलिन होय निज जीवन, विनसै धर्मतरोवरमूल।
किलसै दयानीतिनलिनीवन, धरै लोभ सागर तनथूल॥

उठै वाद मरजाद मिटै सब, सुजन हंस नहि पावहिं कूल।
बढत पूर पूरै दुख संकट, यह परिग्रह सरितासम तूल ॥४१॥

मालिनी।

कलहकलभविन्ध्यः कोपगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु-
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४२ ॥

मनहरण।

कलह गयन्द उपजायवेको विंधगिरि,
कोप गीधके अघायवेको सुस्मशान है।
संकट भुजंगके निवास करवेको विल,
वैरभाव चौरको महानिशा समान है॥
कोमल सुगुनघनखंडवेको महा पौन,
पुण्यवन दाहवेको दावानल दान है।
नीत नय नीरज नसायवेको हिम रासि,
ऐसो परिग्रह राग दुखको निधान है॥ ४२ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभूः
पापानां खनिरापदां पदमसद्ध्यानस्य लीलावनम्।
व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः
केलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम् ४३

प्रशमको अहित अधीरजको वाल हित,
महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है।
भ्रमको निधान दुरध्यानको विलासवन,
विपतको थान अभिमानकी निशानी है॥
दुरितको खेत रोग शोग उतपति हेत;
कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है।
ऐसो परिग्रह भोग सवनको त्याग जोग,
आतम गवेपीलोग याही भाति जानी है॥ ४३॥

वह्निस्तृप्यति नेन्धनैरिह यथा नाम्भोभिरम्भोनिधि-
स्तद्वल्लोभघनो घनैरपि धनैर्जन्तुर्न संतुष्यति।
न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भवं
यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम्॥

षट्पद।

ज्यो नहि अग्नि अघाय, पाय ईंधन अनेक विधि।
ज्यों सरिता घन नीर; नृपति नहि होय नीरनिधि।
त्यो असंख धन वढत, मूढ संतोष न मानहि।
पाप करत नहि डरत, वंध कारन मन आनहि॥
परतछ विलोक जम्मन मरन, अथिर रूप संसारक्रम।
समुझै न आप पर ताप गुन, प्रगट बनारसि मोह भ्रम॥४४॥

क्रोधाधिकार.

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्राससंपादने
सर्पस्य प्रतिविम्बमङ्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः।

चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः सब्रह्मचारी चिरं
स क्रोधः कुशलाभिलापकुशलैर्निर्मूलमुन्मूल्यताम्॥४५॥

गीताछन्द ।

जो सुजन चित्त विकार कारन; मनहु मदिरा पान ।
जो भरम भय चिन्ता वढावत, असित सर्प समान ॥
जो जंतु जीवन हरन विषतरु, तनदहनदवदान ।
सो कोपरास विनास भविजन, लहहु शिव सुखथान ॥ ४५ ॥

हारिणी ।

फलति कलितश्रेयःश्रेणीप्रसूनपरम्परः
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्ति तपश्चरणद्रुमः ।
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्तिं प्रकोपहविर्भुजो
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥ ४६॥

३१ मात्रा सवैया ।

जव मुनि कोइ वोय तप तरुवर, उपशम जल सींचत चितखेत ।
उदित ज्ञान साखा गुण पल्लव, मंगल पहुप मुकत फलहेत ॥
तव तिहि कोप दवानल उपजत, महामोह दल पवन समेत ।
सो भस्मत करत छिन अंतर, दाहत विरखसहित मुनिचेत४६॥

शार्दूलविक्रीडित ।

संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय-
त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कलिम् ।
कीर्तिं कृन्तति दुर्मतिं वितरति व्याहन्ति पुण्योदयं
दत्ते यः कुगतिं स हातुमुचितो रोषः सदोषः सताम् ॥

वस्तुछन्द ।

कलह मंडन मंडन करन उद्वेग ।
यशखंडन हित हरन, दुखविलापसतापसाधन ॥
दुरबैन समुच्चरन, धरम पुण्य मारग विराधन ।
विनय दमन दुरगति गमन, कुमति रमन गुणलोप ।
ये सब लक्षण जान मुनि, तजहि ततक्षण कोप ॥ ४७ ॥

यो धर्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां
दन्तीवेन्दुकलां विधुंतुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम् ।
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं
तृष्णां घर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम् ॥

षट्पद ।

कोप धरम धन दहै, अग्नि जिम विरख विनासहि ।
कोप सुजस आवरहि, राहु जिम चद गरासहि ॥
कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता विहंडहि ।
कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर खडहि ॥
संचरत कोप दुख ऊपजै, बढै त्रषा जिम धूपमहँ ।
करुणा विलोप गुण गोप जुत, कोप निषेध महत कहँ ॥ ४८ ॥

मानाधिकार

मन्दाक्रान्ता ।

यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां
यस्मिञ्शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति ।

यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं
तं मानाद्रिं परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४९ ॥

(मात्रा ३१) सवैया।

जातै निकस विपति सरिता सब, जगमे फैल रही चहुँ ओर।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहि, माया कुमतिगुफा अति घोर॥
जहँवधबुद्धि धूम रेखा सम, उदित कोप दावानल जोर।
सो अभिमान पहार पटतर; तजत ताहि सर्वज्ञकिशोर ॥ ४९॥

शिखरिणी।

शमालानं भञ्जन्विमलमतिनाडीं विघटय-
न्किरन्दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमसृणिम्।
भ्रमन्नुर्व्यां स्वैरं विनयवनवीथीं विदलयन्
जनः कं नानर्थं जनयति मदान्धो द्विप इव ॥५०॥

रोडक छन्द।

भजहि उपशम थभ, सुमति जजीर विहडहि।
कुवचन रज सग्रहहिं, विनयवनपकति खडहि॥
जगमे फिरहि स्वछन्द, वेद अकुश नहि मानहि।
गज ज्यों नर मदअन्ध, सहज सब अनरथ ठानहि॥५०॥

शार्दूलविक्रीडित।

औचित्याचरणं विलुम्पति पयोवाहं नभस्वानिव
प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम्।
कीर्तिं कैरविणीं मतङ्गज इव प्रोन्मूलयत्यञ्जसा
मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ५१

करिखा छन्द।

मान सब उचित आचार भजन करै;
पवन सचार जिम घन विहंडहि।
मान आदर तनय विनय लोपै सकल;
भुजग विष भीर जिम मरन मडहि॥
मानके उदित जगमाहि विनसै सुयश;
कुपित मातग जिम कुमुद खंडहि।
मानकी रीति विपरीति करतूति जिम;
अधमकी प्रीति नर नीत छंडहि॥ ५१॥

वसन्ततिलका।

**मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
संजीवनं विनयजीवितमङ्गभाजाम्।
जात्यादिमानविषजं विषमं विकारं
तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम्॥ ५२॥**

(मात्रा १५) चौपाई।

मान विषम विषतन सचरै। विनय विनाशै वाँछितहरै॥
कोमल गुन अम्रत संजोग। विनशै मान विषम विषरोग॥५२॥

मायाधिकार॰

मालिनी।

**कुशलजननवन्ध्यां सत्यसूर्यास्तसंध्यां
कुगतियुवतिमालां मोहमातङ्गशालाम्।**

शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं
व्यसनशतसहायां दूरतो मुञ्च मायाम् ॥ ५३ ॥

रोडक छन्द ।

कुशल जननकों बॉझ, सत्य रविहरन सांझथिति ।
कुगति युवति उरमाल, मोह कुंजर निवास छिति ॥
शम वारिज हिमराशि, पाप सताप सहायनि ।
अयश खानि जग जान, तजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

उपेन्द्रवज्रा ।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।
ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखाः स्वमेव ५४

वेसरी छन्द ।

मोह मगन माया मति सचहि। कर उपाय ओरनको वंचहि ।
अपनी हानि लखें नहिं सोय। सुगति हरै दुर्गति दुख होय५४

वंशस्थविलम् ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते
यथा विडालो लगुडं पयः पिवन् ॥ ५५ ॥

पद्धरिछन्द ।

माया अविश्वास विलास गेह। जो करहि मूढ जन धन सनेह।
सो कुगति बध नहि लखै एम। तजभय विलाव पय पियतजेम ५५

वसन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते
यत्पाटवं कपटलम्पटचित्तवृत्तेः ।
जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा
नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

अभानक छन्द ।

ज्यों रोगी कर कुपथ, वढावै रोग तन ।
स्वादलंपटी भयो; कहै मुझ जनम धन ॥
त्यों कपटी कर कपट; मुगधको धन हरहि ।
करहि कुगतिको वंध, हरष मनमे धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

यद्दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं
गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ५७

मनहरण ।

सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमै,
कंपै चितभीत पथ, गाहै वीच वनमै ।
ठानै कृषिकर्म जामें, शर्मको न लेश कहुं.
सकलेशरूप होय, जूझ मरै रनमै ॥

तजै निज धामको विराजि परदेश धावै,
सेवै प्रभु कृपणमलीन रहै मनमै ।
डोलै धन कारज अनारज मनुज मूढ,
ऐसी करतूति करै, लोभकी लगनमै ॥ ५७ ॥

मूलं मोहविपद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भवः
क्रोधाग्नेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः ।
क्रीडासद्मकलेर्विवेकशशिनः स्वर्भानुरापन्नदी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ५८

पूरन प्रताप रवि, रोकवेको धाराधर,
सुकृति समुद्र सोखवेको कुम्भनदहै ।
कोप दव पावक जननको अरणि दारु,
मोह विष भूरुहको, महा दृढ कद है ॥
परम विवेक निशिमणि ग्रासवेको राहु;
कीरति लता कलाप, दलन गयद है ।
कलहको केलिभौन आपदा नदीको सिधु;
ऐसो लोभ याहूको विपाक दुख द्वद है ॥ ५८ ॥

वसन्ततिलका ।

निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे
दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्तिधूमे ।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने
लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ५९ ॥

परम धरम वन दहै; दुरित अंवर गति धारहि ।
कुयश धूम उदगरै; भूरि भय भस्म विथारहि ॥
दुख फलंग फुकरै, तरल तृष्णा कल काढहि ।
धन ईंधन आगम. सँजोग दिन दिन अति वाढहि ॥
लहलहै लोभ पावक प्रवल, पवन मोह उद्धत वहै ।
दज्झहि उदारता आदि बहु; गुण पतंग कँवरा कहै॥५९

शार्दूलविक्रीडित ।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहं
चिन्तारत्नमुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम् ।
विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियो
ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं बिभ्रते ॥ ६० ॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

विलसै कामधेनु ताके घर; पूरै कल्पवृक्ष सुखपोष ।
अखय भँडार भरै चिंतामणि; तिनको सुलभ सुरग औ मोष॥
ते नर स्ववश करै त्रिभुवनको, तिनसों विमुख रहै दुख दोष।
सवै निधान सदा ताके ढिग, जिनके हृदय वसत संतोष ॥६०॥

सज्जनाधिकार.

शिखरिणी ।

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा॥६१॥

(१६ मात्रा) चौपाई ।

बरु अहिवदन हत्थ निज डारहिं । अगनि कुंडमै तनपर जारहि
दारहि उदर करहिं विष भक्षन। पै दुष्टता न गहहि विचक्षन ६१

वसन्ततिलका ।

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च
स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च ।
दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थम्
धान्येऽनलं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

ज्यो कृषिकार भयो चितवातुल, सो कृषिकी करनी इम ठानें ।
वीज बवै न करै जल सिंचन, पावकसों फलको थल भानें ॥
त्यों कुमती निज स्वारथके हित, दुर्जनभाव हिये महि आनें ।
संपति कारन वध विदारन, सज्जनता सुखमूल न जानें ॥६२॥

पृथ्वी ।

वरं विभववन्ध्यता सुजनभावभाजां नृणा-
मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिताः संपदः ।
कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं
विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता ॥६३॥

अभानक छन्द ।

वर दरिद्रता होय, करत सज्जन कला ।
दुराचारसों मिलै; राज सो नाहिं भला ॥

ज्यों शरीर कृश सहज; सुशोभा देत है ।
सूज थूलता वढै, मरनको हेत है ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं
संतोषं वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम् ।
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लङ्घय-
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥६४

षट्पद ।

नहि जपै पर दोष; अलप परगुण वहु मानहि ।
हृदय धरै संतोष, दीन लखि करुणा ठानहि ॥
उचित रीत आदरहि, विमल नय नीति न छडहि ।
निज सलहन परिहरहि, राम रचि विषय विहडहि ॥
मंडहि न कोप दुर वचन सुन, सहज मधुर धुनि उच्चरहि ।
कहि कुवरपाल जग जाल वसि, ये चरित्र सज्जन करहि ॥६४

गुणिसंगाधिकार ।

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमा-
न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधः श्रुतम् ।
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ
यः सङ्गं गुणिनां विमुच्य विमतिः कल्याणमाकाङ्क्षति ॥

मत्तगयन्द (सवैया)।

सो करुणाविन धर्म विचारत, नैन विना लखिवेको उमाहै ।
सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै ॥

सो हियशून्य कवित्त करै समता विन सो तपसो तन दाहै ।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ, जो सत संग तजै हित चाहै ६५

हरिणी ।

हरति कुमतिं भिन्ते मोहं करोति विवेकितां
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम् ।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

घनाक्षरी ।

कुमति निकंद होय महा मोह मंद होय,
जगमगै सुयश विवेक जगै हियेसो ।
नीतको दिढाव होय विनैको बढाव होय,
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों ॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय,
वरतै समाधि ज्यो पियूष रस पियेसो ।
तोष परि पूर होय, दोष दृष्टि दूर होय,
एते गुन होहि सत, सगतके कियेसो ॥ ६६ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम् ।
रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियं
चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां सङ्गं तदङ्गीकुरु ॥६७॥

कुंडलिया ।

'कौंरा' ते मारग गहै, जे गुनिजनसेवंत ।
ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहि भव अंत ॥
ते पावहि भव अंत, शात रस ते चित धारहि ।
ते अघ आपद हरहि, धरमकीरति विस्तारहि ॥
होंहि सहज जे पुरुष, गुनी वारिजके भौरा ।
ते सुर सपति लहै, गहै ते मारग 'कौंरा' ॥ ६७ ॥

हारिणी ।

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति ।
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनीतिलतासु यः
किमभिलषतां श्रेयः श्रेयान्स निर्गुणिसंगमः ॥ ६८॥

षट्पद ।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहि ।
जो प्रताप संहरहि, पवन जिम मेघ विडारहि ॥
जो सम दम दलमलहि, दुरद जिम उपवन खडहि ।
जो सुछेम छय करहि, वज्र जिम शिखर विहंडहि ॥
जो कुमति अग्नि ईंधनसरिस, कुनयलता दृढ मूल जग ।
सो दुष्टसंग दुख पुष्ट कर, तजहि विचक्षणता सुमग ॥ ६८॥

इन्द्रियाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूकलाश्वायते
कृत्याकृत्यविवेकजीवितहतौ यः कृष्णसर्पायते ।

यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव ॥ ६९ ॥

हरिगीतिका ।

जे जगत जनको कुपंथ डारहि, वक्र शिक्षित तुरगसे ।
जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे ॥
जे पुण्यवृक्षकुठार तीखन, गुपति व्रत मुद्रा करै ।
ते करनसुभट प्रहार भविजन, तब सुमारग पग धरै ॥ ६९ ॥

शिखरिणी ।

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं
पदं तद्दोषाणां करणनिकुरुम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

घनाक्षरी ।

ये ही है कुगतिके निदानी दुख दोष दानी;
इनहीकी संगतसो संग भार वहिये ।
इनकी मगनतासों विभोको विनाश होय,
इनहीकी प्रीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों विडारै दुराचार धारै,
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री सुभट इनहि जीतै सोई साधु,
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥ ७० ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

धत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।
श्रेयःपुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीत सर्वं ततः ७१

मौनके धरैया गृह त्यागके करैया विधि,
रीतके सधैया पर निन्दासों अपूठे है ।
विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके वासी शुचि;
अंगके अचारी हितकारी बैन छूठे है ॥
आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी ,
कष्टके सहनहार रामाहुसों रूठे है ॥
इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते;
इन्द्रिनके जीते बिना सरवग झूठे है ॥ ७१ ॥

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मीणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।
सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टे यथा-
कामीनं कुपथाध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक् ॥ ७२ ॥

धर्मतरुभंजनको महा मत्त कुंजरसे,
आपदा भंडारके भरनको करोरी है ।

---

१ कुमतेत्यपि पाठ

सत्यशील रोकवेको पौढ़ परदार जैसे,
दुर्गतिके मारग चलायवेकों धोरी है ॥
कुमतिके अधिकारी कुनैपथके विहारी,
भद्रभाव ईंधन जरायवेकों होरी है ।
मृषाके सहाई दुरभावनाके भाई ऐसे;
विषयाभिलाषी जीव अघके अघोरी है ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते
चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥७३॥

मत्तगयन्द ।

नीचकी ओर ढरै सरिता जिम, घूम वढावत नीदकी नाई ।
चंचलता प्रघटै चपला जिम, अध करै जिम धूमकी झाई ॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद, ज्यों मद पोषित मूढके ताई।
ये करतूति करै कमला जग, डोलत ज्यो कुलटा विन सांई ॥

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठा-
द्दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ७४

बंधु विरोध करै निशवासर, दंडनकों नरवै छल जोवै ।
पावक दाहत नीर वहावत, है दृगओट निशाचर ढोवै ॥
भूतल रक्षित जक्ष हरै करकै दुरवृत्ति कुसंतति खोवै ।
ये उतपात उठै धनके ढिग, दामधनी कहु क्यों सुख सोवै७४

नीचस्यापि चिरं चटूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नतिं
शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम् ।
निर्वेदं न विदन्ति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे
कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति वित्तार्थिनः॥

घनाक्षरी ।

नीच धनवंत ताहि निरख असीस देय,
वह न विलोकै यह चरन गहत है ।
वह अकृतज्ञ नर यह अज्ञताको घर;
वह मद लीन यह दीनता कहत है ।
वह चित्त कोप ठानै यह वाको प्रभु मानै;
वाके कुवचन सब यह पै सहत है ।
ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुण दोष;
अरथाभिलाषी जीव अरथ चहत है ॥ ७५ ॥

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः सङ्गादिवाम्भोजिनी-
संसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम् ।

---

१ राजा.

चैतन्यं विषसंनिधेरिव नृणामुज्जासयत्यञ्जसा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ७६

नीचहीकी ओरकों उमग चलै कमला सो;
पिता सिंधु सलिलस्वभाव याहि दियो है।
रहै न सुथिर है सकटक चरन याको,
बसी कंजमाहि कंजकैसो पद कियो है॥
जाको मिलै हितसो अचेत कर डारै ताहि,
विषकी बहन तातै विषकैसो हियो है।
ऐसी ठगहारी जिन धरमके पंथडारी,
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है॥ ७६॥

दानाधिकार.

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं
पुष्णाति प्रशमं तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम्।
पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा-
न्निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रे धनम् ७७

३१ मात्रा सवैया छंद।

चरन अखंड ज्ञान अति उज्जल, विनय विवेक प्रशम अमलान।
अनघ सुभाव सुकृति गुन संचय, उच्च अमरपद बंध विधान॥
आगमगम्य रम्य तपकी रुचि, उद्धत मुकति पंथ सोपान।
ये गुण प्रघट होय तिनके घट, जे नर देहि सुपत्तहि दान७७

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्भाग्यमालम्बते
नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।
दैन्यं नाद्रियते दुनोति न दरः क्लिश्नन्ति नैवापदः
पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥७८॥

पट्पद ।

सो दरिद्र दल मलहि; ताहि दुर्भाग न गंजहि ।
सो न लहै अपमान, सु तो विपदा भयभंजहि ॥
तिहि न कोइ दुख देहि, तासु तन व्याधि न बड्डइ ।
ताहि कुयश परहरहि, सुमुख दीनता न कड्डइ ॥
सो लहहि उच्चपदजगत महँ, अघ अनरथ नासहि सरव ।
कहै कुँवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरव ॥७८॥

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोकते
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालिङ्गति ।
श्रेयःसंहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
र्मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यार्थमर्थं निजम्॥

घनाक्षरी ।

ताहिको सुबुद्धि वरै रमा ताकी चाह करै,
चंदन सरूप हो सुयश ताहि चरचै ।
सहज सुहाग पावै सुरग समीप आवै,
वार वार मुकति रमनि ताहि अरचै ॥
ताहिके शरीरकों अलिंगति अरोगताई,
मंगल करै मिताई प्रीत करै परचै ।

जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरमके हेतको सुखेत धन खरचै ॥ ७९ ॥

मन्दाक्रान्ता।

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंपत्
सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥ ८० ॥

पद्मावती।

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो सुरलोक संपदा पावै ॥
ताकी दृष्टि लखै शिव मारग, सो निरबंध भावना भावै।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कह, विधिसों सततखेत धन बावै ॥८०

तपप्रभावाधिकार।

शार्दूलविक्रीडित।

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं यत्कामदावानल-
ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम्।
यत्प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता-
मूलं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ८१

षट्पद।

जो पूरव कृत कर्म, पिड गिरदलन वज्रधर।
जो मनमथ दव ज्वाल, माल सॅग हरन मेघझर ॥

जो प्रचड इंद्रिय भुजॅग, थंभन सुमंत्र वर ।
जो विभाव संतम सुपुंज, खंडन प्रभात कर ॥
जो लब्धि वेल उपजत घट, तासु मूल दृढता सहित ।
सो सुतप अग बहुविधि दुविधि, करहि विबुधिबछारहित ८१

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति ।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणां
स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम्॥

घनाक्षरी ।

जाके आदरत महा रिद्धिसों मिलाप होय,
मदन अव्याप होय कर्म वन दाहिये ।
विघन विनास होय गीरवाण दास होय,
ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये ॥
देवपद खेल होय मंगलसो मेल होय,
इन्द्रिनिकी जेल होय मोषपंथ गाहिये ।
जाकी ऐसी महिमा प्रघट कहै कौंरपाल,
तिहुलोक तिहुकाल सो तप सराहिये ॥८२॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना
दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम् ।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरं
कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा॥८३॥

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनको दव, पावकसो नहि दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततक्षण, जो न अखडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत, तौलग घोर घटा नहि खीसै ॥
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ, कर्मकुलाचल और न गीसै ॥८३॥

स्रग्धरा ।

संतोपस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धवन्धप्रपञ्चः
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।
श्रद्धाम्भःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपः[1]कल्पवृक्षः ॥

षट्पद ।

सुदृढ मूल संतोष, प्रशम गुन प्रवल पेड ध्रुव ।
पचाचार सु शाख; शील संपति प्रवाल हुव ॥
अभय अग दलपुज, देवपद पहुप सुमंडित ।
सुकृतभाव विस्तार, भार शिव सुफल अखंडित ॥
परतीत धार जल सिंच किय, अति उतग दिन दिन पुषित ।
जयवंत जगत यह सुतपतरु, मुनि विहग सेवहि सुखित ॥ ८४ ॥

भावनाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेत[2]प्रभोः
सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।

१ तपः पादपोऽयमित्यपि पाठ   २ त्यागव्ययेन प्रभो इत्यपि पाठ

विष्वग्वर्षमिवोषरक्षितितले दानार्हदर्चातपः-
स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम्॥

पद्मावती छन्द।

ज्यों नीराग पुरुषके सनमुख, पुरकामिनि कटाक्ष कर ऊठी।
ज्यों धन त्यागरहित प्रभुसेवन; ऊसरमें बरषा जिम छूठी॥
ज्यों शिलमाहि कमलको बोवन, पवन पकर जिम बांधिये मूठी।
ये करतूति होंय जिम निष्फल, त्यों विनभावक्रिया सब झूंठी ८५

सर्वं ज्ञीप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति।
कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सते
मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ८६

घनाक्षरी।

पूरब करम दहै; सरवज्ञ पद लहै;
गहै पुण्यपंथ फिर पापमें न आवना।
करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै,
लागै दानशील तप सफल सुहावना॥
पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट,
शर्म साध धर्मकी धरामें करै धावना।
एते सब काज करै अलखको अंग धरै;
चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना॥ ८६॥

पृथ्वी ।

विवेकवनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीवनीं
भवार्णवमहातरीं मदनदावमेघावलीम् ।
चलाक्षमृगवागुरां गुरुकषायशैलाशनिं
विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥ ८७ ॥

प्रशमके पोषवेको अम्रतकी धारासम,
ज्ञानवन सींचवेको नदी नीरभरी है ।
चंचल करण मृग बांधवेकों वागुरासी,
कामदावानल नासवेको मेघ झरी है ॥
प्रवल कषायगिरि भजवेको वज्र गदा,
भौ समुद्र तारवेको पौढी महा तरी है ।
मोक्षपन्थ गाहवेको वेशरी विलायतकी,
ऐसी शुद्ध भ[illegible]ना अखंड धार ढरी है ॥ ८७ ॥

[illegible]रिणी ।

घनं दत्तं वित्तं जि[illegible]नमभ्यस्तमखिलं
क्रियाकाण्डं [illegible] रचितमवनौ सुप्तमसकृत् ।
तपस्तीव्रं तप्तं चरण[illegible]पे चीर्णं चिरतरं
न चेच्चित्ते भावस्तुषवपनवत्सर्वमफलम् ॥ ८८ ॥

अभानक छन्द ।

गह पुनीत आचार, जिनागम जोवना ।
कर तप संजम दान, भूमि का सोवना ॥

---

१ अश्वतरी अर्थात् खचरी

ए करनी सब निफल, होंय विन भावना।
ज्यों तुष बोए हाथ, कछू नहिं आवना ॥ ८८ ॥

वैरागाधिकार।

हारिणी।

यदशुभरजःपाथो दृप्तेन्द्रियद्विरदाङ्कुशं
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिशृङ्खला।
विरतिरमणीलीलावेश्म स्मरज्वरभेषजं
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाभयः ॥ ८९ ॥

घनाक्षरी।

अशुभता धूर हरवेकों नीर पूर सम,
विमल विरत कुलवधूको सुहाग है।
उदित मदन जुर नाशवेकों जुरांकुश,
अक्षगज थभनको अंकुशको दाग है ॥
चंचल कुमन कपि रोकवेकों लोहफन्द,
कुशल कुसुम उपजायवेको बाग है।
सूधा मोक्षमारग चलायवेको नोंभी रथ,
ऐसो हितकारी भयभंजन विराग है ॥ ८९ ॥

वसन्ततिलका।

चण्डानिलः स्फुरितमब्दचयं दवार्चि-
र्वृक्षव्रजं तिमिरमण्डलमर्कविम्बम्।
वज्रं महीध्रनिवहं नयते यथान्तं
वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम् ॥ ९० ॥

अभानक छन्द ।

ज्यों समीर गंभीर, घनाघन छय करै ।
वज्र विदारै शिखर, दिवाकर तम हरै ॥
ज्यों दव पावक पूर, दहै वनकुजको ।
त्यों भजै वैराग, करमके पुजको ॥ ९० ॥

शिखरिणी ।

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो-
स्तपस्या निःसीमक्लमपदमुपास्या गुणवताम् ।
निषद्यारण्ये स्यात्करणदमविद्या च शिवदा
विरागः क्रूरागःक्षपणनिपुणोऽन्तः स्फुरति चेत् ॥

पद्मावती छन्द ।

कीनी तिन सुदेवकी पूजा, तिन गुरुचरणकमल चित लायो ।
सो वनवास बस्यो निशवासर, तिन गुनवत पुरुष यश गायो ॥
तिन तप लियो क्रियो इन्द्री दम, सो पूरन विद्या पढ आयो ।
सब अपराध गए ताकों तज, जिन वैरागरूप धन पायो॥९१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

भोगान्कृष्णभुजङ्गभोगविषमान्राज्यं रजःसंनिभं
वन्धून्वन्धनिवन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ।
भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यजं-
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान् ॥

घनाक्षरी छन्द ।

जाकों भोग भाव दीसै कारे नागकेसे फन,
राजको समाज दीखै जैसो रजकोष है ।
जाको परवारको वढाव घेरावध सूझै,
विषै सुख सौजको विचारै विषपोष है ॥
लसै यों विभूति ज्यों भसमिको विभूति कहै,
वनता विलासमै विलोकै दृढ दोष है ।
ऐसो जान त्यागै यह महिमा विरागताकी,
ताहीको वैराग सही ताके ढिग मोष है ॥ ९२ ॥

इति २२ अधिकार समाप्तम्

अथ उपदेश गाथा ।

उपेन्द्रवज्रा ।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः [illegible] पात्रदानम् ।
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य [illegible] न्यमूनि ९३

[illegible] ।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो [illegible] कीजे ।
दीन विलोक दया धरिये नित [illegible] दान सुपत्तहि दीजे ॥
गाहक हो गुनको गहियै, रुचिसौं जिन आगमको रस पीजे ।
ये करनी करिये ग्रहमै बस, यो जगमें नरभोफल लीजै ॥९३॥

शिखरिणी ।

त्रिसंध्यं देवार्चा विरचय च य प्रापय यशः
श्रियः पात्रे वापं जनय नयमार्गं नय मनः ।

स्मरक्रोधाद्यारीन्दलय कलय प्राणिषु दयां
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥

हरिगीता छन्द ।

जो करै साध त्रिकाल सुमरण, जास जगयश विस्तरै ।
जो सुनै परमानहि सुरुचिसों, नीत मारग पग धरै ॥
जो निरख दीन दया प्रभुंजै, कामक्रोधादिक हरै ।
जो सुधन सप्त सुखेत खरचै, ताहि शिवसपति वरै ॥ ९४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

कृत्वार्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं
हित्वा सङ्गमधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्वा धनम् ।
गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वान्तरारिव्रजं
स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखम् ॥

वस्तु छन्द ।

देव पुज्जहि देव पूज्जहि, रचहि गुरु सेव ।
परमागमरुचि धरहि, तजहि दुष्टसगत ततक्षण ।
गुणि सु[illegible] आदरहिं, करहि त्याग दुर्भक्ष भक्षण ॥
देहि सु[illegible] [illegible] नित जपै पचनवकार ।
ये कर[illegible] जे आचरहि, ते पा[illegible] भवपार ॥ ९५ ॥

[illegible]रिणी ।

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-
भ्युदयजननी याति स्फीतिं यथा गुणसन्ततिः ।
कलयति यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः
कुशलसुलभे न्याय्ये कार्यं तथा पथि वर्तनम् ॥ ९६ ॥

मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण

व्यरचि मुनि नेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ ९९ ॥

कवित्त छन्द ।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर, मुनिपति अजितदेव अति आरज ।

ताके प वादीम , प्रघटे विजयसेन आचारज ॥

ताके पट्ट भये सो , तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।

जाके पढत सुनत अवधारत, है सुपुरुष जे पुरुष अनारज॥९९॥

इन्द्रवज्रा ।

सोमप्रभाचार्यमभा च यं लोके वस्तु प्रकाशं कुरुते यथाशु ।

तथायमुच्चैरुपदेशलेशैः शुभोत्सवज्ञानगुणांस्तनोति ॥१००॥

भाषाग्रन्थकर्त्ताकी ओरसे नामादि.

दोहा ।

नाम सूक्तिमुक्तावली, द्वाविंशति अधिकार ।

शत श्लोक परमान में, इति ग्रन्थविस्तार ॥ १ ॥

कुँवरपाल बानारसी, मित्र जुगल इकचित्त ।

तिनहि ग्रन्थ भाषा कियो, बहुविधि छन्द कवि ॥ २ ॥

सोलहसै इक्यानवे, रुत ग्रीषम वैशाख ।

सोमवार एकादशी, करनखत्र सित पाख ॥ ३ ॥

इति श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता भाषाछन्दोबद्धा सूक्तिमुक्तावली भाषाछन्दोबद्धा समाप्ता ।

१ इस श्लोकका भाषा ... मिला

श्रीः

अथ ज्ञानबावनी.

घनाक्षरी।

ओंकार शबद विशद याके उभयरूप,
एक आतमीक भाव एक पुद्गलको।
शुद्धता स्वभावलिये उठ्यो राय चिदानद,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जड़बलको॥
त्रिगुण [illegible] तातै व्यय ध्रुव उतपात,
[illegible] बात नही लागे खलको।
[illegible] के हृदय **ओंकारवास**,
[illegible] शशि पक्षके शुकलको॥ १॥
निर्मल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें श्रुतज्ञान परधान कर पायो है।
ताके मूल दोय रूप अक्षर अनक्षरमे,
[illegible] सैनमे बतायो है॥
बावन वरण याके असंख्यात सन्निपात,
तिनिमें नृप **ओंकार** सज्जनसुहायो है।
वानारसी दास अंग द्वादश विचार यामें,
ऐसे **ओंकार** कंठ पाठ तोहि आयो है॥ २॥
महामंत्र **गायत्री** के मुख ब्रह्मरूप मंड्यो,
आतम प्रदेश कोई परम प्रकाश है।

तापर अशोक वृक्ष छत्रध्वज चामर सो,
पवन अगनि जल वसै एक वास है ॥
सारीके अकार तामें रुद्र रूप चितवत,
महातम महाव्रत तामें बहु भास है ।
ऐसो ओंकारको अमूल चूल मूलरस,
बानारसीदासजूके वदन विलास है ॥ ३ ॥
सिद्धरूप शिवरूप भेष अवभेषरूप,
नररूप न्यायरूप विधिरूप बातमा ।
गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गभीररूप,
भोगरूप भोगीरूप सरस सुहातमा ॥
एकरूप आदिरूप अगम अनादिरूप,
असंख्य अनंतरूप जातिरूप जातमा ।
बानारसीदास द्रव्यपूजा व्यवहाररूप,
शुद्धता स्वभावरूप यहै शुद्ध आतमा ॥ ४ ॥
धुंधवाउ ह्वै भयो शुद्धता विसरि गयो,
परगुणरंग रह्यो पर ही को रुखिया ।
निजनिधि निकट विकट भई नैन बिन,
क्षणकमें सुखी तामें क्षणकमें दुखिया ॥
समकित जल विना त्रषित अनादि काल,
विषय कषायवह्नि अरणमें धुखिया ।
बानारसीदास जिन रीति विपरीति जाके,
मेरे जानें ते तो नर मूढ़नमें मुखिया ॥ ५ ॥

अनुभवज्ञानतै निदान आनमान छूट्यो,
सरधानवान बानै छहों द्रव्यकरसें ।
करम उपाधि रोग लोग जोग भोग राते,
भोगी त्रिया योगी करामातहूको तरसें ॥
दुर्गति विषाद न उछाह सुर भौनवास,
समता सुक्षिति आतमीक मेघ वरसें ।
बानारसीदासजूके वदन रसन रस,
ऐसे रसरासिया ते अरसको परसें ॥ ६ ॥

आवरण समल विमल भयो ताके तुलें,
मोह आदि हने काहु काल गुनकसिया ।
लीन भयो लवलागी मगन विभावत्यागी,
ज्योतिके उदोत होत निज गुण पसिया ॥
बानारसीदास निज आतम प्रकाश भये,
आवें ते न जाहि एक ऐसे वासवसिया ।
अरस परस दस आदि हीं अनन्त जन्तु,
सुरससवादराचै सोई साँचो रसिया ॥ ७ ॥

इस ही सुरसके सवादी भये ते तो सुनौ,
तीर्थकरचक्रवर्ति शैली अध्यातमकी ।
बल वासुदेव प्रति वासुदेव विद्याधर,
चारणमुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भ्रमकी ॥

१ स्वभाव. २ आकर्षण करै

अट्ठावीस लवधिके विविध सधैया साधु,
सिद्धिगति भये कीन्ही सुगम अगमकी ।
बानारसीदास ऐसो अमीकुंड [illegible] पायो,
तहांलों पहुच कालक्रमकी [illegible] जमकी ॥ ८ ॥

इतर निगोदमें [illegible]भाव [illegible] बहुरूप,
तामें हू [illegible] एक अंश आवै है ।
वहै अंश तेजपुंज वादर अगनि [illegible]
[illegible] अनेक रस रसना वढावै है ॥
[illegible] जोर बढ्यो घ्राण चक्षु श्रोत्र नरदेह,
देह देही भिन्न दीखे भिन्नता ही [illegible] है ।
बानारसीदास निजज्ञानको प्रकाश भयो,
शुद्धतामें वास किये सिद्धपद पावै है ॥ ९ ॥

उदै भयो भानु कोऊ पथी उठ्यो पंथकाज,
कहै नैनतेज थोरो दीप कर चहिये ।
कोऊ कोटीध्वज नृप छत्रछांह पुरतज,
ताहि हौस भई जाय ग्रामवास रहिये ॥
मंगल प्रचंड तज काहू ऐसी इच्छा भई,
एक खर निज असवारी काज चाहिये ।
बानारसीदास जिनवचन प्रकाश सुन,
और वैन सुन्यो चाहै तासों ऐसी कहिये ॥१०॥

ऊंचे वंशकी बढ़ाई प्रीतपनों प्रीतिताँई,
गुण गरवाई पिहुलाई घनो फेर है।
वचन विलासको निवास वन सघनाई,
चतुर नागर नर सुरनको घेर है॥
कीरति सराहको प्रवाह वहै महानदी,
एतो देश उपमा है सवे जग जेर है।
हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेरो ऐसो,
वानारसीदास वसुधामें गिरि मेर है॥ ११॥

रीति विपरीति रंग राच्यो परगुण रस,
छायो झूठे भ्रम तातें छूटी निधि घरकी।
तेरे घर ऋद्धि है अनत आपरग आये,
नेकु जो गरूरी फेरे हाय होय हरकी॥
कायके उपायसेती एती हौंस पूरे भले,
निजत्रियारूठे जेती हौंस पूजै नरकी।
वानारसीदास कहै मूढको विचार यह,
कोटीध्वज भयो चाहै आस करै परकी॥ १२॥

ऋतु वरसात नदी नाले सर जोरचढे,
बढै नाहिं मरजाद सागरके फैलकी।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
चित्रावेल आइ चढै नाही काहू गैलकी॥

वानारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संच आवै वीर बुद्धि छैलकी ।
कछु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यातमशैलकी ॥ १३ ॥

लवरूपातीत लागी पुण्यपाप भ्रांति भागी,
सहज स्वभाव मोहसेनाबल भेदकी ।
ज्ञानकी लबधि पाई आतमलबधि आई,
तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥
राहुके विमान बढें कला प्रगटत पूर,
होत जगाजोत जैसें पूनमके चंदकी ।
वानारसीदास ऐसे आठ कर्म भ्रमभेद,
सकति संभाल देखी राजा चिदानंदकी ॥ १४ ॥

लिखतपढ़त ठाम ठाम लोक लक्षकोटि,
ऐसो पाठ पढ़े कछू ज्ञान हू न बाढ़िये ।
मिथ्यामती पचि पचि शास्त्रके समूह पढ़े,
बंधीकलवाजे पशुचामढोल मढ़िये ॥
दीपक संजोय दीनो चक्षुहीन ताके कर,
विकट पहार वापै कबहूं न चढ़िये ।
वानारसीदास सो तो ज्ञानके प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़ै कछू लख्यो है सो पढ़िये ॥१५॥

एक मृतपिण्ड जैसें जलके संयोग छते,
भाजन विशेष कोट क्षणकमें खेद है।
तैसें कर्मनीरचिदानन्दकी प्रणति दीखै,
नरनारी नपुंसक त्रिविध सुवेद है॥
बानारसीदास अब वाको धूप याको तप,
छूटंत[1] संयोग ये उपाधिनको छेद है।
पुग्गलके परचै विशेष जीव भेद भये,
पुग्गल प्रसग विना आतम अभेद है॥ १६॥
ये ही ज्ञान सवद सुनत सुर ताहि सुन,
षटरस स्वाद मानै तू तो ताहि मान रे।
पिड विरह्मडकी खबर खोजै ताहि खोज,
परगुण निज गुण जानै ताहि जान रे॥
विषय कषायके विलास मंडै ताहि छंड,
अमल अखंड ऋद्धि आनें ताहि आन रे।
बानारसीदास ज्ञाता होय सोई जानै यह,
मेरे मीत ऐसी रीत चित्त सुधि ठान रे॥ १७॥
उद्यम करत नर स्वारथके काज सब,
स्वारथके उद्यमको ह्वै रह्यो बहर सो।
स्वारथको भजै निरस्वारथको तज रह्यो,
शहरको वन जानै वनको शहर सो॥

१ 'बूडत' ऐसा भी पाठ है

स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
स्वारथ पिछाने विन स्वारथ जहर सो ।
वानारसीदास ऐसे स्वारथके रगराचे,
लोकनके स्वारथको लागत कहर सो ॥ १८ ॥

उलट पलट नट खेलत मिलत लोक,
याके उलटत भव एक तान ह्वै रह्यो ।
अज हूं न ठाम आवै विकथा श्रवण भावै,
महामोह निद्रामें अनादि काल स्वैरह्यो ॥
वानारसीदास जागे जागै तासों वनि आवै,
जिनवर उकति अमृत रस च्वैरह्यो ।
उलटि जो खेलै तो तो ख्याल सो उठाय धरै,
उलटिके खेले विन खोटे ख्याल ह्वै रह्यो ॥ १९ ॥

कौन काज मुगध करत वध दीनपशु,
जागी ना अगमज्योति कैसो जज्ञ करि है ।
कौन काज सरिता समुद्र सरजल डोहै,
आतम अमल डोह्यो अजहूं न डरि है ॥
काहे परिणाम संकलेश रूप करै जीव !
पुण्यपाप भेद किये कहुं न उधरि है ।
वानारसीदास जिन उकति अमृत रस,
सोई ज्ञान सुने तू अनंत भव तरि है ॥ २० ॥

खेलत अनन्तकाल भये पै न खेद पावै,
तीन सौ तेताल राजू मापकी तलकमें ।
केई स्वांग धर खेले वरष असख्य कोटि
केई स्वाग फेर लावै पलक पलकमें ॥
खेले जेते जन्तु तातें खेलने अनन्त गुणे,
बानारसीदास जानै ज्योतिकी झलकेपें ।
खेले तै बहुत ख्याल देखे तै अलप जन्तु,
देखे ते भी खेल बैठे **ख्याल है खलकमें** ॥२१॥

गुरुमुख **तुबक** सुबक भरे श्रुत सोर,
कालकी लबधि **कलचंपी** दरम्यानकी ।
जामकी अगमबुद्धि जोग उपजोग शुद्धि,
रंजकअरथ ज्वाला लागी शुभ ध्यानकी ॥
इत **ज्ञातादल** उत **मोहसेना** आई बन,
बानारसीदास जू **कुमक** लीजो न्यानकी ।
जीवै न अवश्य जाके बन्दूककी **गोली** लागै,
जागै न मिथ्यात जोपै **गोलो** लागै **ज्ञानकी** ॥२२॥

घटमें विराट घाट उलट ऊरधवाट,
परप्राण साधे ते अनन्त काल तथको ।
सुषुमना आदि इला **पिंगला**की सोंज भई,
षट्चक्रवेधी गण जीत्यो मनमथको ॥

सुलट्यो है कमल **बनारसी** विशेष ताको,
सुनिवेकी इच्छा भई जिनमत ग्रन्थको ।
ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साधै,
जोगनिधि साधे तो सिधावे सिद्धपंथको ॥ २३ ॥

नीच मतिहीन कहै सो तो न व्है केवलीपै,
व्है कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको ।
धियागारी धरें धिया सारसुत ऐसी धरी,
मेधाके मिलापसों मथन निज चितको ॥

मूरख कहै ते साधें परम अवधिवार,
तहां न विचार कछु हित अनहितको ।
वानारसीदास तोसो निज ज्ञान गेह आये,
लोगनकी गारी सो सिगार समकितको ॥ २४ ॥

चंचलता बाला वैस भौरी दै दै भूमि फिरै,
घर तरु भूमि देखै घूमत भरमतें ।
यों ही पर योगपरणतिसेती परबंध,
औदयिक भाव मूढ़ पावे ना मरमतें ॥

निजकृत मानै तातें घटनि विशेप मानै,
बढ़ै परजाय याही कठिन करमतें ।
वानारसीदास ऐसे विकल विभाव छूटें,
बुद्धि विसराम पावै स्वभाव धरमतें ॥ २५ ॥

छत्रधार वैठो घने लोगनकी भीरभार,
दीखत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है।
सेना चारि साजिके विरानें देश दोही फेरी,
फेरसार करें मानो **चौपर** पसारी है॥

कहत **वनारसी** वजाय धौंसा वारवार,
रागरस राच्यो दिन चारहीकी वारी है।
खुल्यो ना खजानो न खजानचीको खोजपायो,
राज खसि जायगो खजाने विन ख्वारी है॥ २६॥

जागो राय चेतन सहज दल जुरि आये,
मुरे कर्मरिपुभग्व मनमें उमाहवी।
सरहद भई याकी लोकालोक परिमाण,
इन्द्रचन्द्र चिक्रवत चोपकर चाहवी॥

वानारसीदासज्ञाता ज्ञान सेना वनि आई,
आदि छतें अन्त विन ऐसी ही निवाहवी।
खजानची शुभध्यान ज्ञानको खजानो पूरो,
सूरो आप साहिव सुथिर ऐसी साहिवी॥ २७॥

झाग उठें वामें यामें **क्रोधफेन** फैलि रहे,
त्रिवलतरंगरंग दूहूनमें आवना।
वामे **तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह** यामे,
वामे **मलपंक** याहि **वंधद्रोह** भावना॥

बानारसीदास वामें **आकृति अनेक** उठें,
यहां **कुलकोड** योनि जाति दोष लावना ।
बह्यो जात **जल** तामें येते **कविभाव** उठें,
आतमा बहिर तामें कहाते स्वभावना ॥ २८ ॥

निजकाज सबहीको अध्यातम शैली मांझ,
मूढ क्यों न खोज देखै खोज औरवानमें ।
सदा यह लोकरीति सुनी है **बनारसीजू**,
वचनप्रशाद नेकु ज्ञानीनके कानमें ॥

चेरी जैसें मलिमलि धोवत बिराने पांव,
परमनरजिवेको सांझ ओ विहानमें ।
निजपाव क्यो न धोवै[2] कै सखी ऐसो कहै,
मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें ॥ २९ ॥

टेककरि मूरखबिरानें घर टिक रह्यो,
जानै मेरे यही घर मै भी याही घरको ।
घर परमारथ न जानै तातै भ्रमघेरो,
ठौर विना और ठौर अधर पधरको ॥

पचको भखायो कहै परपच वचद्रोह,
संग्रह समूह कियो सो तो पिड परको ।
बानारसीदास ज्ञातावृन्दमे विचार देख्यो,
परावर्त्तपूरणी जनम ऐसे नरको ॥ ३० ॥

सुभरि विभावसिंधु समता स्वभावश्रोत,
बानारसी लाभै ताको भ्रमणको भै नहीं।
संगी मच्छ सारिखो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
राख्यो सोई जानै भैया कहवेको है नही ॥ ३३ ॥

नैननतै अगम अगम याही वैननतें,
उलट पलट वहै कालकूट कहरी।
मूल विन पाये मूढ कैसें जोग साधि आवै,
सहज समाधिकी अगम गति गहरी ॥
अध्यातम सुन्यो तो पै सरधान ह्वै न आवै,
तौ तौ भैया तै तो वडी राजनीति चहरी।
बानारसीदास ज्ञाता जापै सधै सोई जानै,
उदधि उधानतें अधिक मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व निजकाज कह्यो सत्त्व परगुण गह्यो,
मनकी लहर मानों डसें नाग कारेसे।
छिनकमे तपी छिन जपी ह्वैके जापजपै,
छिनकमें भोगी छिन जोग परजारेसे ॥
बानारसीदास एतो पूर्वकृत बंध ताके,
औदयिक भाव तेई आपो कर धारेसे।
जब लग मत्त तौलों तत्त्वकी पहुच नाहीं,
तत्त्व पायें मूढमती लागें मतवारेसे ॥ ३५ ॥

थिर थंभ उपल विपुल ज्योति सरतीर,
सत्ता आये आपनी न कोऊ काके दलको।
भासै प्रतिविम्ब अम्बु वायुसों अनेक फैन,
धूजतो सो दीखै पै न धूजै थंभ थलको॥
जाकी दृष्टि पुग्गललों चेतन न भिन्न चितै,
आचरण देखे सरधान न विमलको।
वानारसीदास ज्ञान आतम सुथिर गुण,
डोलै परजाय सो विकार कर्मजलको॥ ३६॥

द्रव्यथकी दोउनकी सरहद्द देहमात्र,
भावथकी लोकपरिमाण वाकी इधिना।
भाव सरहद्द याकी अलोकतें अधिकाई,
ये तो शुभ काजकारी वातें कछू सिधि ना॥
याके तो अभेद ऋद्धि अमल अखंड पूर,
वाके सेना परदल कछू निज रिधि ना।
वानारसीदास दोऊ मीढि देखी दुनियामें,
एक दिसि तेरी विधि एक दिसि विधिना॥३७॥

धर्मदेव नरको वचन जैसो गिरिराज,
मिथ्याती वचन शुद्धारथको पटंतरो।
पारस पाषाण जैसें जाति एक जेतो भेद,
मूरख दरश जैसें दरश मंहतरो[1]॥

---

१ महन्तको.

वानारसीदास कंकसार अन्यसार जैसें,
जनमको द्यौस जैसो द्यौस मरणतरो ।
अध्यातम शैली अन्य शैलीको विचार तैसो,
ज्ञाताकी सुदृष्टिमाहि लागै एतो अंतरो ॥ ३८ ॥

नरभव पाय पाय वहु भूमि धाय धाय,
पर गुण गाय गाय वहु देह धारी है ।
नरभव पीछें देह नरक अनेक भव,
फिर नर देव नर असंख्यात वारी है ॥
एक देवभव पीछे तिर्यंच अनत भव,
वानारसी संसारनिवास दुःखकारी है ।
क्षायक सुमतिपाय मोह सेना विछुराय,
अब चिदानंदराय शकति सँभारी है ॥ ३९ ॥

पामर वरण शूद्र वास तव देह बुद्धि,
अशुभको काज ताहि तातै वड़ी लाज है ।
वैश्यको विचार वाके कछू करतूति फेर,
वैश्य वास वसै तौलों नाहि जोगराज है ॥
क्षत्री शुद्ध परचंड जैतवार काज जाके,
वानारसीदास ब्रह्म अगम अगाज है ।
जैसे वास वसै लोय तामें तैसी बुद्धि होय,
जैसी बुद्धि तैसी क्रिया क्रिया तैसो काज है ४०

फटिक पाषाण ताहि मोतीकर मानै कोऊ,
घुंघची रकत कहा रतन समान है।
हंस बक सेत इहां सतेको न हेत कभू,
रोरी पीरी भई कहा कंचनके बान है॥
भेष भगवानके समान कोऊ आन भयो,
मुद्राको मडान कहा मोक्षको सुथान है।
बानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देखो,
काय जोग कैसो होउ गुण परधान है॥ ४१॥

वेदपाठवाले ब्रह्म कहें पै विचार विना,
शिव कोई भिन्न जान **शैव** गुणगावहीं।
जैनी पर जतन जतन निजभिन्न जान,
बानारसी कहै **चारवाक** धुंधधावहीं॥
बौद्ध कहै बुद्ध रूप काहू एक देशवसै,
न्यायके करनहार ऊरध बतावही।
छहों दरशनमाहि छतो आहि छिपि रह्यो,
छूट्यो न मिथ्यात तातै प्रगट न पावही॥ ४२॥

भेषधर कोटिक नट्यो है लखचौरासीमे,
विना गुरुज्ञान वरतै न विवसावमें।
गुरु भगवान तूही भगवानभ्रान्ति छूटै,
भ्रान्तिसे सुगुरुभाषै जैसें खीर तावमें॥

बानारसीदास ज्ञाता भगवानभेद पायो,
भयो है उछाह तेरे वचन कहावमें ।
भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,
भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ४३ ॥

मोक्ष चलिवेको पंथ भूले पंथ पथिक ज्यों,
पंथबलहीन ताहि **सुखरथ** सारसी ।
सहजसमाधि जोग साधिवेको **रंगभूमि,**
परम अगम पद पढिवेको **पारसी** ॥
भवसिन्धु तारिवेको शबद धरै है **पोत,**
ज्ञानघाट पाये **श्रुतलंगर** लैझारसी ।
समकित नैनजिको याके वैन **अंजनसे,**
आतमा निहारिवेको आरसी बनारसी ॥ ४४ ॥

जिनवाणी **दुग्धमाहि विजया** सुमतिडार,
निजस्वाद **कंदवृन्द** चहलपहलमें ।
विवेक विचार उपचार ए **कसूंभो** कीन्हों,
मिथ्यासोफी[1] मिटि गये ज्ञानकी गहलमें ॥
शीरनी शुकलध्यान अनहद **नाद** तान,
गान गुणमान करै सुजस सहलमें ।
बानारसीदास मध्यनायक सभासमूह,
अध्यातमशैली चली मोक्षके महलमें ॥ ४५ ॥

---

१ मिथ्यात्वरूपी नशे

रसातल तलै पंच गोलक अनन्त जंतु,
तामें दोऊ राशि अन्तरहित खरूप है ।
कटुक मधुर जौलों अगनित भिन्नताई;
चिक्कणताभाव एक जैसें तेलरूप है ॥
जैसें कोऊ जात अंध चौइन्द्री न कहियत,
द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप है ।
वानारसीदास प्रभु वीर जिन ऐसो कह्यो,
आतम अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप है ॥ ४६ ॥

लक्षकोट जोरिजोरि कंचन अंबार कियो,
करता मै याको ये तो करै मेरी शोभ को ।
धामधन भरो मेरे और तो न काम कछू,
सुख विसराम सो न पावें कहू थोभको ॥
ऐसो वलवंत देख मोह नृप खुशी भयो,
सैनापति थाप्यो जैसे अहंभार मोभको ।
वानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देख्यो,
लोगनको लोभ लाग्यो लागे लोग लोभको४७

वावनवरण ये ही पढत वरण चारि,
काहू पढ़े ज्ञान चढै काहू दुख द्वंदजू ।
वरण भंडार पंच वरण रतनसार,
भौर ही भंडार भाववरण सुछंदजू ॥

वरणतें भिन्नता सुवरणमें प्रतिभासै,
सुगुण सुनत ताहि होतहै अनंद जू।
वानारसीदास जिनवाणी वरणन कियो,
तेरी वाणी वरणाव करै वड़े वृन्द जू॥ ४८॥

शकवंधी सांचो शिरीमाल जिनदास सुन्यो;
ताके वंश मूलदास विरद वढ़ायो है।
ताके वंश क्षितिमें प्रगट भयो खड्गसेन,
वानारसीदास ताके अवतार आयो है॥

वीहोलिया गोत गर वतन उद्योत भयो,
आगरेनगर ताहि भेंटे सुखपायो है।
'वानारसी' 'वानारसी' खलक वखान करै,
ताको वंश नाम ठाम गाम गुण गायो है॥४९॥

खुशी ह्वैके मन्दिर कपूरचन्द साहु बैठे,
बैठे कौरपाल सभा जुरी मनभावनी।
वानारसीदासजूके वचनकी वात चली,
याकी कथा ऐसी ज्ञाताज्ञानमनलावनी॥

गुणवंत पुरुषके गुण कीरतन कीजे,
पीतांवर प्रीति करी सज्जन सुहावनी।
यही अधिकार आयो ऊंघते विछौना पायो,
हुकम प्रसादतें भयी है ज्ञानबावनी॥ ५०॥

सोलह सो छियासीये संवत कुवारमास,
पक्ष उजियारे चन्द्र चढ़वेको चाव है ।
विजैदशी दिन आयो शुद्ध परकाश पायो,
उत्तरा आषाढ उडुगन यहै दाव है ॥
वानारसीदास गुणयोग है शुकलवाना,
पौरिषप्रधान गिरि करण कहाव है ।
एक तो अरथ शुभ महूरत वरणाव,
दूसरे अरथ यामें दूजो वरणाव है ॥ ५१ ॥
हेतवंत जेते ताको सहज उदारचित्त,
आगें कहो एतो वरदान मोहि दीजियो ।
उत्तम पुरुष **शिरीवानारसीदास** यश,
पन्नगस्वभाव एक ध्यानसो शुनीजियो ॥
पवनस्वभाव विसतार कीज्यो देशदेश,
भ्रमर स्वभाव निज स्वाद रस पीजियो ।
बावन कवित्त ये तो मेरी मतिमान भये,
हंसके स्वभाव ज्ञाता गुण गहलीजियो ॥ ५२ ॥

इति श्रीवानारसी नामाङ्कित ज्ञानवावनी ।

अथ वेदनिर्णयपंचासिका.

चूडामणि छन्द[1] ।

जगतविलोचन जगतहित, जगतारण जग जाना ।
वन्दहुं जगचूडामणी, जगनायक परधाना ॥
नमहुं ऋषभस्वामीप्रमुख, जिनचौवीस महन्ता ।
गुरुचरण चितराख मुख, कहूं वेदविरतन्ता ॥ १ ॥

मनहरण । (खडीबोली)

केवलीकथितवेद अन्तर गुपत भये,
जिनके शवदमें अमृतरस चुवाहे ।
अब ऋगुवेद यजुर्वेद शाम अथर्वण,
इनहीका परभाव जगतमे हुवा है ॥
कहत वनारसी तथापि मै कहूगा कछु,
सही समझेगे जिनका मिथ्यात मुवा है ।
मतवारो मूरख न मानै उपदेश जैसे,
उलुवा न जाने किसिओर भानु उवा है ॥ २ ॥

दोहा ।

कहहु वेदपंचासिका, जिनवानी परमान ।
नर अजान जाने नही, जो जाने सो जान ॥ ३ ॥

---

१ अन्य कवियोने इसे मुक्तामणि लिखा है, १३ और १२ के विश्राम से इसमें २५ मात्रा होती है दोहाके अन्त लघुवर्णको गुरु करदेनेसे यह छन्द वन जाता है.

ब्रह्मानाम युगादिजिन, रूप चतुर्मुख धार ।
समवसरण मंडानमें, वेद वखानें चार ॥ ४ ॥

घनाक्षरी।

प्रथम पुनीत प्रथमानुयोगवेद जामें,
त्रेसठशलाका महापुरुषोंकी कथा है ।
दूजो वेद करणानुयोग जाके गरभमें,
वरनी अनादि लोकालोक थिति जथा है ॥
चरणानुयोग वेद तीसरो प्रगट जामें,
मोखपंथकारण आचार सिंधु मथा है ।
चौथोवेद दरब्यानुयोग जामें दरवके,
षटभेद करम उछेद सरवथा है ॥ ५ ॥

प्रथमवेद यथाः—

षट्पद ।

तीर्थंकर चौवीस, काम चौवीस मनुजवर ।
जिनमाता जिनपिता, सकल ब्यालीसआठ गन ॥
चक्रवर्ति द्वादश प्रमान, एकादश शंकर ।
नव प्रतिहर नव वासुदेव, नव राम शुभंकर ॥
कुलकर महन्त चवदह पुरुष, नव नारद इत्यादि नर ।
इनको चरित्र अरु गुणकथन, प्रथमवेद यह भेद धर ॥६॥

द्वितीयवेद यथाः—

अगम अनंत अलोक, अकृत अनिमित अखंड सभ ।
असंख्यातपरदेश, पुरुषआकार लोक नभ ॥

ऊरध स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यभुव ।
दीप असंख्य उदधि, असंख मंडलाकार ध्रुव ॥
तिस मध्य अढ़ाई दीपलग, पंचमेरु सागर जुगम ।
यह मनुजक्षेत्र परिमाण छिति, सुरविद्याधरको सुगम ॥ ७ ॥

मनहरण ।

सोलह सुरग नवग्रीव नव नवोत्तर,
पंच पंचानुत्तर ऊपर सिद्धशिला है ।
ता ऊपर सिद्धक्षेत्र तहां है अनन्तसिद्ध,
एकमें अनेक कोऊ काहूसों न मिला है ॥
अधोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
नीचे सात नरकनिवास बहु बिला है ।
इत्यादि जगतथिति कही दूजेवेद माहि,
सोई जीव मानें जिन मिथ्यात उगिला है ॥ ८ ॥

तृतीयवेद यथाः—

मिथ्याकरतूति नाखी सासादन रीति भाखी,
मिश्रगुणथानककी राखी मिश्र करनी ।
सम्यकवचन सार कह्यो नानापरकार,
श्रावकआचार गुन एकादश धरनी ॥
परमादीमुनिकी क्रिया कही अनेकरूप,
भारी मुनिराजकी क्रिया प्रमादहरनी ।
चारितकरण त्रिधा श्रेणिधारा दुविधा है,
एक दोषमुखी एक मोखमुखी वरनी ॥ १० ॥

चौपाई ।

उपशम क्षिपक यथावत चारित ।
परकृत अनुमोदनकृतकारित ॥
द्विविधि त्रिविधि पनविधि आचारा ।
तेरह विधि सत्रह परकारा ॥ ११ ॥

दोहा ।

वरनन संख्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनंत ।
सदाचार गुणकथन यह, तृतियवेद विरतंत ॥ १२ ॥

चतुर्थवेद यथाः—रूपक घनाक्षरी[1]

जीव पुदगल धर्म, अधर्म्म आकाश काल,
येही छहों दरब, जगतके धरनहार ।
एक एक दरबमें, अनंत अनंत गुन,
अनत अनंत परजाय करनहार ॥
एक एक दरबमें, शकति अनत वसै,
कोऊ न जनम धरै कोऊ न मरनहार ।
निहचै निवेद कर्मभेद चौथेवेद माहि,
वखानें सुगुरु मानै मोहको हरनहार ॥ १३ ॥

चौपाई ।

येही चारवेद जगमाहिं । सर्व ग्रन्थ इनकी परछाहिं ॥
ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद । त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १४

---

१ इस छन्दमे वत्तीसवर्ण लघु गुरुके नियमरहित होते हैं, आठ आठ आठ, आठ मिलाकर एक चरणमे ३२ वर्ण होते है अन्तमे नियमसे लघु होता है.

दोहा।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद।
ते किन कीन्हें कब भये, सो सब वरनों भेद॥ १५॥
युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति वखान।
ऋषभदेव ब्रह्मा कथा, सुनहु भविक धर कान॥ १६॥

युगलधर्मयथा,—चौपाई।

प्रथमहिं **जुगलधर्म** है जैसा। गुरुपरसाद कहहुँ कछु तैसा॥
जन्महिं जुगलनारिनर दोऊ। भाई वहिन न मानै कोऊ॥१७॥

दोहा।

सुरभि सीरे सोमसे, वहुरागी वहुमित्र।
होहिं एकसे जुगल सब, कौतूहली विचित्र॥ १८॥

मनहरण।

सबहीके चित्त अतिसरलस्वभावी नित्त,
सबहीके थिरचित्त कोऊ न सुगुलिया[1]।
हिये पुण्यरसपोप सहजसतोष लिये,
गुननके कोष [illegible]खदोषके उगलिया[2]॥
कोऊ नहि लरै कोऊ काहूको न धन हरै,
कोऊ कबहूं न करै काहूकी चुगलिया।
समतासहित संकलेशतारहित सब,
सुखिया सदीव ऐसे जीव हैं **जुगलिया**॥ १९॥

---

१ उतावल. २ उगलनेवाले वचन करनेवाला

भूषन नवीन वस्त्र मलहीन सबहीके,
घर घर निकट कलपतरुवाटिका।
नाही रागद्वेषभाव नाही बंधको बढ़ाव,
नाही रोग ताप न विलोकै कोऊ नाटिका॥
विविधपरिग्रह सबके घर देखिये पै,
काहूके न पोरि[1] परद्वार न कपोटिका[2]।
अलपअहारी सब मृदुतनधारी सब,
सुंदरअकारी सब ऐसी परिपाटिका॥ २०॥

दोहा।

घर घर नाटक होहिं नित, घर घर गीत सँगीत।
कबहूं कोउ न देखिये, वदनपीत[3] भयभीत॥ २१॥

मनहरण।

जिनके अलप संकलप विकलप दोऊ,
थोरो मुखजलँप[4] अलपअहमेवता[5]।
जिनके न कोऊ अरि दीरघ शरीर धरि,
त्रिपतिकी दशा धरै चिंति न वेदता[6]॥
जिनके विषै बढ़ाव पल्य[7]मतीनआँव,
सबै नर रावे कोऊ काहूको न सेवता।

१ मकानका आगेका भाग. २ किवाड ३ पीला. शोकाच्छन्न मुख. ४ वोलना (मितभाषि) ५ अहपना ६ अनुभव करना ७ तीन पल्यकी आयु.

समवसरनमहि चौमुखि दीसै। **चतुरानन** कह जगत अशीसै॥
अक्षरबिना वेदधुनि भासै । रचना रच **गणधर** परगासै ४२
चारवेद कहिये तब सेती । **द्वादशांगकी** रचना एती ॥
जब धुनि सुनि अनतता गहिये। तब प्रभु **अनंतातमा** कहिये ४३
आदिनाथआदीश्वर जोई । आदि अन्तबिन कहिये सोई ॥
करै जगत इनहीकी पूजा । ये ही **ब्रह्म** और नहिं द ४४
जबलो जीव मृषामग दौरै । तबलों जानै **ब्रह्मा** औरै ॥
जब **समकित** नैननसो सूझै । **ब्रह्मा ऋषभदेव** तब ॥

दोहा ।

आदीश्वर ब्रह्मा भये, किये वेद जिन चार ।
नामभेद मतभेदसों, बढी जगतमें रार ॥ ४६ ॥

ब्रह्मलोक कथनः—चौपाई ।

और उक्ति मेरे मन आवै । साचीबात सबनको भावै ॥
ब्रह्मा ब्रह्मलोकको बासी । सो ह ान्त कहों परकासी॥४७॥

कुंडलिया

ऊपर सब सुरलोकके, **ब्रह्मलोक** अभिराम ।
सो **सरवारथसिद्धि** तसु, **पंचानुत्तर** नाम ॥
पंचानुत्तर नाम, धाम ए री ।
तहां पूर्वभव बसे, ऋषभ न ारी ॥
ब्रह्मलोकसों चये, भये ब्र ।
तातें लोक कहान, **देव ब्रह्म** ४८ ॥

चौपाई ।

आदीश्वर युगादि शिवगामी । तीनलोकजनअंतरजामी ॥
ऋषभदेव ब्रह्मा जगसाखी । जिन सब जैनधर्मविधि भाखी ४९
ऋषभदेवके अगनितनाऊं । कहों कहां लौ पार न पाऊं ॥
वे अगाध मेरी मति हीनी । तातैं कथा समापत कीनी ॥ ५० ॥

षट्पद ।

वेधि ब्रह्मा भये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि ।
चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि ॥
नाम अनत, ज्ञानगर्भित गुनगूझे ।
तत वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे ॥
यह **शब्दब्रह्मसागर** [illegible], परमब्रह्म गुणजलसहित ।
किमि लहै **बनारसि** [illegible], नर विवेक भुजवलरहित ॥५१॥

इति [illegible] निर्णयपचासिका

कृष्ण ।
गणिजै ।
व प्रतिहरि भणिजे ॥

भाई (हलधर) ४ मघवा

वलभद्रनाम—दोहा ।

विजय अचल बल धर्मधर, सुप्रभ सुदर्शन नाम ।
सुनंदि नंदिमित्रेश रघु, नाथपदम नवराम ॥ १५ ॥

इति श्रीत्रेशठिशलाकापुरुषोंकी नामावली

अथ मार्गणाविधान लिख्यते.

दोहा ।

वन्दहुं देव जुगादिजिन, सुमरि सुगुरु मुखभाख ।
चवदह मारगणा कहहुं, बरणहुं वासठ साख ॥ १ ॥

चौपाई ।

संजम भव्य अहार कषाय । दरशन ज्ञान जोग गति काय ॥
लेश्या समकित सैनी वेद । इन्द्रिय सहितचतुदर्शभेद ॥ २ ॥
ए चौदह मारगणा सार । इनके वासठ भेद उदार ॥
वासठ संसारी जिय भाव । इनहि उलघि होय शिवराव ॥ ३॥
संजम सात भव्य द्वै भाय । द्विविधि अहारी चार कषाय ॥
दर्शन चार आठविधि ज्ञान । जोग तीन गति चारविधान ४
षट काय लेश्या षट होय । षट समकित सैनीविधि दोय ॥
वेद तीनविधि इन्द्रिय पच । सकल ठीक गति वासठ संच ५
इनके नाम भेद विस्तार । वरणहुं जिनवानी अनुसार ।
वासठरूप स्वांग धर जीव । करै नृत्य जगमाहि सदीव ॥ ६॥

प्रथम असजम रूप विशेष। देशसंजमी दूजो भेष॥
तीजो सामायिक सुखधाम। चौथा छेदउथापन नाम॥ ७॥
पंचम पद परिहारि विशुद्धि। सूक्षम सांपराय षट बुद्धि॥
जथाख्यात चारित सातमा। सातों स्वांग धरै आतमा॥ ८॥
भव्य अभव्य स्वांग धर दुधा। करै जीव जग नाटक मुधा॥
अनहारक आहारी होय। नाचैं जीव स्वांग धर दोय॥ ९॥
कबहू क्रोध अगनि लहलहै। कबहूं अष्ट महामद गहै॥
कबहूं मायामयी सरूप। कबहू मगन लोभ रसकूप॥ १०॥
चार कषाय चतुर्विध भेष। धर जिय नाटक करै विशेष॥
कहूं चक्षुदर्शनसों लखै। कहु अचक्षुदर्शनसों चखै॥ ११॥
कहू अवधि दर्शन सु प्रयुंज। कहूं सुकेवलदरशन पुंज॥
धर दर्शन मारगणा चारि। नाटक नटै जीव संसारि॥ १२॥
कुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन। कुश्रुति कुआगममें परवीन॥
धरै विभगा अवधि अजान। सुमति ज्ञान समकित परवान १३
सुश्रुतिज्ञान परमागम सुणै। अवधि ज्ञान परमारथ मुणै॥
मनपर्जय जानहिं मनभेद। केवलज्ञान प्रगट सब वेद॥१४॥
एही आठ ज्ञानके अंग। नचै जीव इनरूप रसंग॥
मनोजोगमय होय कदाचि। बोलै वचन जोगसों राचि॥१५॥
कायजोगमय मगन स्वकीय। नाचै त्रिविधि जोग धर जीय॥
सुरगति पाय करै सुखभोग। समसुखदुख नरगति संजोग॥१६॥
वहुदुख अलपसुखी तिरजंच। नरक महादुख है सुख रंच॥
चहुंगति जम्मन मरण कलेस। नटै जीव नानारसभेस॥१७॥

पृथिवी काय देह जिय धरै । अपकायिकमय ह्वै अवतरै ॥
अगनिकायमहि तपत स्वभाय । वायुकायमहि कहिये वाय॥१८॥
वनसपती रूपी दुखमूल । लहि त्रसकाय धरै तन थूल ॥
षटकाया षटविधि अवतार । धरि धरि मरै अनन्ती बार १९
धरै कृष्णलेश्या परिणाम । नीललेश्यमय आतमराम ॥
फिर धारै लेश्या कापोत । सहज पीतलेश्यामय होत ॥ २० ॥
चेतन पदमलेश्य परिवान । करै शुकललेश्या रसपान ॥
इहिविधि षट लेश्या पद पाय । जगवासी शुभ अशुभ कमाय २१
धर मिथ्यात्व झूठ सरदहै । वमि समकित सासादन गहै ॥
सत्य असत्य मिश्र समकाल । सीधे समकित क्षायक चाल २२
उपसम बोध धरै वहुबार । वेदै वेदकरूप विचार ॥
धर षट समकित स्वांग विधान । करै नृत्य जिय जान अजान २३
सैनीरूप असैनीरूप । दुविधिस्वाग जिय धरै अनूप ॥
पुरुषवेद तृण अगनि उछाह । त्रियवेदी कारीसादाह ॥ २४ ॥
वनदवदाह नपुंसकवेद । नटै जीव धर रूप त्रिभेद ॥
थावरमाहि इकेन्द्री होय । त्रस संखादिक इन्द्रिय दोय॥२५॥
पिपीलिकादिक इन्द्री तीनि । चौरिन्द्रिय जिय भ्रमरादीनि ॥
पंचेन्द्री देवादिक देह । सब बासठि **मारगणा** एह ॥ २६ ॥
जावत जिय मारगणारूप । तावत्काल बसै भवकूप ॥
जब **मारगणा** मूल उछेद । तब शिव आपै आप अभेद॥२७॥

दोहा ।

ये वासठ विधि जीवके, तनसम्बन्धी भाव ।
तज तनबुद्धि **वनारसी**, कीजे मोक्ष उपाव ॥ २८ ॥

इति वासठ मार्गणा विधान

अथ कर्मप्रकृतिविधान लिख्यते.

वस्तुछन्द ।

परमशंकर परमशंकर, परमभगवान्.
परब्रह्म अनादि शिव, अज अनंत गणपति विनायक ।
परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेशदायक ॥
इत्यादिक वहु नाम धर, जगतवंद्य जिनराज ।
जिनके चरण **वनारसी**, वंदै निजहितकाज ॥ १ ॥

दोहा ।

नमो केवलीके वचन, नमो आतमाराम ।
कहौ कर्मकी प्रकृति सव, भिन्न भिन्न पद नाम ॥ २ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

एकहि करम आठविधि दीस । प्रकृति एकसौ अडतालीस ॥
तिनके नाम भेद विस्तार । वरणहुं जिनवाणी अनुसार ॥ ३ ॥
प्रथमकर्म **ज्ञानावरणीय** । जिन सव जीव अज्ञानी कीय ॥
द्वितिय **दर्शनावरण** पहार । जाकी ओट अलख करतार॥४॥
तीजा कर्म **वेदनी** जान । तासों निरावाध गुणहान ॥
चौथा **महामोह** जिन भनै । जो समकित अरु चारित हनै॥५॥

पंचम आवकरम परधान। हनै शुद्ध अवगाहप्रमान ॥
छट्ठा **नामकर्म** विरतंत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥ ६ ॥
गोत्र कर्म सातमों वखान । जासो ऊंच नीच कुल मान ॥
अष्टम **अन्तराय** विख्यात। करै अनन्तशकतिको घात॥ ७॥

दोहा।

ए ही आठों करममल, इनमें गर्भित जीव ।
इनहिं त्याग निर्म्मल भयो, सो शिवरूप सदीव ॥ ८ ॥

चौपाई।

कहो कर्मतरु डाल सरीस । प्रकृति एकसो अडतालीस ॥
मतिज्ञानावरणी जो कर्म । सो आवरि राखै मतिधर्म ॥ ९॥
श्रुतिज्ञानावरणी वल जहां । शुभश्रुतज्ञान फुरै नहि तहां ॥
अवधिज्ञानआवरण उदोत। जियको अवधिज्ञान नहिं होत१०
मनपरजयआवरण प्रमान । नहि उपजै मनपर्जय ज्ञान ॥
केवलज्ञानावरणी कूप । तामहि गर्भित केवलरूप ॥ ११ ॥
वरणी ज्ञानावरणकी, प्रकृति पचपरकार ।
अव दर्शन आवरण तरु, कहहुं तासु नव डार ॥ १२ ॥
चक्षुदर्शनावरणी वध । जो जिय करै होहि सो अंध ।
अचखुदर्शनावरण वंधेव । शवद फरस रस गध न वेव॥१३॥
अवधिदर्शनावरण उदोत । विमल अवधिदर्शन नहिं होत ॥
केवलदर्शआवरण जहां । केवलदर्शन होय न तहा ॥१४॥
त्यानगृद्धि निद्रावश परै । सोमै प्राणी विशेष बलधरै ॥
उठि उठि चलै कहै कछु बात । करै प्रचंड कर्मउतपात॥१५॥

दोहा।

ये ही चारकषाय मल, अनुक्रम सूक्षम थूल।
चारों कीजे चौगुने, चन्द्रकला समतूल[1] ॥ २५

अनन्तानुबंधीय कषाय। जाके उदय न समकित
अप्रत्याख्यानिया उदोत। पंचमगुणथानक नहिं हो ॥
प्रत्याख्यान कहावै सोय। जहां सर्वसंयम नहि होय
सो **संज्वलन** नाम गुरु भनै। यथाख्यातचारित जो ह
क्रोध मान माया अरु लोभ। चारों चारचारविधि शोभ
ए कषाय सोलह दुखधाम। अब नव नोकषायके नाम।
रागद्वेषकी हासी जोय। **हास्य**कषाय कहावै सोय ॥
सुखमें मगन होय जिय जहां। **रति**कषाय रस वरसै तह
जहां जीवको कछु न सुहाय। तहां मानिये **अरति** कषा
थरहर कंपै आतमराम। जामहिं सो कषाय **भय** नाम ॥

रुदन विलाप वियोग दुख, जहां होय सो **सोग**।
जहां ग्लानि मन ऊपजै, सो **दुर्गंछा** रोग ॥ ३१ ॥

नगर दाह सम परगट दीस। गुप्त पँजावा[3] अग्नि सरीस ॥
महा कलुषता धरें सदीव। वेद नपुंसकधारी जीव ॥ ३२

अब वरनों तियवेदकी, रचना सुनि गुरु भाष।
कारीसाकीसी अगनि, गर्भित छल अभिलाष ॥ ३३

१ समतुल्य=बराबर. २ होय 'गुर्जर' ३ अवा ईंट व खपरोंका

ज्यों कारीसाकी अगनि, धुआँ न परगट होय।
सुलग सुलग अन्तर दहै, रहै निरन्तर सोय ॥ ३४ ॥

त्यों वनितावेदी पुरुष, बोलै मीठे बोल।
वाहिर सब जग वश करे, भीतर कपटकलोल ॥ ३५ ॥

कपट ऊटपसों आपको, करै कुगतिको वध।
पाप पथ उपदेश दे, करै औरको अंध ॥ ३६ ॥

आपा हत औरन हतै, वनितावेदी सोय।
अब लक्षण ताके कहो, पुरुष वेद जो होय ॥ ३७ ॥

ज्यों तृण पूलाकी अगनि, दीखै शिखा उतंग।
अल्परूप आलाप धर, अल्पकालमें भंग ॥ ३८ ॥

तैसे पुरुषवेद धर जीव। धर्म कर्ममें रहै सदीव ॥
महामगन तप संजम माहि। तन तावै तनको दुख नाहि ॥ ३९ ॥
चित उदार उद्धत परिणाम। पुरुषवेद धर आतमराम ॥
तीन मिथ्यात पचीस कषाय। अट्ठाईस प्रकृति समुदाय ॥ ४० ॥

अब सुन आयु चार परकार। नर पशु देव नरक थिति धार ॥
मानुष आयु उदय नर भोग। लह तिरजच आयु पशु जोग ॥ ४१ ॥
देव आयु सुरवर विख्यात। नरक आयुसो नरक निपात ॥
वरनी आयुकर्मकी वान। नामकर्म अब कहौ वखान ॥ ४२ ॥
पिड प्रकृति चौदह परकार। अट्ठाईस अपिड विस्तार ॥
पिडभेद पैसठ परशस्त। मिलि तिराणवै होहि समस्त ॥ ४३ ॥

ते तिराणवै कहूं वखान । पिड अपिंड वियालिस जान ॥
प्रथमपिड प्रकृती गतिनाम । सुर नर पशु नारक दुखधाम ॥ ४४

सो॰

सुरगतिसों सुर गेह, नरग [illegible]
पशुगतिसों पशुदेह, नर [illegible] नरक गति ॥ [illegible] ॥

[illegible]

चहुंगति आनुपूरवी चार । [illegible]ड प्रकृती अवधार ॥
मरण समय तज देह स्वकीय [illegible] गमन करै जब जीव ॥४६
आनुपूरवी प्रकृति फिरि । [illegible]में आनें घेरि ॥
आनपूरवी होय सहाय । ग[illegible] नूतन परजाय ॥ ४७ ॥
तृतिय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार । इग दुग तिग चदु पच विचार॥
फरसरसन नासा दृग कान । जथाजोग जिय नाम बखान॥४८॥
तन इन्द्रिय धारै जो कोय । मुख नासा दृग कान न होय ॥
सो एकेन्द्रिय थावर काय । भू जल अगनि वनस्पति वाय ॥४९॥
जाके तन रसना द्वय थोक । संख गिडोला जलचर जोक ॥
इत्यादिक जो जंगम जन्त । ते द्वै इंद्री कहै सिद्धन्त ॥ ५० ॥
जाके तन मुख नाक हजूर । घुन पिपीलिका कानखजूर ॥
इत्यादिक तेइन्द्रिय जीव । आख कानसों रहत सदीव ॥ ५१ ॥
जाके तन रसना नाशा आखि । विच्छु सलभ टीड अलि माखि॥
इत्यादिक जे आतमराम । ते जगमें चौइद्री नाम ॥ ५२ ॥
देह रसन नासा दृग कान । जिनके ते पचेद्री जान ॥
नर नारकी देव तिरजच । इन चारहुके इन्द्री पंच ॥ ५३ ॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार । औदारिक वैक्रियक अहार ॥
तैजस कार्माण मिल पंच । औदारिक मानुष तिरजंच ॥ ५४ ॥
वैक्रिय देव नारकी धरै । मुनि तपवल आहारक करै ॥
तैजस कार्माण तन दोय । इनको सदा धरैं सबकोय ॥ ५५ ॥
जैसी उदय तथा तिन गही । चौथी पिंड प्रकृति यह कही ॥
अब बंधन संघातन दोय । प्रकृति पंचमी छठवी सोय ॥५६॥
बंधन उदय काय बंधान । संघातनसों दिढ संधान ॥
दुहुँकी दश शाखा द्वय खंध । जथाजोग काया सबंध ॥ ५७ ॥
अब सातमी प्रकृति परसग । कहौं तीन तन अग उपग ॥
औदारिक वैक्रियक अहार । अग उपंग तीन तनधार ॥ ५८॥

दोहा ।

सिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पद टेक ।
आठ अंग ये तनविषै, और उपग अनेक ॥ ५९ ॥

तैजस कार्माण तन दोय । इनके अग उपग न होय ॥
कहहु आठमी प्रकृति विचार । षट् सस्थान रूप आकार ६०
जो सर्वंग चारु परधान । सो है समचतुरस्र संठान ॥
ऊपर थूल अधोगत छाम । सो निगोधपरिमडल नाम ॥६१॥
हेट थूल ऊपर कृश होय । सातिक नाम कहावें सोय ॥
कूबर सहित वक्र वपु जासु । कुवज अकार नाम है तासु॥६२॥
लघुरूपी लघु अग विधान । सो कहिये वामन सठान ॥
जो सर्वंग असुदर मुंड । सो सठान कहावै हुड ॥ ६३ ॥

कही आठमीप्रकृति छभेद । अव नौमी सहनन निवेद ॥
है सहनन हाड़को नाम । सो षट्विधि थभै तन धाम ॥६४॥
वज्र कील कीलित सधान । ऊपरि वज्रपट्ट वधान ॥
अतर हाड वज्रमय वाच । सो है वज्रवृषभनाराच ॥ ६५ ॥
जहँ सव हाड़ वज्रमय जोय । वज्रमेख सो अविचल होय ॥
ऊपर वेढरूप सामान । नाम वज्रनाराच वखान ॥ ६६ ॥
वज्र समान होहि जहँ हाड । ऊपर वज्ररहित पट आड ॥
वज्ररहित कीलीसों विद्ध । सो नाराच नाम परसिद्ध ॥ ६७ ॥
जाके हाड वज्रमय नाहि । अर्द्धवेध कीली नसमाहि ॥
ऊपर वेठवँधन नहि होय । अर्द्धनराच कहावै सोय ॥ ६८ ॥
जहा न होय वज्रमय हाड । नहि पटबंधन कीली गाड ॥
कीली विन दिढ वधन होय । नाम कीलिका कहिये सोय६९
जहां हाड़सों हाड न वधै । अमिल परस्पर संधि न सधै ॥
ऊपर नसाजाल अरु चाम । सो सेवट सहनन नाम ॥ ७० ॥
ये संहनन छविधि वरणई । नवमी प्रकृति समापति भई ॥
दशमी प्रकृति गमन आकाश । ताके दोय भेद परकाश ७१

दोहा ।

शुभविहाय गतिके उदय, भली चाल जिय धार ।
अशुभविहाय उदोतसों, ठानै अशुभ विहार ॥ ७२ ॥

पद्धरिछन्द ।

अव कहूं ग्यारमी प्रकृतिसंच । जो वरणभेद परकार पंच ॥
सित अरुण पीत दुति हरित श्याम । ये वर्ण प्रकृतिके पंच नाम ७३

जो वर्ण प्रकृति जाके उदोत । ताको शरीर तिह वर्ण होत ॥
रस नाम प्रकृति वारमी जान। सो पचभेद विवरण वखान ७४

कटु मधुर तिक्त आमल कपाय । रसउदय रसीली होय काय।
जाको जो रस प्रकृती उदोत। ताके तन तैसो स्वाद होत ७५

तेरहीं प्रकृति गँधमयी होय । दुर्गंध सुगन्ध प्रकार दोय ॥
जो जीव जो प्रकृति करै वध। तिह उदय तासु तन सोइ गध७६

अव फरस नाम चौदवी वानि। तिस कहो आठ शाखा वखानि॥
चीकनी रुक्ष कोमल कठोर । लघु भारी शीतल तप्त जोर॥७७॥

दोहा ।

प्रकृति चीकनीके उदय, गहै चीकनी देह ।
रूखी प्रकृति उदोतसों, रुखीकाया गेह ॥ ७८ ॥

कठिन उदयसो कठिन तन, मृदु उदोत मृदु अग ।
तपतउदयसों तपततन, शीतउदय शीतंग ॥ ७९ ॥

पद्धरि छद ।

जहँ भारी नाम परकृति उदोत। तहँ भारी तनधर जीव होत ॥
लघुप्रकृति उदयधर जीव जोय। अति हरुई काया धरै सोय८०

ए पिडप्रकृति दशचार भाखि। इनहीकी पैसठ कही साखि ॥
अव अट्ठावीस अपिण्ड ठानि । तिनके गुणरूप कहों वखानि८१

जव प्रकृति अगुरुलघु उदय देय। तव जीव अगुरुलघु तन धरेय
उपघात उदय सो अंग व्याप। जासों दुख पावै जीव आप॥८२॥

परघात उदयसों होय अग। जो करै औरको प्राण भंग ॥
उस्सासप्रकृति जब उदय देय। तब प्राणी सास उसास लेय ८३
आतप उदोत तन जथा भान। उद्योत उदय तन शशि समान
त्रस प्रकृति उदय धर जीव जोय। जंगम शरीरधर चलै सोय ८४
थावर उदोतधर प्राणधार। लहि थिर शरीर न करै विहार ॥
सूक्षम उदोत लघु देह जास। सो मारै मरै न और पास ८५
बादर उदोत तन थूल होय। सबहीके मारे मरै सोय ॥
परजापति प्रकृति उदय करंत। जिय पूरी परजापति धरंत ८६
जो प्रकृति अपर्जापत धरेय। सो पूरी परजापत न लेय ॥
प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत। सो जीव वनस्पति काय होत ॥ ८७॥
जब तुचा काठ फल फूल पात। जहँ बीज सहित जियराशिसात॥
जो एक देहमें जीव एक। सो जीवराशिकहिये प्रत्येक ॥ ८८ ॥
प्रत्येक वनसपति द्विविधिजान। सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित बखान॥
जो धारै राशि अनन्तकाय। सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय ॥८९॥
जामें नहि होय निगोदधाम। सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम ॥
अब साधारणवनसपति काय। सो सूच्छम बादर द्विविधि थाय ९०
सूच्छम निगोद जगमें अमेय। बादर यह दूजा नामधेय ॥
धरि भिन्न भिन्न कार्माण काय। मिलि जीव अनन्त इकत्र आय ९१
संग्रहहि एक नो कर्म देह। तिस कारण नाम निगोद एह ॥
सो पिण्ड निगोद अनन्तरास। जियरूप अनंतानंत भास ॥९२॥

भर रहे लोकनभमें सदीव । ज्यों घड़ामाहि भर रहै घीव ॥
सूक्षम अरु वादर दोय साख । पुनि नित्य अनित्य दुभेद भाख ९३
जो गोलकरूपी पचधाम । अंडर खंडर इत्यादि नाम ॥
ते सातनरकके हेट जान । पुनि सकललोकनभमें वखान ॥९४॥

दोहा ।

एक निगोद शरीरमे, जीव अनंत अपार ।
धरे जन्म सब एकठे, मरहिं एक ही बार ॥ ९५ ॥
मरण अठारह बार कर, जनम अठारह वेव ।
एक स्वास उस्त्रासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ९६ ॥
एक निगोदशरीरमे, एते जीव वखान ।
तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ९७ ॥
वढै न सिद्ध अनतता, घटै न राशि निगोद ।
जैसेके तैसे रहें, यह जिनवचनविनोद ॥ ९८ ॥
तातें वात निगोदकी, कहै कहालौ कोय ।
साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ९९ ॥
यह साधारण प्रकृतिलो, वरणी चौदह साख ।
वाकी चौदह जे रहें, ते वरणों मुख भाख ॥ १०० ॥

पद्धरिछन्द ।

थिरप्रकृति उदयथिरता अभग । अस्थिर उदोतसों अथिर अंग ॥
शुभप्रकृतिउदय शुभरीति सर्व । जहँ अशुभउदय तहँ अशुभपर्व १
सौभागप्रकृति जाके उदोत । सो प्राणी सवको इष्ट होत ।
दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव । सवको अनिष्ट लागै सदीव ॥२॥

जहँ सुस्वरप्रकृति उदय वखान। तहँ कंठ कोकिला मधुरवान ॥
जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार। ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥३॥

आदेयप्रकृति जाके उदोत। ताको वहु आदर मान होत ॥
जब अनादेयको उदय होय। तब आदर मान करै न कोय ॥४॥

जसनामउदय जिस जीव पाहिं। ताकी जस कीरति जगतमाहिं ॥
जहँ प्रगट भालमहँ अजसरेख। तहँ अपजस अपकीरति विशेख ५

निर्म्माणचितेरा उदय आय। सब अंगउपंग रचै वनाय ॥
तीर्थंकरनामप्रकृति उदोत। लहि जीव तीर्थंकरदेव होत ॥ ६ ॥

दोहा।

ये तिरानवे और दश, तनसंबन्धी आन।
मिलहिं एकसोतीन सब, होहिं नामकी वान ॥ ७ ॥

चौपाई।

नामप्रकृति सपूरण भई। पिंड अपिंड कही जो जुई ॥
पिण्डप्रकृति चौदह वनि रही। तिनकी पैंसठ शाखा कही ॥८॥

अट्ठाइस अपिंड वरनई। ते सब मिलि तिरानवे भई ॥
वरनों गोतकरम सातमा। जासों ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥

ऊंचगोत उद्योत प्रवान। होवै जीव उच्चकुलथान ॥
नीचगोत फलसगति पाय। जीव नीचकुल उपजै आय ॥१०॥

गोत्रकर्मकी द्वयप्रकृति, तेहु कही वखानि।
अंतराय अव पंचविधि, तिनकी कहों कहानि ॥ ११ ॥

अंतराय अष्टम वटमार । सो है भेद पच परकार ॥
अन्तराय तरुकी द्वै डार । निहचै एक एक विवहार ॥ १२ ॥

कहो प्रथम निहचैकी वात । जासु उदय आतमगुण घात ॥
परगुन त्याग होहि नहिं जहा । दान अन्तराय कहि तहां १३

आतमतत्त्वलाभकी हान । लाभअन्तराई सो जान ॥
जवलो आतमभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥

वारवार न जगै उपयोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥
अष्टकर्मको करै न जुदा । वीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥

निहचै कही पंच परकार । अव सुन अन्तराय विवहार ॥
छतीवस्तु कछु देय न सकै । दान अन्तराई वल ढकै ॥ १६ ॥

उद्यम करै न सपति होय । लाभ अन्तराई है सोय ॥
विषयभोग सामग्री छती । जीव न भोग कर सकै रती ॥१७॥
रोग होय कै भोग न जुरै । भोगअ[illegible] फरै ॥
एक भोगसामग्री सार । ताकौ भे[illegible] १८ ॥
कीजे सो कहिये उपभोग । ताहू[illegible]ोग ॥
यह उपभोगघातकी कथा । वीरजअन्तराय [illegible] जथा ॥१९॥
शक्ति अनत जीवकी कही । सो जगदशामाहि दव रही ॥
जगमे शक्ति कर्मआधीन । कवहूं सवल कवहु वलहीन ॥२०॥
तनइन्द्रियवल फुरै न जहा । वीरजअन्तराय है तहां ॥
ताते जगतदशा परवान । नय राखी भाखी भगवान ॥२१॥

दोहा।

द्विविधिगोत्र द्वय वेदनी। आयु चारविधिजानि॥
मिल तिरानवे नाम की एकोत्तरशत वानि॥ ३१॥

चौपाई।

जे घातहि सब आतमदर्व। ते ही कही घातिया सर्व॥
जे कछु घात करहि कछु नाहि। देशघातिया ते इन माहि॥३२॥
जे न करहि आतमवल घात। ते अघातिया कही विख्यात॥
अब सुन पुण्यपापके भेद। भिन्न भिन्न सब कहों निवेद ३३
इक सातावेदनी स्वभाव। नरकआयु विन तीनों आव॥
ऊंचगोत्र मानुषगति भली। मानुषआनुपूरवी रली॥ ३४॥
सुरगति सुरानुपूरवि जान। जात पंचेन्द्री एक वखान॥
पच शरीर पंच सघात। बधनसहित पचसंगात॥ ३५॥
अंग उपग तीनविधि भास। विशति वर्ण गंध रस फास॥
पहिला समचतुरस्र सँठान। बज्रवृषभनाराच वखान॥ ३६॥
भली चाल आतप उद्योत। पर परघात अगुरुलघु होत॥
सास उसास प्रतेक प्रवान। त्रस बादर पर्यापत जान॥३७॥
थिर शुभ शुभग सुस्वर आदेय। जसनिर्म्माण तीर्थंकर धेय॥
पुण्यप्रकृतिकी अडसठ वान। पापप्रकृति अव कहों वखान३८
सर्वघातियाकी इकवीस। देशघातियाकी छब्बीस॥
ये सैतालिस प्रकृती कही। बाकी और कहहुं जो रही॥३९॥

प्रकृति असाता नीचकुल, नरकआयु गति दोय ।
पशु नारकि इन दुहुनकी, आनुपूरवी जोय ॥ ४० ॥

चार जाति पचेन्द्री विना । पचसहनन प्रथम न गिना ॥
समचतुरसविन पचअकार । वर्णादिक विंशति परकार ॥४१॥

बुरी चाल थावर उपघात । सूक्षम साधारण विख्यात ॥
अनादेय अपर्यापत दशा । दुर्भग दुस्वर अशुभ अपजशा ४२

अथिरसमेत एकसो वान । ए सब पापप्रकृति परवान ॥
केती बंध उदय केतीक । तिनकी बात कहों अब ठीक॥४३॥

दोहा ।

चारबंध वरणादिमें, बाकी सोलह नाहि ।
एक बधमिथ्यातमें, द्वै गर्भित इसमाहि ॥ ४४ ॥

तनबधन संघातकी, प्रकृति पंचदश जान ।
पंच बंध दश बध विन, ये अट्ठाइस वान ॥ ४५ ॥

अट्ठाइसको बध नहिं, बध एकसोवीस ॥
इनमें दोय बढाइये, होहिं उदयबावीस ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

बंध उदय विशेष यह बात । एक मिथ्यात तीन मिथ्यात ॥
एई दोय अधिक परनई । प्रकृति एकसोबाविस भई ॥ ४७॥

अब विपाक वरनों विधि चार । पु[illegible] क्षेत्र भव धार ॥
जे पुद्गलविपाककी वान । ते बासठ[illegible] कहों बखान ॥४८॥

पच शरीर वधसघात । अंग उपंग अठारह वात ॥
छह संहनन छहों संठान । वर्णादिक गुन वीस वखान ॥४९॥
थिर उदोत आतप निरमान । अथिर अगुरुलघु अशुभ विधान॥
साधारण प्रतेक उपघात । शुभ परघात सुवासठ वात ॥५०॥
जीव विपाक अठत्तर गनी । द्विविधि गोत्र द्वयविधि वेदनी ॥
सर्वघात अरु देशविघात । सैतालीस प्रकृति विख्यात ॥५१॥
तीर्थंकर वादर उस्वास । सूक्षम परजापत परकास ॥
अपरजापति सुस्वर गेय । दुस्वर अनादेय आदेय ॥ ५२ ॥
जस अपजस त्रस थावर वान । दुर्भग शुभग चाल द्वयजान॥
इन्द्री जाति पचविधि गही । गति चारों एती सव कही॥५३॥

दोहा ।

जीवविपाकीकी कही, प्रकृति अठत्तर ठौर ॥
क्षेत्रविपाकी अव कहों, भवविपाकिनी और ॥ ५४ ॥
आनुपूरवी चार विधि, क्षेत्रविपाकी ज़ान ।
चार आयुवलकी प्रकृति, भवविपाकिया वान ॥ ५५ ॥
घाति अघाती त्रिविधि कहे, पुण्य पाप द्वय चाक ।
वध उदय दोऊ कहे, वरनें चार विपाक ॥ ५६ ॥
अव इन आठों करमकी, थिति जघन्य उतकृष्ट ।
कहो वात सक्षेपसो, सुनों कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

चौपाई ।

ज्ञानावरणीकी थिति दीस । कोडाकोडीसागरतीस ॥
यह उत्कृष्टदशा परवान । एकमुहूर्त जघन्य वखान ॥ ५८ ॥

द्वितिय दर्शनावरणीकर्म । थिति उत्कृष्ट कहो सुन मर्म ॥
कोडाकोडी तीस समुद्र । एकमुहूरतकी थिति क्षुद्र ॥ ५९ ॥
तीजा कर्म वेदनी जान । कोडाकोडीतीस वखान ॥
यह उत्कृष्ट महाथिति जोय । जघन मुहूरतबारह होय ॥६०॥
चौथा महामोह परधान । थिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥
सागरसत्तरकोडाकोडि । लघुथिति एकमुहूरत जोडि ॥ ६१ ॥
पंचम आयु कही जगदीस । उत्कृष्टी सागर तेतीस ॥
थिति जघन्य सुमुहूरतएक । यों गुरु कही विचार विवेक॥६२॥
छट्ठा नामकर्मथिति कहों । कोडाकोडि वीस सरदहों ॥
सागर यह उत्कृष्टविधान । आठमुहूर्त जघन्य वखान ॥ ६३ ॥
गोत्रकर्म सातवा सरीस । उत्कृष्टी थिति सागरवीस ॥
कोडाकोडिकाल परमान । लघुथिति आठ मुहूरतमान ॥ ६४॥
अष्टम अंतराय दुखदानि । उत्कृष्टी थिति कहो वखानि ॥
सागरकोडाकोडी तीस । लघुथिति एकमुहूरत दीस ॥ ६५ ॥

वरनी आठों कर्मकी, । थिति उत्कृष्ट जघन्य ॥
बाकी मध्यम और थिति, । ते असंख्यधा अन्य ॥६६ ॥

अब वरनों पल्योपमकाल । तथा सागरोपमकी चाल ॥
कूपभरे जे रोम अपार । ते वरनें नाना परकार ॥ ६७ ॥
पल्योपमके भेद अनेक । तातें यहां न वरना एक ॥
जोजन कूप रोमकी बात । कही जैनमतमें विख्यात ॥ ६८ ॥

कूपकथा जैसी कछु कही । सो पल्योपम कहिये सही ॥
पल्योपम दश कोडाकोड़ि । सब एकत्र कीजिये जोडि ॥६९॥

एक सागरोपम सो काल । यह प्रमान जिनमतकी चाल ॥
यहै सागरोपमकी कथा । यथा सुनी मै वरणी तथा ॥ ७० ॥

आठकर्म अठतालसों, प्रकृतिभेद विस्तार ।
कै जानें जिन केवली, कै जानै गनधार ॥ ७१ ॥

अल्पवुद्धि जैसी मुझ पाहिं । तैसी मै वरनी इसमाहि ॥
पंडित गुनी हँसो मत कोय । अल्पमती भाषाकवि होय ॥७२॥

कर्मकांड आगम अगम, यथाशक्ति मन आन ।
भाषा मै रचना कही, वालवोधमें जान ॥ ७३ ॥

कलसा—गीताछन्द

यह कर्मप्रकृतिविधान अविचल, नाम ग्रन्थ सुहावना ।
इसमाहि गर्भित सुपुतचेतन, गुपत वारह भावना ॥
जो जान भेद वखान सरदहि, शब्द अर्थ विचारसी ।
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप **बनारसी** ॥ ७४ ॥

दोहा ।

संवत् सत्रहसौ समय, फाल्गुणमास वसन्त ।
ऋतु शशिवासर सप्तमी, तव यह भयो सिद्धंत ॥ ७५ ॥

इति श्रीकर्मप्रकृतिविधान

अथ कल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषानुवाद.

दोहा

परमज्योति परमातमा, परमज्ञान परवीन ।
वंदों परमानंदमय, घट घट अंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई । (१५ मात्रा)

निर्भयकरन परम परधान । भवसमुद्र जलतारण जान ॥
शिवमन्दिर अघहरण अनिन्द । वन्दहु पासचरणअरविन्द ॥२॥
कमठमानभंजन वरवीर । गरिमासागर गुणगंभीर ॥
सुरगुरु पार लहैं नाहिं जासु । मैं अजान जंपों जस तासु॥३॥
प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसे इह होय निवाह॥
ज्यों दिनअंध उलूको पोत । कहि न सकै रविकिरनउदोत ४
मोहहीन जानै मनमाहिं । तोउ न तुमगुण वरणें जाहिं ॥
प्रलयपयोधि करै जल वौन । प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन५
तुम असंख्य निर्मलगुणखानि । मैं मतिहीन कहों निजवानि॥
ज्यों बालक निज बांह पसार । सागरपरिमित कहै विचार ६
जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद । तउ न जानहिं तुमगुणभेद ॥
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पखी बोलहि निज भाख७
तुम जसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥
आवै पवन पद्मसर होय । ग्रीपमतपत निवारै सोय ॥ ८ ॥

---

१ बचा २ वमन ३ पद्मसरोवरको स्पर्श करके

तुम आवत भविजन मनमाहि । कर्मनिबंध शिथिल हो जॉहि॥
ज्यो चंदनतरु बोलहि मोर । डरहि भुजङ्ग लगे चहुंओर ॥९॥

तुम निरखतजन दीनदयाल । संकटतें छूटहि ततकाल ॥
ज्यों पशुघेर लेहि निशिचोर । ते तज भागहि देखत भोर१०

तू भविजन तारक किम होह । ते चित धार तिरहि लै तोह॥
यह ऐसै करि जान स्वभाउ । तिरै मसक ज्यों गर्भितवाउ ११

जिन सब देव किये वश वाम । तै छिनमें जीत्यो सो काम ॥
ज्यों जल करै अग्निकुलहानि । वडवानल पीवै सो पानि॥१२॥

तुम अनन्त गरुवा गुण लिये । क्योंकरभक्ति धरूं निजहिये॥
ह्वै लघुरूप तिरहि ससार । यह प्रभुमहिमा अकथ अपार १३

क्रोध निवार कियो मनशांति । कर्म सुभटजीते किहि भाति ॥
यह पटतर देखहु संसार । नीलवृक्ष ज्यों दहै तुसार ॥१४॥

मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूप समध्यावहि तोहि॥
कमलकर्णिका विन नहि और । कमलबीज उपजनकी ठौर१५

जब तुह ध्यानधरै मुनि कोय । तब विदेह परमातम होय ॥
जैसें धातु शिलातन त्याग । कनकस्वरूप धवै जब आग १६

जाके मन तुम करहु निवास । विनस जाय क्यो विग्रह तास॥
ज्यों महन्त विच आवै कोय । विग्रह मूल निवारै सोय॥१७॥

करहि विबुध जे आतम ध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥
जैसै नीर सुधा अनुमान । पीवत विष विकारकी हान॥१८॥

तुम भगवंत विमल गुणलीन । समलरूप मानहि मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण संखसौ कहै ॥१९॥

दोहा ।

निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भये अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ २०॥
सुमनवृष्टि जो सुरकरहि, हेठ बीटमुख सोहि ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बध अधोमुख होहि ॥ २१ ॥
उपजी तुम हिय उदधितै, वाणी सुधा समान ।
जिहि पीवत भविजन लहहि, अजर अमर पदथान ॥२२॥
कहहि सार तिहुंलोकको, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमें, तसु गति ऊरध होय ॥ २३ ॥
सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभुधुनि गरजित घोर।
श्याम सुतन घनरूप लख, नाचत भविजन मोर ॥ २४॥
छवि हत होंहि अशोकदल, तुमभामंडल देख ।
वीतरागके निकट रह, रहत न राग विशेख ॥ २५ ॥
शीखि कहै तिहुंलोकको, यह सुरदुंदुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २६ ॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत ।
त्रिविधिरूप धर मनहुं शशि, सेवत नखतसमेत ॥ २७ ॥

पद्धरिछन्द ।

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम । परताप पुंज जिम शुद्ध हेम॥
अति धवलसुजस रूपा समान। तिनके गढ तीन विराजमान॥२८

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल। तिन शीसमुकुट तजदेहिं माल॥
तुव चरण लगत लहलहै प्रीति। नहि रमहि और जन सुमनरीति २९
प्रभुभोग विमुख तन कर्म दाह। जन पार करत भवजल निवाह॥
ज्यों माटीकलश सुपक्क होय। ले भार अधोमुख तिरहि तोय ३०
तुम महाराज निर्द्धन निराश। तज विभव विभव सब जगविकाश
अक्षर स्वभावसैलिखै न कोय। महिमा अनन्त भगवंत सोय ३१
कोप्यो सु कमठ निज वैर देख। तिन करी धूल वर्षा विशेख॥
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन। सो भयो पापि लपट मलीन ३२
गरजंत घोर घन अंधकार। चमकंत विज्जु जलमुसलधार॥
वरषत कमठ धरध्यान रुद्र। दुस्तर करंत निजभवसमुद्र ३३

वस्तु छन्द।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि।
भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण।
अग्नि जाल झलकत मुख, धुनि करंत जिमि मत्तवारण॥
कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह कंठ।
है निशंक वह रकनिज, करै कर्मदृढगंठ॥ ३४॥

चौपाई।

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहि तज मायाजंजाल॥
भाव भगतिमन हरष अपार। धन्य २ जग तिन अवतार॥३५॥
भवसागरमहं फिरत अजान। मै तुह सुजश सुन्यो नहिं कान॥
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै॥ ३६॥

मनवांछित फल जिनपदमाहिं। मै पूरव भव पूजे नाहिं ॥
माया मगन फिरचो अज्ञान। करहि रकजन मुझ अपमान ३७
मोहतिमर छायो दग मोहि। जन्मान्तर देख्यो नहि तोहि ॥
तौ दुर्जन मुझ संगति गहै। मरमछेदके कुवचन कहै ॥ ३८ ॥
सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥
भक्ति हेतु न भयो चित चाव। दुखदायक किरियाविन भाव ३९
महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल ॥
सुमिरण करहु नाय निज शीस। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥४०
कर्मनिकन्दनमहिमा सार। अशरणशरण सुजश विसतार ॥
नहि सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥
सुरगण वन्दित दया निधान। जगतारण जगपति जगजान ॥
दुखसागरतें मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुखराशि ॥ ४२ ॥
मै तुम चरणकमल गुन गाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥
जन्मजन्म प्रभु पावहुं तोहि। यह सेवा फल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकान्त वेसरीछन्द। पट्पद

इहिविधि श्रीभगवत, सुजश जे भविजन भाषहि।
ते निज पुण्य भंडार, संच चिरपाप प्रणासहिं ॥
रोमरोम हुलसति अग, प्रभु गुणमनध्यावहि।
स्वर्गसंपदा भुज, वेग पंचम गति पावहि ॥
यह **कल्याणमन्दिर** कियो, कुमुदचन्द्रकी वुद्धि।
भाषा कहत **बनारसी**, कारण समकितशुद्धि ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्र

अथ साधुवन्दना लिख्यते.

दोहा ।

श्रीजिनभाषित भारती, सुमरि आन मुखपाठ ।
कहो मूल गुण साधुके, परमित विंशतिआठ ॥ १ ॥
पंचमहाव्रत आदरन, समति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, षट अवशिक आचार ॥ २ ॥
भूमिशयन मजनतजन, वसनत्याग कचलोच ।
एकवार लघुअसन थिति-अ[1]सन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाई ।

थावर जन्तु पच परकार । चार भेद जगम तन धार ।
जो सब जीवनको रखपाल । सो सुसाधु वन्दहुं तिरकाल ॥४॥
संतत सत्य वचन मुख कहै । अथवा मौनाविरत धर रहै ।
मृषावाद नहि बोलै रती । सो जिन मारग सांचा जती ॥५॥
कौड़ी आदि रतन परजत । घटित अघट धनभेद अनत ॥
दत्त अदत्त न फरसै जोय । तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥ ६ ॥
पशु पखी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी रति सेव ॥
तजहि निरन्तर मदन विकार । सो मुनि नमहु जगत हितकार ७
द्विविधि परिग्रह दशविधि जान । सख असख अनन्त वखान ॥
सकल संगतज होय निराश । सो मुनि लहै मोक्ष पदवास ॥ ८ ॥

---

१ खडेभोजन करना

अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥
सदय हृदय साधै शिव पंथ । सो तपीश निरभय निर्ग्रन्थ ॥ ९ ॥

निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुख हीन ॥
ऐसे सुवचन कहै स्वभाव । सो ऋषिराज नमहुं धरि भाव १०

उत्तम कुल श्रावक संचार । ताखु गेह प्राशुक आहार ॥
भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौ सुरति संभाल॥ ११॥

उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुं जोर कर दोय १२

रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अंग उठान ॥
डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उरधार १३

कोमल कर्कश हरुव सभार । रुक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन दुख सुखलहैं । सो मुनिराज जिनेश्वर कहैं॥ १४॥

आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहि स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहि तिहँ देव १५

शुभ सुगंध नाना परकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥
नासा विषय गनहि समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल १६

श्यामहरित सित लोहित पीत । वरण विवरण मनोहर भीत ॥
ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध १७

शब्द कुशब्दहि समरस साद । श्रवण सुनत नहिं हरष विषाद ॥
थुति निंदा दोऊं सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥ १८॥

सामाइक साधै तिहु काल। मुकति पंथकी करै सँभाल॥
शत्रुमित्रदोऊं सम गणै। सो मुनिराज करमरिपु हणै॥१९॥
अर्हत सिद्ध सूरि उवझाय। साधु पच पद परम सहाय॥
इनके चरणनमे मन लाय। तिस मुनिवरके बन्दों पाय॥२०॥
पावन पंचपरम पद इष्ट। जगतमाहिं जानै उतकिष्ट॥
ठानै गुणथुति बारंबार। सो मुनिराज लहै भवपार॥२१॥
ज्ञान क्रिया गुणधारै चित्त। दोष विलोक करै प्राछित्त॥
नित प्रतिक्रमणक्रियारसलीन। सो सुसाधु संजम परवीन॥२२॥
श्रीजिनवचन रचन विसतार। द्वादशांग परमागम सार॥
निजमति मान करै सज्झाँउ। सो मुनिवर बदहुं धर भाउ २३
काउसग्गमुद्रा धर नित्त। शुद्धस्वरूप विचारै चित्त॥
त्यागै त्रिविधिजोग ममकार। सो मुनिराज नमो निरधार २४
प्राशुक शिला उचित भूखेत। अचल अग समभाव सचेत॥
पश्चिमरैन अलप निद्राल। सो योगीश्वर वचै काल॥२५॥
धर्मध्यान जुत परम विचित्र। अन्तर बाहिज सहज पवित्र॥
न्हान विलेपन तजै त्रिकाल। वन्दों सो मुनि दीनदयाल॥२६॥
लोकलाजविगलित भयहीन। विषयवासनारहित अदीन॥
नगन दिगम्बर मुद्राधार। सो मुनिराज जगत सुखकार॥२७॥
सधन केश गर्भित मलकीच। त्रस असंख्य उतपति तसुबीच॥
कच लुंचै यह कारण जान। सो मुनि नमहुं जोरजुगपान२८

---

१ समीचीन ध्यान

छुधा वेदनी उपशम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
एकबार लघु भोजन करै । सो मुनि मुकति पंथ पगधरै २९
देह सहारौ साधन मोप । तबलौं उचित कायबल पोप ॥
यह विचार थिति लेहि अहार । सो मुनि परम धरम धनधार ३०
जहँ जहँ नवदुवारमलपात । तहँ तहँ अमित जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवन काज । सो शिवपथसाधक ऋषिराज ३१

ये अठ्ठाविस मूल गुण, जो पालहि निरदोष ।
सो मुनि कहत **बनारसी,** पावै अविचल मोष ॥ ३२ ॥

इति साधुवन्दना

अथ मोक्षपैडी लिख्यते.

दोहा ।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खै सुनमल्ल ।
जो तुझ अंदरचेतना, वहै तुसाड़ी अल्ल ॥ १ ॥
ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला ।
अक्खै रोचकशिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला ॥
इस बुझै बुध लहलहै, नहि रहै मयल्ला ।
इसदा मरम न जानई, सो द्विपद वयल्ला ॥ २ ॥
जिसदौ गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला ।
जिसना संसै तिमिरसों, सूझै झलमल्ला ॥

खनै जिन्हादी भूमिनौ, कुज्ञान कुदल्ला ।
सहज तिन्हादा वहजसो, चित रहै दुदल्ला ॥ ३ ॥

जिन्हा इक करमदा, दुविधा पद भल्ला ।
इक अनिष्ट असोहणा, इक झाक झमल्ला ॥

तिन्हां इक न सूझई, उपदेश अहल्ला ।
बंककटाछे लोपना, ज्यो चद गहल्ला ॥ ४ ॥

जिन्हा चित इतवारसों, गुरुवचन न झल्ला ।
जिन्हा आगें कथन यो, ज्यो कोदो दल्ला ॥

वरसे पाहन भुम्मिमें, नहिं होय चहल्ला ।
वोये वीज न ऊप्पजै, जल जाय वहल्ला ॥ ५ ॥

चेतन इस ससारमें, तू सदा इकल्ला ।
आपे रूप पिशाच, है तै अप्पा छल्ला ॥

आपे घुम्या गिरि पया, किणिदित्ता टल्ला ।
जिन्हसों मिलन विजोग है, तिनसो क्या तल्ला ॥ ६ ॥

इस दुनियांदी मोजसों, तू गरवगहल्ला ।
भया भार खम पुरुष, ज्यो छप्पर विच वल्ला ॥

सुपनैदा सुख मान तै, अपना घर घल्ला ।
फिरा भरमकी भौरमें, तू सहज विलल्ला ॥ ७ ॥

जोग अडवर तै किया, कर अंवर मल्ला ।
अंग विभूति लगायके, लीनी मृग छल्ला ॥

है वनवासी तै तजा, घरवार महल्ला ।
अप्पापर न पिछाणियां, सब झूंठी गल्ला ॥ ८ ॥

माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सल्ला ।
तिहुं वादी करतूतसों, जियदा उरझल्ला ॥

ज्यों रुधिरादी पुट्टसों, पट दीसै लल्ला ।
रुधिरानलहि पखालिये, नहि होय उजल्ला ॥ ९ ॥

जब लग तेरी समझमें, होंदी हल चल्ला ।
सुजश बढ़ाई लाभनो, करदा छल बल्ला ॥

तबलग तू स्याणा नहीं, क्या मारइ कल्ला ।
सोर करंदा पालणै, ज्यों झूलै लल्ला ॥ १० ॥

किण तूं जकरा सांकला, किण पकरा पल्ला ।
भिदमकरा जौ उरझिया, उर जाल उगल्ला ॥

चेतन जड़ संजोगमै, तै टांका झल्ला ।
तुही छुड़ावहि आपको, लख रूप इकल्ला ॥ ११ ॥

जो तै दारिद मानिया, है ठल्लमठल्ला ।
जो तू मानहि संपदा, भरि दामहू गल्ला ॥

जो तू हुवा करंकसा, अरु मोगर मल्ला ।
सो सब नाना रूप है, नाचै पुद्गल्ला ॥ ॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूप रसल्ला ।
वै संघा भरि जोवना, बूढा अरु बल्ला ॥

लंब मझोला ठींगना, गोरा अरु कल्ला ।
सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १३ ॥

जो जीरण ह्वै झरपडै, जो होय नवल्ला ।
जो मुरझावै सुक्कै, फुल्ला अरु फल्ला ॥

जो पानीमें वह चलै, पावकमै जल्ला ।
सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १४ ॥

एक कर्म दीसै दुधा, ज्यों तुलदा पल्ला ।
हरुवै तन गुरुवैतसो, अध ऊरध थल्ला ॥

अशुभरूप शुभरूप है, दुहु दिशिनो चल्ला ।
धरै दुविधि विस्तार जौ, वट विरख जटल्ला ॥ १५ ॥

पवन परै रे जो उडै, माटी विच गल्ला ।
जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥

पापी पावक पौन भू, चहुंधामै रल्ला ।
सो सब नाना रूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १६ ॥

खिणरोवे खिणमें हंसै, जौ मदमतवल्ला ।
त्यों दुहुंवादी मौजसों, वेहोश सँभल्ला ॥

ईकसवीच विनोद है, इकमें खलफल्ला ।
समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसो हलभल्ला ॥ १७ ॥

जाति दुहूंकी एक जौ, मणि पत्थर डल्ला ।
जल विथार सँकोच सों, कहिए नदि नल्ला ॥

उद्धत जलपरवाहमें, जौ भौर वुलल्ला ।
त्यों इस कर्म विपाकदे, विच ऊचा खल्ला ॥ १८ ॥
दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोई अटल्ला ।
ऊंच नीच इक सम करै, कलिकाल पटल्ला ॥
अध ऊरध ऊरध अधो, थिति उथल पुथल्ला ।
अरहट हार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥ १९ ॥
पाया देवशरीरज्यो, नलनीर उछल्ला ।
भव पूरण कर ढहि पया, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥
पुण्य पाप विच खेद है, यह भेद न भल्ला ।
ज्ञान क्रिया निरदोष है, जहँ मोख महल्ला ॥ २० ॥
वतनु तु साडा मोहमै, जौ रोह रुहल्ला ।
थिति प्रवाण तुझ नो भया, गुरुज्ञान दुहल्ला ॥
अव घट अंतर घटगई, भव भीर चुहल्ला ।
परम चाह परगट भई, शिव राह सहल्ला ॥ २१ ॥
ज्ञान दिवाकर ऊगियो, मति किरण प्रवल्ला ।
ह्वै शत खंड विहंडिया, भ्रम तिमर पटल्ला ॥
सत्य प्रतापै भजिया, दुर्गती दुहल्ला ।
अगि अंगोर दज्झिया, जौ तूल पहल्ला ॥ २२ ॥

दोहा ।

यह सतगुरुदी देशना, कर आस्रव दीवाड़ि ।
लद्धी पैड़ि मोखदी, करम कपाट उघाड़ि ॥ २३ ॥

भव थिति जिनकी घटगई, तिनको यह उपदेश।
कहत बनारसिदास यों, मूढ न समुझै लेश ॥ २४ ॥

इति श्रीमोक्षपैडी.

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते.

दोहा।

परम निरंजन परमगुरु, परमपुरुष परधान।
वन्दहुं परमसमाधिगत, भयभंजन भगवान ॥ १ ॥

जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु शीख मन आन।
कछुक जीव अरु कर्मको, निर्णय कहों वखान ॥ २ ॥

अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अकाश।
सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास ॥ ३ ॥

जीव द्रव्यकी द्वै दशा, संसारी अरु सिद्ध।
पंच विकल्पअजीव के, अखय अनादि असिद्ध ॥ ४ ॥

गगन, काल, पुद्गल, धरम, अरु अधर्म अभिधान।
अब कछु पुद्गल द्रव्यको, कहों विशेष विधान ॥ ५ ॥

चरमदृष्टिसों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत।
जड़ लक्षण निर्जीव दल, रूपी मूरतिवंत ॥ ६ ॥

जो त्रिभुवन थिति देखिये, थिर जंगम आकार।
सो पुद्गल परवानको, है अनादि विस्तार ॥ ७ ॥

अब पुद्गलके बीसगुण, कहो प्रगट समुझाय ।
गर्भित और अनन्तगुण, अरु अनन्त परजाय ॥ ८ ॥

श्याम पीत उज्ज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति ।
विविधवर्ण जो देखिये, सो पुद्गलकी कांति ॥ ९ ॥

आमल तिक्त कषाय कटु, क्षार मधुर रसभोग ।
ए पुद्गलके पांचगुण, घट मानहि सबलोग ॥ १० ॥

तातो सीरो चीकनो, रूखो नरम कठोर ।
हलको अरु भारीसहज, आठ फरस गुणजोर ॥ ११ ॥

जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप ।
अब पुद्गल परजायकी, महिमा कहों अनूप ॥ १२ ॥

शब्द, गंध, सूक्षम, सरल, लम्ब, वक्र, लघु थूल ।
बिछुरन, भिदन, उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥

छाया, आकृति, तेज, दुति, इत्यादिक बहु भेद ।
ए पुद्गलपरजाय सब, प्रगटहि होय उछेद ॥ १४ ॥

केई शुभ केई अशुभ, रुचिर, भयानक भेष ।
सहज स्वभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥

गर्भित पुद्गलपिंडमें, अलख अमूरति देव ।
फिरै सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी टेव ॥ १६ ॥

पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति ।
पुद्गलको आपा गणै, यहै भरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हस।
याही भरम विभावसो, वढै करमको वंश ॥ १८ ॥

ज्यों ज्यों कर्म विपाकवश, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यो त्यों निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥

ज्यों वानर मदिरा पिये, विच्छू डंकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥

भ्रम सशयकी भूलसो, लहै न सहज स्वकीय।
करम रोग समुझै नहीं, यह ससारी जीय ॥ २१ ॥

कर्म रोगके द्वै चरण, विपम दुहूकी चाल।
एक कप प्रकृती लिये, एक ऐठि असराल ॥ २२ ॥

कपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य।
ज्ञान रूप है आतमा, दुहू रोगसो शून्य ॥ २३ ॥

मूरख मिथ्यादृष्टिसो, निरखै जगकी रोस।
डरहि जीव सब पापसो, करहिं पुण्यकी होंस ॥ २४ ॥

उपजै पापविकारसो, भय तापादिक रोग।
चिन्ता खेद विथा वढ़ै, दुखमानै सवलोग ॥ २५ ॥

उपजै पुण्यविकारसों, विषयरोग विस्तार।
आरत रुद्र विथा वढै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥

दोऊ रोग समान है, मूढ न जानै रीति।
कपरोगसों भय करै, अकररोगसो प्रीति ॥ २७ ॥

भिन्न २ लक्षण लखे, प्रगट दुहूंकी भांति ।
एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशांति ॥ २८ ॥
कच्छपकीसी सकुच है, वक्र तुरगकी चाल ।
अंधकारकोसो समय, कपरोगके भाल ॥ २९ ॥
चकरकूंदसी उमँग है, जकरवन्दकी चाल ।
मकरचादनीसी दिपै, अकररोगके भाल ॥ ३० ॥
तमउदोत दोऊ प्रकृति, पुद्गलकी परजाय ।
भेदज्ञान विन मूढ मन, भटक भटक भरमाय ॥ ३१ ॥
दुहूं रोगको एक पद, दुहुसों मोक्ष न होय ।
विनाशीक दुहुकी दशा, विरला बूझे कोय ॥ ३२ ॥
कोऊ गिरै पहाड़ चढ़, कोऊ बूड़े कूप ।
मरण दुहूको एक सो, कहिवेको द्वै रूप ॥ ३३ ॥
भववासी दुविधा धरै, तातै लखै न एक ।
रूप न जानै जलधिको, कूप कोपको भेक ॥ ३४ ॥
माता दुहुंकी वेदनी, पिता दुहूंको मोह ।
दुहु वेड़ीसो बंधि रहे, कहवत कंचन लोह ॥ ३५ ॥
जाति दुहूंकी एक है, दोय कहै जो कोय ।
गहै आचरै सरदहै, सुरवल्लभ है सोय ॥ ३६ ॥
जाके चित जैसी दशा, ताकी तैसी दृष्टि ।
पंडित भव खंडित करै, मूढ वढावै सृष्टि ॥ ३७ ॥

इति कर्म छत्तीसी

अथ ध्यानबत्तीसी लिख्यते.

दोहा ।

ज्ञान स्वरूप अनन्त गुण, निराबाध निरुपाधि ।
अविनाशी आनन्दमय, वन्दहुं ब्रह्मसमाधि ॥ १ ॥

भानु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निशि होत ।
दोऊं जाके नाम मै, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

चौपाई । (सोळा मात्रा)

चेतहु पाणी सुन गुरुवाणी । अमृतरूप सिद्धांत बखानी ।
परगट दोऊ नय समुझावें । मरमी होय मरम सो पावें ॥ ३ ॥
चेतन जड अनादि सजोगी । आपहि करता आपहि भोगी ।
सहज स्वभाव शकति जब जागै । तब निहचैके मारग लागै ४
फिरकै देहबुद्धि जब होई । नयव्यवहार कहावै सोई ।
भेदभाव गुन पंडित बूझै । जाको अगम अगोचर सूझै ॥ ५॥
प्रथमहि दान शील तप भावै । नय निहचै विवहार लखावै ।
परगुणत्यागबुद्धि जब होई । निहचै दान कहावै सोई ॥ ६ ॥
चेतन निज स्वभावमहँ आवै । तब सो निश्चयशील कहावै ।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै । निश्चय तप कहिये इह लेपै ॥ ७ ॥
विमलरूप चेतन अभ्यासै । निश्चयभाव तहां परगासै ।
अब सद्गुरु व्यवहार बखानै । जाकी महिमा सब जगजानै ८
मनवचकाय शकति कछु दीजे । सो व्यवहारी दान कहीजे ।
मनवचकाय तजै जब नारी । कहिये सोइ शील विवहारी॥९॥

मनवचकाय कष्ट जब सहिये। तासों विवहारी तप कहिये।
मनवचकाय लगनि ठहरावै। सो विवहारी भाव कहावै॥१०॥

दोहा।

दान शील तप भावना, चारों सुख दातार।
निहचै सो निहचै मिलै, विवहारी विवहार॥ ११॥

चौपाई।

अब सुन चार ध्यान हितकारी। साधहि मुक्तिपंथ व्यापारी॥
मुद्रा मूरति छवि चतुराई। कलाभेप बलवेस बढाई॥ १२॥
फरस वरण रस गंध सुभाखा। इह रूपस्थध्यानकी शाखा॥
इनकी संगति मनसा साधै। लगन सीख निज गुण आराधै१३
रहै मगन सो मूढ कहावै। अलख लखाव विचच्छण पावै॥
अर्हत आदि पंच पदलीजे। तिनके गुणको सुमरण कीजे १४
गुणको खोज करत गुण लहिये। परमपदस्थध्यान सो कहिये॥
चंचलता तज चित्त निरोधै। ज्ञानदृष्टि घटअन्तर शोधै॥१५॥
भिन्न भिन्न जड़ चेतन जोवै। गुण विलेच्छ गुणमाहि समोवै।
यह पिंडस्थध्यान सुखदाई। कर्मनिरजरा हेत उपाई॥ १६॥
आप संभार आपसों जोरै। परगुणसों सब नाता तोरै॥
लगै समाधि ब्रह्ममय होई। रूपातीत कहावै सोई॥ १७॥

दोहा।

यह रूपस्थपदस्थविधि, अरु पिंडस्थविचार।
रूपातीत वितीत मल, ध्यान चार परकार॥ १८॥

चौपाई।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकाशै । ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै ॥
आर्त रौद्र कुध्यानहिं त्यागै । धर्मशुकलके मारग लागै ॥१९॥
आरत ध्यान चिंतवन कहिये । जाकी सगति दुरगतिलहिये ॥
इष्टविजोग विकलता भारी । अरि अनिष्ट सजोग दुखारी ॥२०॥
तनकी व्यथा मगन मन झूरै । अग्र शोचकर वांछति पूरै ॥
ए आरतके चारों पाये । महा मोहरससों लपटाये ॥ २१ ॥
अब सुन रौद्र ध्यानकी सैली । जहां पापसो मतिगति मैली ॥
मनउछाहसों जीव विराधै । हिये हर्षधर चोरी साधै ॥ २२ ॥
बिकसित झूटवचन मुखभाखै । आनंदितचितविषया राखै ॥
चारों रौद्र ध्यानके पाये । कर्मबन्धके हेतु बनाये ॥ २३ ॥

दोहा।

आरतरौद्र विचारतें, दुखचिन्ता अधिकाय ।
जैसें चढ़ै तरंगिनी, महामेघ जलपाय ॥ २४ ॥

चौपाई।

आर्त रौद्र कुध्यान बखाने । धर्मध्यान अब सुनहु सयाने ॥
केवल भाषित वाणी मानै । कर्मनाशको उद्यम ठानै ॥ २५ ॥
पूरवकर्म उदय पहिचानै । पुरुषाकार लोकथिति जानै ॥
चारों धर्म ध्यानके पाये । जे समुझे ते मारग आये ॥ २६ ॥
अब सुन शुक्ल ध्यानकी बातै । मिटै मोहकी सत्ता जातै ।
जोग साध सिद्धात विचारै । आतम गुण परगुण निरवारै २७

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै। पृथक्त वितर्क आदि पद सो है॥
उपशम पंथ चढै नहिं कोई। क्षपकपंथ निर्मल मन होई॥२८॥
तव मुनि लोकालोकविकासी। रहहि कर्मकी प्रकृति पचासी॥
केवल ज्ञान लहै जग पूजा। एक वितर्क नाम पद दूजा॥२९॥
जिनवर आयु निकट जव आवै। तहां वहत्तर प्रकृति खपावै॥
सूक्षम चित्त मनोवल छीजा। सूक्षम क्रिया नाम पद तीजा३०
शक्ति अनंत तहां परकाशै। ततखिन तेरह प्रकृति विनाशै॥
पंच लघूक्षर परमित वेरा। अष्ट कर्मको होय निवेरा॥ ३१॥
चरण चतुर्थ साध शिव पावै। विपरीत क्रिया निर्वृत्ति कहावै॥
शुक्ल ध्यानके चारों पाये। मुक्तिपंथकारण समुझाये॥ ३२॥

शुक्ल ध्यान औषधि लगै, मिटै करमको रोग।
कोइला छाडै कालिमा, होत अग्निसजोग॥ ३३॥
*यह परमारथ पथ गुन, अगम अनन्त वखान।
कहत वनारसि अलपमति, जथासकति परवान॥ ३४॥

इति ध्यानवत्तीसी.

अथ अध्यातमवत्तीसी लिख्यते.

शुद्ध वचन सदगुरु कहै, केवल भाषित अंग।
लोक पुरुषपरिमाण सव, चौदह रज्जु उतंग॥ १॥

---

* यह दोहा "ग,, 'ग,, प्रतिमें नहीं है

घृतघटपूरित लोकमें, धर्म अधर्म अकास ।
काल जीव पुद्गल सहित, छहों दर्वको वास ॥ २ ॥

छहों दरब न्यारे सदा, मिलै न काहू कोय ।
छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥

चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिलमें खलि तेल ।
प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको खेल ॥ ४ ॥

वह वाके रससों रमै, वह वासों लपटाय ।
चुम्बक करषै लोहको, लोह लगै तिहँ धाय ॥ ५ ॥

जड़ परगट चेतन गुपत, द्विविधा लखै न कोय ।
यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचक्षण होय ॥ ६ ॥

ज्यों सुवास फल फूलमें, दही दूधमें घीव ।
पावक काठ पषाणमें, त्यों शरीरमें जीव ॥ ७ ॥

कर्मस्वरूपी कर्ममें, घटाकार घटमाहि ।
गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यातै परगट नाहि ॥ ८ ॥

सहज शुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट ।
द्रव्यकर्म नोकर्मसों, वँधी पिडकी पोट ॥ ९ ॥

ज्ञानरूप भगवान शिव, भावकर्म चित भर्म ।
द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥

ज्यों कोठीमें धान थो, चमी माहिं कनवीच ।
चमी धोय कन राखिये, कोठी धोए कीच ॥ ११ ॥

कोठी सम नोकर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान।
भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान ॥१२॥
द्रव्यकर्म नोकर्ममल, दोऊ पुद्गल जाल।
भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल॥१३
द्विविधि ब्रह्मकी चालसों, द्विविधि चक्रको फेर।
एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥
ज्ञानचक्र अन्तर गुपत, कर्मचक्र प्रत्यक्ष।
दोऊं चेतनभाव ज्यों, शुक्लपक्ष, तमपक्ष ॥ १५ ॥
निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि।
परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी धूमि ॥ १६ ॥
ज्ञानचक्रकी ढरनिमें, सजग[1] भांति सब ठौर।
कर्मचक्रकी नीदसों, मृषा स्वप्नकी दौर ॥ १७ ॥
ज्ञानचक्र ज्यों दरशनी, कर्मचक्र ज्यों अंध।
ज्ञानचक्रमें निर्ज्जरा, कर्मचक्रमें वंध ॥ १८ ॥
ज्ञानचक्र अनुसरणको, देव धर्म गुरु द्वार।
देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावे भवपार ॥ १९ ॥
भववासी जानै नही, देवधरमगुरुभेद।
पर्यो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको खेद ॥ २० ॥
उदय सुकर्म कुकर्मके, रुलै चतुर्गति माहि।
निरखै वाहिजदृष्टिसों, तहँ शिवमारग नाहि ॥ २१ ॥

---

१ जागते हुए

देवधर्म गुरु है निकट, मूढ़ न जानै ठौर।
बँधी दृष्टि मिथ्यातसों, लखै औरकी और ॥ २२ ॥

भेषधारिको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव ।
धर्म कहै कुल री[illegible] यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥

देव निरंजनको कहै [illegible] ।
साधु पुरुषको [illegible]को ज्ञान ॥ २४ ॥

जानै मानै अ[illegible]न लाय ।
परसगति[illegible]बन्ध अधिकाय ॥ २५ ॥

कर्मबंधतै [illegible] लखै न वाट ।
अंध[illegible] विना सुमति उद्घाट ॥ २६ ॥

सहजमोह जब उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश ।
तब विभाव भवथिति घटै, जगै ज्ञान गुण लेश॥२७॥

ज्ञानलेश सो है सुमति, लखै मुकतिकी लीक ।
निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक ॥ २८ ॥

ज्यों सुपरीक्षित जौहरी, काच डाल मणि लेय ।
त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु सेय ॥ २९ ॥

दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध ।
परखै आतम संपदा, तजै सनेह विरुद्ध ॥ ३० ॥

अरचै दर्शन देवता, चरचै चारित धर्म ।
दिढ परचै गुरुज्ञानसों, यहै सुमतिको कर्म ॥ ३१ ॥

सुमतिकर्मतै शिव सधै, और उपाय न कोय ।
शिवस्वरूप परकाशसों, आवागमन न होय ॥ ३२ ॥
सुमतिकर्म सम्यक्तसों, देव धर्म गुरु द्वार ।
कहत बनारसि तत्त्व यह, लहि पावैं भवपार ॥३३॥

इति श्रीअध्यातमबत्तीसी

अथ श्री ज्ञानपच्चीसी लिख्यते.

सुरनर तिर्यग योनिमें, नरक निगोद भवंत ।
महा मोहकी नींदसों, सोये काल अनत ॥ १ ॥
जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाइ ।
तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥
लगै भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार ।
अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥
जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठै तरग ।
त्यों मनसा चचल भई, परिगहके परसंग ॥ ४ ॥
जहां पवन नहिं संचरै, तहा न जल कल्लोल ।
त्यो सब परिगृह त्यागलो, मनसा होय अडोल ॥५॥
ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय ।
त्यों तुम ममतासो मढे, मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥

१ यह दोहा ख, ग, प्रतिमें नही है

नीम रसन परसै नही, निर्विष तन जब होय ।
मोह घटे ममता मिटै, विषय न वाछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढे, बूडइ अध अदेख ।
त्यों तुम भवजलमें परे, विन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥

जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार ।
आतम रुचि नौका चढे, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नही, महामत्त गजराज ।
त्यो मन तृष्णामें फिरै, गणै न काज अकाज ॥१०॥

ज्यों नर दाव उपावकै, गहि आनै गज साधि ।
त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥

तिमिररोगसो नैन ज्यों, लखै औरकी और ।
त्यों तुम सशयमें परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय ।
त्यों सतगुरुउपदेशतै, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥

जैसै सब जादव जरे, द्वारावतिकी आग ।
त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते वचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ ।
तज माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ़ कंचनकांति ।
पापपुण्य कर त्यों भये, मूढातम वहु भाति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहि तजै, [1]वानहीनके होत ।
घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उद्योत ॥ १७ ॥
पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्यपापमलखोय ॥ १८ ॥
पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होंहि मलीन ॥ १९ ॥
निंबादिक चन्दन करै, मलयाचलकी वास ।
दुर्ज्जनतै सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥
जैसै ताल सदा भरै, जल आवै चहुं ओर ।
तैसै आस्त्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥
ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखै सरवर पानि ।
तैसै संवरके किये, कर्म्म निर्ज्जरा जानि ॥ २२ ॥
ज्यों बूटी सजोगतै, पारा मूर्छित होय ।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥ २३ ॥
मेल खटाई मांजिये, पारा परगट रूप ।
शुक्लध्यान अभ्यासतें, दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४ ॥
कहि उपदेश **बनारसी**, चेतन अब कछु चेतु ।
आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु ॥ २५ ॥

इति श्रीज्ञानपचीसी.

---

१ अन्यधातुकी स्वादसहित होनेसे

अथ शिवपच्चीसी लिख्यते.

दोहा ।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान ।
बन्दों सिद्धसमाधिमय, शिवस्वरूप भगवान ॥ १ ॥
मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सीव ।
बन्दों जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनीव ॥ २ ॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान अवाची । शिवमहिमाअनुभवमति सांची॥
शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुवा अविनासी ३
जीव और शिव और न होई । सोई जीववस्तु शिव सोई ॥
जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ४
करै जीव जब शिवकी पूजा । नामभेदतै होय न दूजा ॥
विधि विधानसों पूजा ठानै । तब शिव आप आपको जानै ५
तन मंडप मनसा जहँ वेदी । शुभलेश्या गह सहज सफेदी ॥
आतमरुचि कुंडली बखानी । तहा जलहरी गुरुकी वानी ६
भावलिंग सो मूरति थापी । जो उपाधि सो सदा अव्यापी ॥
निर्गुणरूप निरंजन देवा । सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥
समरस जल अभिषेक करावै । उपशम रसचन्दन घसि लावै ॥
सहजानन्द पुष्प उपजावै । गुणगर्भित जयमाल चढावै ॥८॥
ज्ञानदीपकी शिखा सवारै । स्याद्वाद घंटा झुनकारै ॥
अगम अध्यातम चौर ढुलावै । क्षायक धूप स्वरूप जगावै ॥९॥

निहचै दान अर्घविधि होवै। सहजशील गुण अक्षत ढोवै॥
तप नेवज काढै रस पागै। विमलभाव फल राखइ आगै १०

जो ऐसी पूजा करै, ध्यानमगन शिवलीन।
शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन॥ ११॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई। शिवमुद्रा मंडित जो होई॥
सुरसरिता करुणारसवाणी। सुमति गौरि अर्द्धङ्ग वखानी॥१२॥
त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेखा। विमलभावसमकित शशिलेखा॥
सुगुरु शीख सिंगी उर बांधै। नयविवहार वाघम्बर कांधै॥१३॥
कबहूं तन कैलाश कलोलै। कबहुं विवेकबैल चढ़ डोलै॥
रुंडमाल परिणाम त्रिभंगी। मनसा चक्र फिरै सरवगी॥ १४॥
शक्ति विभूति अंगछवि छाजै। तीन गुपति तिरशूल विराजै।
कंठ विभाव विषम विष सोहै। महामोह विषहर नहिं पोहै १५
संजम जटा सहज सुख भोगी। निहचैरूप दिगम्बर जोगी॥
ब्रह्म समाधिध्यान गृह साजै। तहा अनाहत डमरू वाजै॥१६॥

पच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान।
ग्यारह प्रातिमा साधतै, ग्यारह रुद्र समान॥ १७॥

मंगल करन मोखपद ज्ञाता। यातै शंकर नाम विख्याता॥
जब मिथ्यामत तिमर विनाशै। अधकहरण नाम परकाशै १८
ईश महेश अखयनिधिस्वामी। सर्व नाम जग अंतरजामी॥
त्रिभुवन त्याग रमै शिवठामा। कहिये त्रिपुरहरण तब नामा १९

अष्टकर्मसों भिड़ै अकेला । महारुद्र कहिये तिहिं वेला ॥
मनकामना रहै नहिं कोई । कामदहन कहिये तब सोई ॥२०॥
भववासी भवनाम धरावै । महादेव यह उपमा पावै ॥
आदि अन्त कोई नहिं जानै । शंभुनाम सब जगत बखानै २१
मोहहरण हर नाम कहीजे । शिवस्वरूप शिवसाधन कीजे ॥
तज करनी निश्चयमें आवै । तब जगभजन बिरद कहावै २२
विश्वनाथ जगपति जग जानै । मृत्युंजय तम मृत्यु न मानै ॥
शुक्ल ध्यान गुण जब आरोहै । नाम कपूरगौर तब सोहै ॥२३॥

इहिविधि जे गुण आदरै, रहै राचि जिहँ ठाँव ।
जिहँ जिहँ मारग अनुसरै, ते सब शिवके नाँव ॥२४॥
नांव जथामति कल्पना, कहूं प्रगट कहुं गूढ़ ।
गुणी विचारै वस्तु गुण, नाँव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥
मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों प्रीति ।
पंडित लखै बनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥ २६ ॥

इति शिवपचीसी

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते.

जैसें काहू पुरुषको, पार पहुंचवे काज ।
मारगमाहिं समुद्र तहां, कारणरूप जहाज ॥ १ ॥
तैसें सम्यकवंतको, और न कछू इलाज ।
भवसमुद्रके तरणको, मन जहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहि।
मूरख मर्म न जानही, वाहिर खोजन जाहि॥ ३॥
मूरखहूके घटविषै, जलजहाज अरु पौन।
दृगमुद्रित मालीम तहँ, लखै सँभारै कौन?॥ ४॥
कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकषाय तरंग।
बडवागनि तृष्णा प्रवल, ममता धुनि सरवंग॥ ५॥
भरमभँवर तामें फिरै, मनजहाज चहुं ओर।
गिरै खिरै बूड़ै तिरै, उदय पवनके जोर॥ ६॥
जब चेतन मालिम जगै, लखै विपाक नजूम।
डारै समता शृंखला, थकै भँवरकी घूम॥ ७॥
मालिम सहज समुद्रको, जानै सब विरतंत।
शुभोपयोग तहँ रत्न सम, अशुभ भाव जलजंत॥८॥
जन्तु देख नहि भय करै, रत्न देख उच्छाह।
करै गमन शिवदीपको, यह मालिमकी चाह॥ ९॥
दिशि परखै गुणजत्रसों, फेरै शकति सुखान।
धरै साथ शिवदीपमुख, वादवान शुभध्यान॥ १०॥
चहै शुद्ध उद्धत पवन, गहै क्षिपक दिशिलीक।
लहै खवर शिवदीपकी, रहै दृष्टिगति ठीक॥ ११॥
मनजहाज इहिविधि चलै, गहै सिंधुजलवाट।
आवै निज संपतिनिकट, पावै केवल घाट॥ १२॥

---

१ कहै ऐसाभी पाठ है

मालिम उतर जहाजसों, करै दीप को दौर।
तहा न जल न जहाज गति, नहि करनी कछु और॥ १३॥
मालिमकी कालिममिटी, मालिम दीप न दोय।
यह भवसिन्धुचतुर्दशी, मुनिचतुर्दशी होय॥ १४॥

इति सिन्धुचतुर्दशी

अथ अध्यातम फाग लिख्यते.

अध्यातम विन क्यों पाइये हो, परमपुरुषको रूप।
अघट अग घट मिल रह्यो हो, महिमा अगम अनूप॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये॥ १॥
विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसत।
प्रगटी सुरुचि सुगधिता हो, मन मधुकर मयमंत॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये॥ २॥
सुमति कोकिला गह गही हो, बही अपूरव वाउ।
भरम कुहर बादरफटे हो, घट जाडो जड ताउ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये॥ ३॥
मायारजनी लघु भई हो, समरस दिवशशिजीत।
मोहपंककी थिति घटी हो, सशय शिशिर व्यतीत॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये॥ ४॥
शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहि अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलिविस्तार॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये॥ ५॥

शशिविवेक निर्मल भयो हो, थिरता अमिय झकोर ।
फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ६ ॥
सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द ।
हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ ७ ॥
दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निर्ज्जरा जोर ।
धार धारणा वहचली हो, शिवसागर मुख ओर ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ८ ॥
वितथवात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज ।
जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्तके राज ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ९ ॥
भवपूरणति चार्चरि भई हो, अष्टकर्म वनजाल ॥
अलख अमूरति आतमा हो, खेलै धर्म धमाल ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ १० ॥
नयपंकति चाचरि मिलि हो, ज्ञानध्यान डफताल ।
पिचकारी पद साधना हो, संवर भाव गुलाल ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ ११ ॥
राग विराम अलापिये हो, भावभगति शुभ तान ।
रीझ परम रसलीनता हो, दीजे दश विधिदान ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १२ ॥

---

१ पृथिवी ऐसाभी पाठ है

दया सिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान ।
शील सलिल अति सीयलो हो, सजम नागर पान ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १३ ॥

गुपति अंग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति ।
अकथ कथा मुखभाखिये हो, यह गारी निरनीति ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ १४ ॥

उद्धत गुण रशिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम ।
सुरत तरगमॅह छकि रहे हो, मनसा वाचा नेम ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १५ ॥

परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग ।
आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १६ ॥

प्रकृति पचासी लगि रही हो, भस्म लेख है सोय ।
न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहॅ खेल न कोय ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ १७ ॥

सहज शक्ति गुण खेलिये हो, चेत **बनारसिदास** ।
सगे सखा ऐसे कहै हो, मिटै मोहदधि फास ॥
भला अध्यातमविन क्यो पाइये ॥ १८ ॥

इति अध्यातमधमार

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई ।

परिवा प्रथम कला घट जागी । परम प्रतीतिरीति रसपागी ॥
प्रतिपद परम प्रीति उपजावै । वहै प्रतिपदा नाम कहावै ॥१॥
दूज दुहूंधी दृष्टि पसारै । स्वपरविवेकधारणा धारै ॥
दर्वित भावित दीसै दोई । द्वय नय मानत द्वितीया होई॥२॥
तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै । त्रिविधिरूप त्रिभुवन आभासै॥
तीनों शल्य उपाधि उछेदै । त्रिवा कर्मकी परिणति भेदै ॥३॥
चौथ चतुर्गतिको निरवारै । कर चकचूर चौकरी चारै ॥
चारों वेद समुझि घर आवै । तब सुअनंत चतुष्टय पावै ॥ ४ ॥
पांचै पंच सुचारित पालै । पंचज्ञानकी सुरति सभालै ॥
पाचों इन्द्रिय करै निरासा । तब पावै पंचमगति वासा ॥ ५ ॥
छठ छहकाय खांग धर सोवै ॥ छह रस मगन छ आकृति होवै॥
जब छहदरशनमें न अरूझै । तब छ दर्वसों न्यारो सूझै ॥ ६ ॥
सातें सातों प्रकृति खिपावै । सप्तभंग नयसों मन लावै ॥
त्यागै सात व्यसनविधि जेती । निर्भय रहै सात भयसेती ७
आठै आठ महामद भंजै । अष्टसिद्धिरतिसों नहिं रंजै ॥
अष्टकर्ममलमूल वहावै । अष्टगुणातम सिद्ध कहावै ॥ ८ ॥
नौमी नवरसमें रस वेवै । तौ समकित धर नवपद सेवै ॥
करै भक्तिविधि नव परकारा । निरखै नवतत्त्वनसो न्यारा ॥९॥

दशमी दशदिशिसों मन मोरै। दश प्राणनसों नाता तोरै ॥
दशविधि दान अभ्यतर साधै। दशलच्छण मुनिधर्म अराधै १०
ग्यारस ग्यारह प्रकृति विनाशै। ग्यारह प्रतिमापद परकाशै ॥
ग्यारह रुद्र कुलिग वखानै। ग्यारह विथा जोग जिन मानै ११
वारस वारह विरति बढावै। वारह विधि तपसों तन तावै ॥
वारहभेद भावना भावै। वारह अग जिनागम गावै ॥ १२ ॥
तेरस तेरह क्रिया संभालै। तेरह विघन कांठिया टालै ॥
तेरहविधि सजम अवधारै। तेरह थानक जीव विचारै ॥१३॥
चौदश चौदह विद्या मानै। चौदह गुणथानक पहिचानै ॥
चौदह मारगना मन आनै। चौदहरज्जु लोक परवानै ॥१४॥
पन्द्रस पन्द्रह तिथि गनिलीजे। पन्द्रह पात्र परखि धन दीजे॥
पन्द्रह जोगरहित जो धरणी। सो घट शून्य अमावस वरणी १५
पूनों पूरण ब्रह्मविलासी। पूर गुण पूरण परगासी ॥
पूरण प्रभुता पूरणमासी। कहै साधु तुलसी वनवासी ॥१६॥

इति षोडसतिथिका.

अथ तेरह काठिया लिख्यते.

जे वटपारै वाटमें, करहिं उपद्रव जोर।
तिन्हे देश गुजरातमें, कहहिं काठियां[1]चोर ॥ १ ॥

---

१ लुटेरे

त्यों यह तेरह काठिया, करहिं धर्मकी हानि।
तातैं कछु इनकी कथा, कहहु विशेष वखानि ॥ २ ॥

जूआ[1] आलस[2] शोक[3] भय[4], कुकथा[5] कौतुक[6] कोह[7]।
कृपणबुद्धि[8] अज्ञानता[9], भ्रम[10] निद्रा[11] मद[12] मोह[13] ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया **जूआ** जान। जामें पंच वस्तुकी हान।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म। मिटै सुजश विनशै धनधर्म ॥ ४ ॥

द्वितिय काठिया **आलसभाव**। जासु उदय नाशै विवसाव ॥
बाहिर शिथिल होहिं सब अंग। अंतर धर्मवासना भंग ॥ ५ ॥

ठग तीसरो **शोक** संताप। जासु उदय जिय करै विलाप ॥
सूतक पातक जिहि पर होय। धर्मक्रिया तहँ रहै न कोय ॥ ६ ॥

भय चतुर्थ काठिया वखान। जाके उदय होय बलहान ॥
उर कंपै नहि फुरै उपाय। तव सुधर्मउद्यम मिट जाय ॥ ७ ॥

ठग पंचम **कुकथा** वकवाद। मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद ॥
जबलों जीव मगन इसमाहिं। तबलो धर्म वासना नाहिं ॥ ८ ॥

कौतूहल छट्ठम काठिया। भ्रमविलाससो हरषै हिया ॥
मृषा वस्तु निरखै धर ध्यान। विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान ॥ ९ ॥

कोप काठिया है सातमा। अग्नि समान जहा आतमा ॥
आप न दाह औरको दहै। तहां धर्मरुचि रंच न रहै ॥ १० ॥

कृपणबुद्धि अष्टम वटपार। जामें प्रगट लोभ अधिकार ॥
लोभ माहि ममता परकाश। ममता करै धर्मको नाश ॥ ११ ॥

नवमा ठग **आज्ञान** अगाध । जासु उदय उपजै अपराध ॥
जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहां धर्म न होय १२
दशम काठिया **भ्रम** विच्छेप । भ्रमसों अशुभ करमको लेप ॥
अशुभ कर्म दुरमतिकी खानि । दुरमति करै धर्मकी हानि१३
एकादशम काठिया **नींद** । जासु उदय जिय वस्तु न वींद ॥
मन वच काय होय जडरूप । बूडै धर्म कर्मघनकूप ॥१४॥
ठग द्वादशम **अष्टमद** भार । जामें अकररोग अधिकार ॥
अकररोग अरु विनयविरोध । जँह अविनय तँह धर्मनिरोध१५
तेरम चरम काठिया **मोह** । जो विवेकसों करै विछोह ॥
अविवेकी मानुष तिरजंच । धर्मधारणा धरै न रंच ॥ १६ ॥

येही तेरह करम ठग । लेंहि रतन त्रय छीन ॥
यातैं संसारी दशा । कहिये तेरह तीन ॥ १७ ॥

इति त्रयोदश काठिया

अथ अध्यातम गीत लिख्यते.

राग गौरी.

मेरा मनका प्यारा जो मिलै। मेरा सहज सनेही जो मिलै ॥टेक॥
अवधि अजोध्या आतम राम । सीता सुमति करै परणांम ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज० ॥ १ ॥
उपज्यो कंत मिलनको चाव । समता सखीसों कहै इसभाव ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ २ ॥

मै विरहिन पियके आधीन। यों तलफों ज्यों जल विन मीन।
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ ३ ॥

वाहिर देखू तो पिय दूर । घट देखे घटमें भर पूर ॥
मेरा० .... ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार । वचनअगोचर मनके पार ॥
मेरा० ... ... ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय । कवधों पियको दर्शन होय ॥
मेरा० .... ॥ ६ ॥

सुगम सुपंथ निकट है ठौर । अंतर आड विरहकी दौर
मेरा० .... ॥ ७ ॥

जउ देखों पियकी उनहार । तन मन सर्वस डारों वार ॥
मेरा० .... ॥ ८ ॥

होहुं मगन मै दरशन पाय । ज्यों दरियामें बूंद समाय ॥
मेरा० .... ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय । ओला गल पाणी ज्यो होय ॥
मेरा० .... ॥ १० ॥

मै जग ढूंढ फिरी सव ठोर । पियके पटतर रूप न ओर ॥
मेरा० .... ॥ ११ ॥

पिय जगनायक पिय जगसार । पियकी महिमा अगम अपार॥
मेरा० .... ॥ १२ ॥

पिय सुमिरत सव दुख मिट जाहि । भोरनिरख ज्यों चोर पलाहिं

मेरा० .... ॥ १३ ॥

भयभंजन पियको गुनवाद । गजगंजन ज्यों केहरिनाद ॥

मेरा० .... ॥ १४ ॥

भागइ भरम करत पियध्यान । फटइ तिमिर ज्यों ऊगत भान

मेरा० .... ॥ १५ ॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर । नाग डरइ ज्यों बोलत मोर ॥

मेरा० ... . ॥ १६ ॥

वसों सदा मैं पियके गॉउ । पियतज और कहां मै जॉउ ॥

मेरा० .... ॥ १७ ॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ । जातहि जात मिलै सब कोइ

मेरा० .... ॥ १८ ॥

पिय मोरे घट, मै पियमाहि । जलतरग ज्यों द्विविधा नाहिं ॥

मेरा० .... ॥ १९ ॥

पिय मो करता मै करतूति । पिय ज्ञानी मै ज्ञानविभूति ॥

मेरा० .... ॥ २० ॥

पिय सुखसागर मै सुखसीव । पिय शिवमन्दिर मै शिवनीव ॥

मेरा० .... ॥ २१ ॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ॥

मेरा० .... ॥ २२ ॥

पिय शंकर मै देवि भवानि। पिय जिनवर मै केवलवानि॥
मेरा० .... ॥ २३ ॥

पिय भोगी मै भुक्तिविशेष। पिय जोगी मै मुद्रा भेष॥
मेरा० .... ॥ २४ ॥

पिय मो रसिया मै रसरीति। पिय व्योहारिया मै परतीति॥
मेरा० .... ॥ २५ ॥

जहां पिय साधक तहाँ मै सिद्ध। जहां पिय ठाकुर तहाँ मै रिद्ध॥
मेरा० .... ॥ २६ ॥

जहां पिय राजा तहाँ मै नीति। जहँ पिय जोद्धा तहाँ मै जीति
मेरा० .... ॥ २७ ॥

पिय गुणग्राहक मै गुणपाति। पिय वहुनायक मै वहुभांति॥
मेरा० .... ॥ २८ ॥

जहँ पिय तहँ मै पियके सग। ज्यों शशि हरिमें ज्योति अभग
मेरा० .... ॥ २९ ॥

पिय सुमिरन पियको गुणगान। यह परमारथपंथ निदान॥
मेरा० .... ॥ ३० ॥

कहइ व्यवहार वनारसिनाव, चेतन सुमति सटी इकठॉव॥
मेरा० .... ॥ ३१ ॥

इति चेतनसुमतिगीत

अथ पंचपदविधान लिख्यते.

दोहा

नमो ध्यानधर पचपद, पचसु ज्ञान अराधि ।
पंचसुचरण चितारचित, पंचकरनरिपुसाधि ॥ १ ॥

चौपाई (१५)

वन्दों श्रीअरहत अधीश । वन्दो स्वयसिद्ध जगदीश ॥
वन्दों आचारज उवझाय । वन्दो साधुपुरुषके पाय ॥ २ ॥
एई पच इष्ट आधार । इनमे देव एक गुरु चार ॥
सिद्ध देव परसिद्ध उदार । गुरु अरहतादिक अनगार ॥ ३ ॥
सिद्ध सोई जस करै न कोइ । भयो कदाच न कवहूं होइ ॥
अखय अखडित अविचलधाम । निर्मल निराकार निरनाम ४
अव गुरु कहो चार परकार । परम निधान धरमधनधार ॥
मरमवत शुभ कर्म सुजान । त्रिभुवनमाहि पुरुप परधान ॥५॥
प्रथम परमगुरु श्रीअरहत । द्वितिय परमगुरु सूरि महत ॥
तृतिय परमगुरु श्रीउवझाय । चौथे परम सुगुरु मुनिराय ॥६॥
परम ज्ञान दर्शनभडार । वाणी खिरै परम सुखकार ॥
परम उदारिक तनधारंत । परम सुगुरु कहिये अरहत ॥ ७ ॥
धर्मध्यान धारें उतकिष्ट । भाषे धर्मदेशना मिष्ट ॥
धर्मनिधान धर्मसों प्रेम । धर्म सुगुरु आचारज एम ॥ ८ ॥
चौदह पूरब ग्यारह अग । पढै मरम जानै सरवंग ॥
परको मर्म कहै समुझाय । यातै परम सुगुरु उवझाय ॥ ९ ॥

षट आवश्य कर्म नित करें। त्रिविधि कर्ममभता परिहरें ॥
विपुल करम साधैं समकिती। परम सुगुरु सामानिक जती१०
पंच सुपद कीजइ चिंतौन। दुरित हरन दुख दारिद दौन ॥
यह जप मुख्य और जप गौन। इस गुण महिमा वरणै कौन ११

दोहा।

महामंत्र ये पंचपद, आराधै जो कोय।
कहत **वनारसिदास** पद, उलट सदाशिव होय ॥ १२ ॥

इति श्रीपचपद विधान.

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम.

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आतमाराम।
वरणों देवी सुमतिके, अष्टोत्तरशत नाम ॥ १ ॥

रोड़क छन्द।

सुमति सबुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता।
शशिवदनी सेमुषी शिवमती धिषणा सीता ॥
सिद्धा संजमवती स्यादवादिनी विनीता।
निरदोषा नीरजा निर्मला जगत अतीता ॥
शीलवती शोभावती, शुचिधर्मा रुचिरीति।
शिवा सुभद्रा शंकरी, मेधा दृढपरतीति ॥ २ ॥

ब्रह्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता।
पदमा पदमावती वीतरागा गुणगीता ॥

शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता।
समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता॥
कल्याणी कमला कुशलि, भवभंजनी भवानि।
लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखखानि॥ ३॥

परमा परमेश्वरी परम पंडिता अनन्ता।
असहाया आमोदवती अभया अघहता॥
ज्ञानपती गुणवती गौमती गौरी गंगा।
लक्ष्मी विद्याधरी आदि सुदरी असंगा॥
चन्द्राभा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि।
चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि॥ ४॥

चिदवदनी चिद्रूप कला वसुमती विचित्रा।
अर्धंगी अक्षरा जगतजननी जगमित्रा॥
अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदका।
दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निकलंका॥
धर्मधरा धीरज धरनि, मोहनाशिनी वाम।
जगत विकाशिनि भगवती, भरमभेदनी नाम॥ ५॥

घत्तानन्द

निपुणानवनीता, वितथवितीता, सुजसा भवसागरतरणी।
निगमा निरवानी, दयानिधानी, यह सुबुद्धिदेवी वरणी॥ ६॥

इति श्रीसुमतिदेविशतक.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते.

वस्तु छन्द.

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान ।
मुख ओंकारधुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ॥
रचि आगम उपदिशै भविक जीव सशय निवारै ॥
सो सत्यारथ शारदा तासु, भक्ति उर आन ।
छन्द भुजंगप्रयातमे, अष्टक कहौ बखान ॥ १ ॥

भुजगप्रयात

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
विशुद्धप्रबुद्धा नमो लोकमाता ॥
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
नमो देविवागेश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला ।
सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला ॥
महामोहविध्वसनी मोक्षदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ३ ॥

अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा ।
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥
चिदानन्द—भूपालकी राजधानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ४ ॥

समाधानरूपा अनूपा अछुद्रा ।
अनेकान्तधा स्यादवादाङ्कमुद्रा ॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी वखानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा ।
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ॥
महापावनी भावना भव्यमानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥

अतीता अजीता सदा निर्विकारा ।
विषैवाटिकाखंडिनी खड्गधारा ॥
पुरापापविक्षेपकर्तृ कृपाणी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥

अगाधा अवाधा निरभ्रा निराशा ।
अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥
निशका निरंका चिदंका भवानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ८ ॥

अशोका मुदेका विवेका विधानी ।
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ॥
समस्तावलोका निरस्तानिदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ९ ॥

वस्तुच्छंद.

जैनवाणी जैनवाणी सुनहि जे जीव ।
जे आगम रुचिधरें जे प्रतीति मन माहि आनहि ।
अवधारहि जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि ॥
जे हितहेतु **बनारसी**, देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहि परम सुख, तज ससार कलेश ॥ १० ॥

इति शारदाष्टक.

अथ नवदुर्गाविधान लिख्यते.

कवित्त.

प्रथमहिं समकितवंत लखि आपापर
परको स्वरूप त्यागी आप गहलेतु है ।
बहुरि विलोक साध्यसाधक अवस्था भेद,
साधक है सिद्धिपदको सुदृष्टि देतु है ॥
अविरतगुणथान आदि छीनमोहअन्त,
नवगुणथान निति साधकको खेतु है ॥
संजम चिहन विना साधक गुपतरूप,
त्यौं त्यो परगट ज्यों ज्यो संजम सुचेतु है ॥ १ ॥
जैसें काहू पुरुषको कारण ऊरध पथ,
कारज स्वरूपी गढ़ भूमिगिरशृंग है ।
तैसें साध्यपद देव केवल पुरुष लिंग,
साधक सुमति देवीरूप तियलिंग है ॥

ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
    व्यवहार भेद देव देवी यह व्यग है ।
ऐसो साध्य साधक स्वरूप सूधो मोखपथ,
    सतनको सत्यारथ मूढ़नको डिंग है ॥ २ ॥

जाको भौनभवकूप मुकुट विवेकरूप,
    अनाचार रासभ आरूढदुति गूझी है ।
जा[illegible] मारथ कलश दूजे,
    [illegible] कति वोहारी विधि वूझी है ।
[illegible] निचार यहै वासी भोग,
    [illegible] तेरसरागसो अरूझी है ॥
[illegible] तला सुमति सूझै सतनको,
    दुरवुद्धि लोगनको रोगरूप सूझी है ॥ ३ ॥

कूपसो निकस जवभूपर उदोत भई,
    तव और ज्योति मुख ऊपर विराजी है ।
भुजा भई चौगुणी शकति भई सौगुणी,
    लजाय गए औगुणी रजायछिति छाजी है ॥

कुंभसो प्रगट्यो नूर, रासभसों भयो सूर,
    सूप भयो छत्रसो वुहारी शस्त्र राजी है ।
ऐपन को रंगसो तो कचनको अंग भयो,
    छत्रपति नामभयो वासी रीति ताजी है ॥ ४ ॥

दोहा ।

जाके परसत परमसुख, दरसत दुख मिट जाहिं ।
यहै सुमति देवी प्रगट, नगर कोट घटमाहिं ॥ ५ ॥

कवित्त ।

यहै बंधबंधकस्वरूप मानवदी भई,
यह है अनंदी चिदानद अनुसरणी ।
यह ध्यान अगनि प्रगट भये ज्वालामुखी,
यहै चडी मोह महियासुर निदरणी ॥
यहै अष्टभुजी अष्टकर्मकी शकति भजै,
यहै कालवचनी उलघै कालकरणी ।
यहै अवला वली विराजै त्रिभुवन राणी,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरणी ॥ ६ ॥
यहै कामनाशिनी कामिक्षा कलिमें कहावै,
यहै ब्रह्मचारिणी कुमारी है अपरनी ।
यह है भगौति यहै दुर्गा दुर्गति जाकी,
यहै छत्रपती पुण्यपापतापहरनी ॥
यहै रामरमणी सहजरूप सीता सती,
यहै आदि सुंदरी विवेकसिहचरनी ।
यहै जगमाता अनुकपारूप देखियत,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ७ ॥

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते.

दोहा ।

काहू दिन काहू समय, करुणाभाव समेत ।
सुगुरु नामनिर्णय कहे, भविक जीव हितहेत ॥ १ ॥
जीव द्विविधि ससारमे, अथिररूप थिररूप ।
अथिर देहधारी अलख, थिर भगवान अनूप ॥ २ ॥

कवित्त (३१ वर्ण)

जो है अविनाशी वस्तु ताको अविनाशी नाम,
[illegible] र निदरणी ॥ [illegible] ।
फूर [illegible] ति भजै,
दोऊ मरै दोऊ जीवै यहै [illegible]करणी ।
अनादि अनंत भगवंतको सुजस [illegible],
भवसिंधु तारण तरण तहकी [illegible] है ।
अवतैर मरै भी धरै जे फिर [illegible],
तिनको सुजस नाम अ[illegible]क है ॥ ३ ॥

दोहा ।

थिर न रहै नर नाम की, जथा कथा जलरेख ।
एते पर मिथ्यामती, ममता करें विशेख ॥ ४ ॥

कवित्त.

जगमें मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव,
भ्रमके प्रवाहमें वहा है आगें वहैगा ।
नाम राखिवेको महारंभ करै दंभ करै,
यों न जानै दुर्गतिमें दुःख कौन सहैगा ॥

बार वार कहै मोह भागवंत धनवंत,
मेरा नाव जगतमें सदाकाल रहैगा।
याही ममतासों गहि आयो है अनंत नाम,
आगें योनियोनिमें अनत नाम गहैगा ॥ ५ ॥

दोहा।

वोल उठें चित चौकि नर, सुनत नामकी हांक।
वहै शब्द सतगुरु कहें, है भ्रमकूप धमांक ॥ ६ ॥

कवित्त।

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम,
एक एक नाम देखिये अनेक जनमें।
वा जनम और या जनम और आगें और,
फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें ॥
कोई कलपना कर जोई नाम धरै जाको,
सोई जीव सोई नाम मानै तिहूं पनमें।
ऐसो विरतंत लख सतसों सुगुरु कहै,
तेरो नाम भ्रम तू विचार देख मनमें ॥ ७ ॥

दोहा.

नाम अनेक समीप तुव, अंग अंग सब ठौर।
जासों तू अपनो कहै, सो भ्रमरूपी और ॥ ८ ॥

कवित्त।

केश शीस भाल भौंह वरुणी पलक नैन,
गोलक कपोल गड नासा मुख श्रौन है।

अधर दसन ओंठ रसना मसूढ़ा तालु,
घंटिका चिबुक कठ कथा उर मौन है ॥
कांख कटि भुजा कर नाभि कुच पीठ पेट,
अंगुली हथेली नख जघाथल मौन है ।
नितम्ब चरण रोम एते नाम अंगनके,
तामें तू विचार नर तेरा नाम कौन है ॥ ९ ॥

दोहा ।

नाम रूप नहि जीवको, नहि पुद्गलको पिंड ।
नहि स्वभाव संजोगको, प्रगट भरमको भिड ॥ १० ॥
यह सुनामनिर्णयकथा, कही सुगुरु संछेप ।
जे समुझहि जे सरदहें, ते नीरस निरलेप ॥ ११ .

इति श्रीनामनिर्णयविधान.

अथ नवरत्नकवित्त लिख्यते.

धन्वंतरि[१] छपणक[२] अमर[३], घटखर्पर[४] वैताल[५] ।
वररुचि[६] शंकु[७] वराहमिह[८] (र), कालिदास[९] नव लाल ॥ १ ॥
विमल[१]चित्त जाचक[२] शिथिल[३], मूढ[४] तपस्वी[५] प्रात[६] ।
कृपण[७]बुद्धि तिर्य[८]नरपती, ज्ञान[९]वत नव वात ॥ २ ॥

छप्पय ।

विमल चित्तकर मित्त, शत्रु छलबल वश किज्जय ।
प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तहि धन दिज्जय ॥

युवति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय ।
महाराज गुणकथन, वंधु समरस सनमानिय ॥
गुरुनमन शीस रससो रसिक, विद्या बल बुधि मन हरिय ।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय ॥२

जाचक लघुपद लहै, काम आतुर कलक पद ।
लोभी अपजस लहै, असनलालची लहै गंद ॥
उन्नत लहै निपात, दुष्ट परदोष लहै तकि ।
[illegible] य जु रहै चकि ॥
[illegible] वहु सकट सहै ।
[illegible] जग अप्रियता लहै ॥ ४ ॥

[illegible] चूंटै जलसीचै ।
[illegible] ऊरध खींचै ॥
ज मलीन [illegible] तिनहि सुधारइ ।
कूडा कंटक गलित पत्र, वाहिर चुन डारइ ॥
लघु वृद्धि करइ भेदै जुगल, वाड़ि सँवारै फल भखै ।
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै सपति अखै ॥ ५॥

मूढ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ नर ।
नरनायक आलसी, विपुल धनवत कृपण कर ॥
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अधरम रत ।
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेगहत ॥

---

१ रोग.

रोगी दारिद्रिपीड़ित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित ।
एते विडम्ब संसारमें, इन सब कहँ धिक्कार नित ॥ ६ ॥

प्रात धर्म चिन्तवै, सहजहित मन्त्र विचारै ।
चर[1] चलाय चहुं ओर, देशपुर प्रजा सम्हारै ॥
राग द्वेष हिय गोप, वचन अम्रत सम बोलै ।
समय ठौर पहिचान, कठिन कोमल गुण खोलै ॥
निज जतन करै संचय रतन, न्यायमित्र अरि सम गनै ।
रणमें निशंक है संचरै, सो नरेन्द्र रिपुदल हनै ॥ ७ ॥

कृपण बुद्धि यश हनें, कोप दृढ़ प्रीति विछोरै ।
दंभ विध्वंसै सत्य, क्षुधा मर्यादा तोरै ॥
कुव्यसन धन छय करै, विपति थिरता पद टारइ ।
मोह मरोरै ज्ञान, विषय शुभ ध्यान विडारइ ॥
अभिमान विछेदै विनय गुण, पिशुनकर्म गुरुता गिलै ।
कुकलाअभ्यास नाशहि सुपथ, दारिदसों आदर टलै ॥ ८ ॥

तियबल योवन समय, साधुबल शिवपथ सवर ।
नृपबल तेज प्रताप, दुष्टबल वचन अडम्बर ।
निर्धनबल सुमिलाप, दानिसेवा याचकबल ।
वाणिजबल व्यवहार, ज्ञानबल वरविवेकदल ॥
विद्या विनय उदारबल, गुणसमूह प्रभुबल दरव ।
परिवार स्वबल सुविचार कर, होहि एक समता सरब ॥ ९ ॥

---

1 जासूद

नरपतिमंडन नीति, पुरुपमंडन मनधीरज ।
पंडितमंडन विनय, तालसरमडन नीरज ॥
कुलतियमडन लाज, वचनमडन प्रसन्नमुख ।
मतिमडन कवि धर्म, साधुमडन समाधिसुख ॥
भुजबलसमर्थ मंडन क्षमा, गृहपति मंडन विपुल धन ।
मंडन सिद्धान्त रुचि सन्त कहँ, कायामडन लवंन[1] घन ॥१०॥

ज्ञानवन्त हठ गहै, निधन परिवार वढ़ावै ।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै ॥
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै ।
पडित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमानै ॥
कुलवंत पुरुप कुलविधितजै, वधु न मानै वंधुहित ।
सन्यासधार धन सग्रहै, ए जगमें मूरख विदित ॥ ११ ॥

इति श्रीनवरत्न कवित्त

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

दोहा ।

जलधारा चन्दन पुहुप[2], अक्षत अरु नैवेद ।
दीप धूप फल अर्घयुत, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥
जल—मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह स्वभाव जलमाहि ।
जलसों जिनपद पूजतें, कृतकलङ्क[3] मिट जाहि ॥ २ ॥

---

१ लावण्यता   २ पुष्प   ३ किये हुए पाप

चन्दन—तप्तवस्तु शीतल करै, चन्दन शीतल आप।
चन्दनसों जिन पूजते, मिटै मोहसताप ॥ ३ ॥
पुष्प—पुष्प चापधर[1] पुष्पशर, धारै मनमथ वीर।
यातें पूजा पुष्पकी, हरै मदनशरपीर ॥ ४ ॥
अक्षत—तन्दुल धवल पवित्र अति, नाम सु अक्षत तास।
अक्षतसों जिन पूजतें, अक्षय[2] गुणपरकास ॥ ५ ॥
नैवेद्य—परम अन्न नैवेद्य विधि, क्षुधाहरण तन पोष।
जिनपूजत नैवेद्यसों, मिटहिं क्षुधादिक दोष ॥ ६ ॥
दीपक—आपा पर देखै सकल, निशिमें दीपक होत।
दीपकसों जिन पूजते, निर्मलज्ञानउद्योत ॥ ७ ॥
धूप—पावक दहै सुगधिको, धूप कहावै सोय।
खेवत धूप जिनेशको, कर्म दहन छल होय ॥ ८ ॥
फल—जो जैसी करनी करै, सो तैसा फल लेय।
फल पूजा जिनदेवकी, निश्चय शिवफल देय ॥ ९ ॥
अर्घ—यह जिन पूजा अष्टविधि, कीजे कर शुचि अंग।
प्रतिपूजा जलधारसों, दीजे अर्घ अभंग ॥ १० ॥

इति अष्टप्रकार जिनपूजन

अथ दशदानविधान लिख्यते.

गो सुवर्ण दासी भवन, गज तुरंग परधान।
कुलकलत्र तिल भूमि रथ, ये पुनीत दशदान ॥ १ ॥

---

१ धनुष २ जो कभी क्षय न हो.

अब इनको विवरण कहूं, भावितरूप बखानि ।
अलखरीति अनुभवकथा, जो समझै सो दानि ॥ २ ॥

चौपाई ।

गो कहिये इन्द्री अभिधाना । वछरा उमँग भोग पय पाना ॥
जो इसके रसमाहि न राचा । सो सवच्छ गोदानी साँचा ॥३॥
कनक सुरग सु अक्षर वानी । तीनों शब्द सुवर्ण कहानी ॥
ज्यों त्यागै तीनहुंकी साता । सो कहिये सुवरणको दाता ॥४॥
पराधीन पररूप गरासी । यों दुर्बुद्धि कहावै दासी ॥
ताकी रीति तजै जब ज्ञाता । तब दासीदातार विख्याता ॥ ५ ॥
तनमन्दिर चेतन घरवासी । ज्ञानदृष्टि घट अन्तरभासी ॥
समझै यह पर है गुण मेरा । मन्दिरदान होहि तिहि बेरा ॥ ६ ॥
अष्ट महामद धुरके साथी । ए कुकर्म कुदशाके हाथी ॥
इनको त्याग करै जो कोई । गजदातार कहावै सोई ॥ ७ ॥
मनतुरग चढ़ ज्ञानी दौरइ । लखै तुरग औरमै औरइ ॥
निज दृगको निजरूप गहावै । सो तुरगको दान कहावै ॥ ८ ॥
अविनाशी कुलके गुण गावै । कुल कलित्र सद्बुद्धि कहावै ॥
बुद्धि अतीत धारणा फैली । वहै कलत्रदानकी सैली ॥ ९ ॥
ब्रह्मविलास तेल खलि माया । मिश्रपिंड तिल नाम कहाया ॥
पिंडरूप गहि द्विविधा मानी । द्विविधा तजै सोइ तिलदानी ॥ १० ॥
जो व्यवहार अवस्था होई । अन्तरभूमि कहावै सोई ॥
तज व्यवहार जो निश्चय मानै । भूमिदानकी विधि सो जानै ॥

शुकल ध्यान रथ चढ़ै सयाना । मुक्तिपन्थको करै पयाना ॥
रहै अजोग जोगसों यागी । वहै महारथ रथको त्यागी ॥ १२ ॥

ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवशासनमूल ।
ज्ञानवन्त सूक्षम गहै, मूढ विचारै थूल ॥ १३ ॥
ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान ।
रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन ॥१४॥

इति दशदानविधान.

अथ दश बोल लिख्यते.

चौपाई.

जिनकी भांति कहों समुझाई । जिनपद कहा सुनो रे भाई ॥
धर्म स्वरूप कहावै ऐसा । सो जिनधर्म वखानौ जैसा ॥ १ ॥
आगम कहो जिनागम साचा । वरणों वचन और जिन वाचा॥
मत भापहुँ जिनमत समुझावहुं । ये दश बोल जथारथ गावहुँ॥२

जिन-दोहा ।

सहज वन्धवंदक रहित, सहित अनन्तचतुष्ट ।
जोगी जोगअतीत मुनि, सो जिन आतम सुष्ट ॥ ३ ॥

जिनपद ।

विधि निषेध जानै नहीं, जहँ अखंड रस पान ।
विमल अवस्था जो धरै, सो जिनपद परमान ॥ ४ ॥

धर्म ।

लहिये वस्तु अवस्तुमे, यथा अवस्थित जोय ।
जो स्वभाव जामै सधै, धर्म कहावै सोय ॥ ५ ॥

जिनधर्म ।

पुरुष प्रमाण परंपरा, वचन बीज विस्तार ।
धरै अर्थकी अगमता, यह आगमकी ढार ॥ ६ ॥

जिनआगम ।

जहां द्रव्य षट तत्त्व नव, लोकालोक विचार ।
विवरण करै अनत नय, सो जिन आगम सार ॥ ७ ॥

वचन ।

कहुं अक्षर मुद्रा धरै, कहू अनक्षर धार ।
मृषा [illegible] अनुभय उभय, वचन चार परकार ॥ ८ ॥

जिनवचन ।

जा[illegible]शी निरक्षगी, महिमा अक्षर रूप ।
स्यादर्वादजुत सत्यमय, सो जिनवचन अनूप ॥ ९ ॥

मत ।

थापै निज मतकी क्रिया, निन्दै परमतरीति ।
कुलाचारसो बँधि रहै, यह मतकी परतीति ॥ १० ॥

जिनमत ।

अर्हत् देव सुसाधु गुरु, दया धर्म जहँ होय ।
केवल भाषित रीति जहँ, कहिये जिनमत सोय ॥ ११ ॥

इति दशबोल.

अथ पहेली लिख्यते.

कहरानामाकी चाल.

कुमति सुमति दोऊ व्रजवनिता, दोउको कन्त अवाची ।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासो राची ॥१॥
यह सुबुद्धि आपा परिपूरण, आपापर पहिचानै ।
लख लालनकी चाल चपलता, सौतसाल उर आनै ॥ २ ॥
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली ।
काहू समय पाय सखियनसों, कहै पुनीत [illegible] ॥ ३ ॥
मोरे आगन विरवा उलह्यो, विना पवन झकोरे भ[illegible]
ऊंचि डाल वड पात सघनवॉ, छाँह स[illegible] जैसा ॥ ४ ॥
वोलै सखी वात मै समुझी, कहूं अर्थ अव जो है ।
तोरे घर अन्तरघटनायक, अदभुत विरवा सो है ॥ ५ ॥
ऊंची डाल चेतना उद्धत, वड़े पात गुण भारी ।
ममता वात गात नहिं परसै, छकनि छाह छत नारी ॥६॥
उदय स्वभाव पाय पद चचल, यातै इत उत डोलै ।
कवहूँ घर कवहूं घर वाहिर, सहज सरूप कलोलै ॥ ७ ॥
कवहूं निज संपति आकर्षै, कवहू परसै माया ।
जव तनको त्योंनार करै तव, परै सौति पर छाया ॥ ८ ॥

---

१ इसको कवियों ने सार छन्द माना है, नरेन्द्र (जोगीरासा) की राह पर भी यह चलता है

तोरे हिये डाह यो आवै, हो कुलीन वह चेरी ।
कहै सखी सुन दीनदयाली, यहै हियाली तेरी ॥ ९ ॥

दोहा.

हिय आगनमें प्रेम तरु, सुरति डार गुणपात ।
मगनरूप है लहलहै, विना द्वन्ददुखवात ॥ १० ॥
भरमभाव ग्रीपम भयो, सरस भूमि चितमाहिं ।
देश दशा इक सम भई, यहै सौतघर छाहि ॥ ११ ॥

हेली

[illegible] श्नो [illegible] दोहा लिख्यते.

[illegible] है, कहाँ आवै कहाँ जाय ।
[illegible] सै, कौन ठौर ठहराय ॥ १ ॥
[illegible] है. भ्रममहिं आवै जाय ।
[illegible] भ्रममाहिं ठहराय ॥ २ ॥
प्रश्न–जाको खोजत जगतजन, कर कर नानाभेष ।
ताहि बतावहु, है कहा जाको नाम अलेष ॥ ३ ॥
उत्तर–जग शोधत कछु औरको, वह तो और न होय ।
वह अलेख निरभेष मुनि, खोजन हारा सोय ॥ ४ ॥
प्रश्न–उपजै विनसै थिररहै, वह अविनाशी नाम ।
भेदी तुम भारी भला!, मोहि बतावहु ठाम ॥ ५ ॥
उत्तर–उपजै विनसै रूप जड, वह चिद्रूप अखंड ।
जोग जुगति जगमें लसै, वसै पिण्ड ब्रहमंड ॥ ६ ॥

प्रश्न–शब्द अगोचर वस्तु है, कछू कहौ अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहौ सुजान ॥ ७ ॥
उत्तर–शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहि पुनि सोय।
स्यादवाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥
प्रश्न–वह अरूप है रूपमें, दुरिकै कियो दुराव।
जैसें पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव ॥ ९ ॥
उत्तर–हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहि।
है अनादि ज्यों खानिमे, कंचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

इति प्रश्नोत्तर दोहा

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते.

नमत शीस गोविन्दसों, उद्धव पूछत एम।
कै विधि यम कै विधि नियम, कहो यथावत जेम ॥ १ ॥
समता कैसी दम कहा, कहा तितिक्षा भाव
धीरज दान जु तप कहा, कहा सुभट विवसाव ॥ २ ॥
कहा सत्यरति है कहा, शौच त्याग धन इष्ट।
यज्ञ दक्षिणा वलि कहा, कहा दया उतकिष्ट ॥ ३ ॥
कहा लाभ विद्या कहा, लज्जा लक्ष्मी गूढ।
सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पडित को मूढ ॥ ४ ॥
पंथ कुपंथ कहो कहा, स्वर्ग नरक चितौन।
को बंधव अरु गृह कहा, धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥

कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहि।
ये सब प्रश्न विचार मन, कही मधुप हरिपाहि ॥६॥
नारायण उत्तर कहै, सुन उद्धव मन लाय।
द्वादश यम द्वादश नियम, कहू तोहि समुझाय ॥७॥
दया सत्य थिरता क्षमा, अभय अचौर्य सुमौन।
लाज असग्रह अस्तिमत, संग त्याग तियवौन ॥ ८ ॥
हरि पूजा सतोष गुरु, भक्ति होम उपकार।
जप तप तीरथ द्विविधि शुचि, श्रद्धा अतिथि अहार९

सोरठा।

कहे भेद चौवीस, भिन्न २ यम नियमके।
रहे प्रश्न चौवीस, तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १० ॥

समता ज्ञान सुधारस पीजे। दम इन्द्रिनको निग्रह कीजे ॥
सकटसहन तितिक्षा वीरज। रसना मदन जीतवो धीरज॥११॥
दान अभय जहँ दंड न दीजे। तप कामनानिरोध कहीजे ॥
अन्तरविजयसूरता साची। सत्यब्रह्म दर्शन निरवाची ॥ १२ ॥
रतु अनक्षरी ध्वनि जहँ होई। करम अभाव शौचविध सोई।
त्याग परम सन्यास विधाना। परम धरम धन इष्ट निधाना १३
ध्रुव धारणा यज्ञकी करनी। हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥
प्राणायाम वोधबल अक्षा। दया अशेष जन्तुकी रक्षा ॥ १४॥
लाभ भावशुभगतिपरकाशा। विद्या सो जु अविद्यानाशा ॥
लाज कुकर्म गिलानि कहावै। लक्ष्मी नाम निराशा पावै १५

सुखदुखत्यागबुद्धि सुखरेखा। दुख विषयारस भोगविशेखा ॥
पंडित बध मोक्ष जो जानै। मूरख देहादिक निज मानै ॥१६॥
मारग श्रीमुख आगम भाषा। उतपथ कुधी कुमन अभिलाषा॥
सुकृतिवासना स्वर्गविलासा। दुरित उछाह नर्क गतिवासा॥१७॥
बंधव हितू स्वर्ग सुख दाता। गृह मानुषी शरीर विख्याता॥
धनी सो जु गुणरत्नभंडारी। सदा दरिद्री तृष्णाधारी॥ १८ ॥
कृपण सो जु विषयारसलोभी। ईश्वर त्रिगुणातीत अछोभी॥
बहुत कहां लगि कहों विचक्षण। गुण अरु दोष [illegible] लक्षण १९

दोहा।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहावै सो [illegible]
गुण अरु दोष जहां नहीं, तहॉ गुन परग[illegible] ॥२०॥
इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धवहरिसवाद।
भाषा कहत बनारसी, भानुसुगुरुपरसाद [illegible] ॥

इति प्रश्नोत्तरमालिका.

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते.

दोहा।

चेतनलक्षण नियतनय, सबै जीव इकसार।
मूढ़ विचक्षण परमसो, त्रिविधि रूप व्यव[illegible] १ ॥
मूढ़ आतमा एक विधि, त्रिविधि विचक्षण जा[illegible]
द्विविधि भाव परमातमा, षट्विधि जीव ब[illegible] ॥२॥

विधि निषेध जानै नहीं, हित अनहित नहिं सूझ।
विषयमगन तन लीनता, यहै मूढकी वूझ ॥ ३ ॥
जो जिनभाषित सरदहै, भ्रम संशय सब खोय।
समकितवत असंजमी, अधम विचक्षण सोय ॥ ४ ॥
वैरागी त्यागी दमी, स्वपर विवेकी होय।
देशसंजमी संजमी, मध्यम पंडित दोय ॥ ५ ॥
अप्रमाद गुण थानसो, क्षीणमोहलो ठौर।
श्रेणिधारणा जो धरै, सो पंडित शिरमौर ॥ ६ ॥
जो केवल पद आचरै, चढि सयोगिगुणथान।
सो जगम परमातमा, भववासी भगवान ॥ ७ ॥
जिहिपदमें सवपद मगन, ज्यो जलमें जल वुन्द।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरदुन्द ॥ ८ ॥

इति अवस्थाष्टक

अथ षट्दर्शनाष्टक लिख्यते.

शिवमत बौद्ध रु वेदमत, नैयायिक मतदक्ष।
मीमांसकमत जैनमत, षटदर्शन परतक्ष ॥ १ ॥

शैवमत।

देव रुद्र जोगी सुगुरु, आगम शिवमुख भाख।
गनै कालपरणति धरम, यह शिवमतकी साख ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाधड़ी, जगत वस्तु छिन औध ।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत वौध ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेप ।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेप ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुप, गुरु सन्यासी होय ।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायि [illegible] सोय ॥ ५ ॥

मीमांसकमत ।

देव अलख दरवेश गुरु, मानें कर[illegible]थ ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमा[illegible]ा ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थंकर गुरु यती, आगम वे[illegible]नेन ।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै[illegible]न ॥ ७ ॥
ए छहमत है भेदसों, भये छूट व[illegible]ार ।
प्रतिषोड़स पाखंडसों, दशा छयान[illegible]ार ॥ ८ ॥

इति पट्दर्शनाष्टक

अथ चातुर्वर्ण लिख्यते ।

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्म [illegible] ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो[illegible]रवीन ॥ १ ॥

जो निश्चय गुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार ।
जीतै सेना मोहकी, सो क्षत्री भुजभार ॥ २ ॥
जो जानै व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय ।
शुभ करणीसों रम रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ ३ ॥
जो मिथ्यामत आदरै, रागद्वेषकी खान ।
विनविवेक करणी करै, शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
चार भेद करतूतिसों, ऊंच नीच कुलनाम ।
और वर्णसंकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्ण

अथ अजितनाथजीके छंद.

गोयमगणहरपय नमो, सुमरि सुगुरु रविचन्द ।
सरसुति देवि प्रसादलहि, गाऊ अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द

श्रीअवध्यापुर देश सुहायाजी ।
राजै तह जितशत्रू रायाजी ॥
राया सुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तसु घरै ।
तसु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सूचित अवतरै ॥
तव जन्म उत्सव करहि वासव, मधुर धुनि गावहिं सुरी ।
आनन्द त्रिभुवन जन बनारसि, धन्य श्रीअवध्यापुरी ॥२॥
महियल राजिउ अजित जिनंदाजी ।
गज वर लच्छन निर्मल चंदाजी ॥

चन्दा उदित इक्ष्वाकु वशहि, कुमति तिमर विनासिये ।
सय साठ चार सुचाप परिमित, देह कंचन भासिये ॥
दिढ़ पालिराज सु गहिय संजम, मुकति पथ रथ साजियो ।
उत्पन्न केवल सुख बनारसि, अजित महियल राजियो ॥ ३॥

गढ़ योजनमहि रचें सुदेवाजी ।
अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी ॥

सेवहिं अशोक प्रसून [illegible] तहँ गाजही ।
चामर सिंहासन प्रभा [illegible] ॥
नवदेव दुंदभि सभा [illegible]
सुर असुर किन्नरगण [illegible] ।

लक्ष वहन्त [illegible]
भोग सु जिनवर [illegible]

शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो ।
वरणे शिपैराबाद मंडन, भविक जनमनरंजनो ॥
सोलैसै सत्तर समय आश्वनि, मास सितपख बारसी ।
विनवत दुहू कर जोर सेवक, सिरीमाल बनारसि ॥ ५ ॥

इति श्रीअजित नाथके छन्द

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति.

वाकीमहम्मद खानके चंढवाकी ढाल ।

सहि एरी! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नाहिं घरे ।
सहि एरी! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे ॥
चन्द जिवां मेरा वल्लभ सोहै, नैन चकोरहिं सुक्ख करै ।
जगज्योति सुहाई कीरतिछाई, बहु दुख तिमरवितान हरै ॥
सहु कालविनानी अम्रतवानी, अरु मृगका लाछन कहिए ।
श्रीशान्ति जिनेशनरोत्तमको प्रभु, आज मिला मेरी सहिए! १

सहि एरी! तू परम सयानी, सुरज्ञानी रानी राजत्रिया ।
सहि एरी! तू अति सुकुमारी, वरन्यारी प्यारी प्राणप्रिया ॥
प्राणप्रिया लखि रूप अचंभा, रति रंभा मन लाज रही ।
कलधौत कुरग कौल करि केसरि, ये सरि तोहि न होहि कहीं ॥
अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहि लहिये ।
मिलि या तुझ कन्त नरोत्तमको प्रभु, धन्य सयानी सहिये! २

दोहा ।

विश्वसेन कुलकमलरवि, अचिरा उर अवतार ।
धनुप सु चालिस कनकतन, वन्दहु शान्ति कुमार ॥ ३ ॥

त्रिभगी छन्द (१०, ८, ८, ६)

गजपुर अवतारं, शान्ति कुमार, शिवदातारं, सुखकारं ।
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमारं ॥

---

१ सखि! ये, २ कमल, ३ समान, ४ कामदेवके जीतनेवाले

कृतअरिसंहारं, महिमापार, विगतविकार, जगसार ।
परहितससारं, गुणविस्तार, जगनिस्तार, शिवधारं ॥ ४ ॥

सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश ।
तिनिगणवन्दित चरणजुग, वन्दहु शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥

श्रीशान्तिजिनेश, जगतमहेश, विगतकलेशं, भद्रेश ।
भविकमलदिनेश, मतिमहिशेशं [illegible]महेशं, परमेशं ॥
जनकुमुदनिशेश, रुचिरादेश, [illegible]केशं ।
भवजलपोतेशं[1] महिमनगेशं, निरुपम[illegible] ॥ ६ ॥

करत अमरनरमधुप जसु, वचन सुधारसपान ।
वन्दहुं शान्तिजिनेशवर, वदन निशेश सम[illegible]

वररूप अमानं, अरितमभानं[illegible], [illegible]तमानं ।
गुणनिकरस्थान, मुक्तिवि[illegible]कनिदानं, सध्यान ॥
भवतारनयानं, कृपानिधान, जगतप्रधान, मतिमान ।
प्रगटितकल्यानं, वरमहिमानं, शिवपददान, मृगजानं ॥८॥

भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल ।
वन्दहुं शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ९ ॥

भंजितभवजाल, जितकलिकाल, कीर्तिविशालं, जनपालं ।
गतिविजितमराल, अरिकुलकाल, वचनरसाल, वरभाल ॥
मुनिजलजमृणाल, भवभयशालं, शिवउरमाल, सुकुमालं ।
भवितरुपतमालं, त्रिभुवनपालं, नयनविशाल, गुणमालं ॥१०॥

---

१ जहाज.

कलश—छप्पय ।

हीर हिमालय हंस, कुन्द शरदभ्र निशाकर ।
कीर्तिकान्तिविस्तार, सार गुणगणरत्नाकर ॥
दु:कृति संतति धाम, कामविद्वेषिविदारण ।
मानमतंगजसिंह, मोहतरुदलन सुवारण ॥
श्रीशान्तिदेव जय जितमदन, वानारसि वन्दत चरण ।
भवतापहारिहिमकर वदन, शान्तिदेव जय जितकरण ॥ ११ ॥

इति श्रीशान्तिनाथ जिनस्तुति

अथ नवसेनाविधान लिख्यते.

वेसरी छन्द ।

प्रथमहि पत्ति नाम दल लेन । तासों त्रिगुण कहावै सेन ॥
सेन त्रिगुण सेनामुख ठीक । सेनामुखसो त्रिगुण अनीक ॥१॥
कीजे त्रिगुण वाहिनी सोइ । वाहनि त्रिगुण चमूदल होइ ॥
त्रिगुण वरूथनि दल परचड । तासों त्रिगुण कहावै दड ॥ २ ॥

दोहा ।

दड कटक दशगुण करहु, तव अछौहिणी जान ।
हयगय रथ पायक सहित, ये तव कटक वखान ॥ ३ ॥

पत्ति ।

एक मतंगज एक रथ, तीन तुरग प्रधान ।
सुभट पच पायक सहित, पत्ति कटक परवान ॥ ४ ॥

सेना । चौपाई.

नव तुरंग रथ तीन सुभायक । हस्ती तीन पचदश पायक ।
वल चतुरंग और नहिं लेन । यह परवान कहावै सेन ॥ ५ ॥

सेनामुख ।

सत्तादस घोड़े नव हाथी । पैंतालिस पायकनर साथी ।
नवरथ सहित कटक जो होई । दल सेनामुख कहिये सोई ६

अनीकनी ।

मत्त मतङ्ग सात अरु [illegible]
अनुग एकसौ पैं[illegible] [illegible]॥७॥

वाहिनी । आभानक छन्द ।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने ,
इक्यासी परमान महारथ राजने ॥
तीन अधिक चालीस तुरगम [illegible]
अनुग चारसौपच वा[illegible] ॥ ८ ॥

चमू । [illegible] ।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल ।
है सातसो उन्तीस परमित, जातिवन्त रसाल ॥
जँह सुभट वारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पंच ।
सो चमूदल चतुरंग शोभित, सहित नर तिरजंच ॥ ९ ॥

विरूथिनी ।

रथ सातसै उनतीस कुंजर, सातसै उनतीस ।
हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥

छत्तीससौ वलवंत पायक, अधिक पैतालीस ।
सो है वरूथनि कटक दुर्द्धर, चटक सुन्दर दीस ॥ १० ॥

दंड–रोला ।

कुंजर दोय हजार एक सौ असी सात गनि ।
जेते गज तेते प्रमान रथराज रहे वनि ॥
नवसौ पैंतिस दशहजार पायक प्रचंड वल ।
पैसठसै इकसत्त[illegible]ग यह दंड नाम दल ॥ ११ ॥

[illegible]क्षौहिणी–छप्पय ।

[illegible] आठ सौ सत्तर गज्जहिं ।
[illegible] आठ सौ सत्तर सज्जहि ॥
[illegible]जार नर सुभट सुभायक ।
[illegible]धिक पचास सुपायक ॥
सोहत तुरग पैसठ सहस, छसौ अधिक दश और लिय ।
इहिविधि अभंग चतुरग दल, अक्षौहिणी प्रमाण किय ॥१२॥

इति नवसेना विधान

अथ नाटकसमयसारसिद्धान्तके पाठान्तर कलशोंका भाषानुवाद.

मनहर ।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मै सदीव एक,
दूसरों न और मै ही करता करमको ।

अथ मिथ्यामतवाणी.

मनहर।

नारायण देवको कहैं कि परनारी रत,
  ब्रह्माको कहै कि इन कन्या निज वरी है।
सिद्धको कहैं कि फिर फिर अवतार धरै,
  शंकरको कहे याकी मारी सृष्टि मरी है।
अचला कहावै भूमि सो कहे पताल गई,
  अनन्त वाराहरूप धरिके उद्धरी है।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढनके मनमानी,
  पा"की कहानी दुखदानी दोषभरी है॥ १॥
संतान उपजै नर देवके सजोगसेती,
  कनककी लका कहैं अगनिसों जरी है।
शास्वतो सुमेरु सो उखारि कहैं मथ्यो सिन्धु,
  इन्द्रको कहत गौतमकी नारि धरी है॥
भीम डारे हाथी ते अकाशमें फिरै सदीव,
  वायस भुशुंड अविनाशी काया करी है।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढनके मनमानी,
  पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है॥ २॥
मैलकी वनाई मुद्रा सो कहैं गणेश भयो,
  सरिताको कहै सूरजसों अवतरी है।

द्रोपदी सतीको कहें याके पंच भरतार,
कुन्तीहूको कहें पांच वार व्यभिचरी है ॥
रामसे विवेकीको कहें मुगध अवतार,
डाभको सँवारो सुत नाम कुशहरी है ।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढनके मनमानी,
पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है ॥ ३ ॥

गाथा ।

कुग्गहगहगहियाण मूढ़ो जो देइ धम्मउवएसो ।
सो चम्मासी कुक्कर वयणमि खोइ कप्पूरं ॥ ४ ॥

इति मिथ्यामतवाणी.

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

मनहर ।

पूरब कि पश्चिम हो उत्तर कि दक्षिण हो,
दिशि हो कि विदिश कहउ तहां धाइये ।
पढ़िये पढाइये कि गढ़िये गढाइये कि,
नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥
न्हाये बिन खाइये कि न्हायकर खाइये कि,
खाय कर न्हाइये कि न्हाइये न खाइये ।
जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,
जिहि विधि जाने जाहु सो विधि बताइये ॥ १ ॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगतकी मरजाद,
पढ़िये शवद गढ़िये सु जड़ साज है।
नाचिये सुचित्त चपलाय गाइये सुधुनि,
न्हाइये सुजन शुचि खाइये सुनाज है॥
परको सजोग सुतो योग विषै स्वाद भोग,
दीजे लीजे मायासो तो भरमको काज है।
इनतें अतीत कोऊ चेतनको पुंज तोमें,
ताके रूप जानवेको जानवो इलाज है॥ २॥
लोभवन्त मानुष जो औगुण अनन्त तामें,
जाके हिये दुष्टता सो पापी परधीन है।
जाके मुख सत्यवानी सोई तपको निधानी,
जाकी मनसा पवित्र सो तीरथथान है॥
जामै सज्जनकी रीति ताकी सवहीसों प्रीति,
जाकी भली महिमा सो आभरणवान है।
जामे है सुविद्या सिद्धि ताही के अटूटऋद्धि,
जाको अपजस सो तो मृतक समान है॥ ३॥
कंचनभंडार पाय रंच न मगन हूजे,
पाय नवयोवना न हूजे जोवनारसी* ।

---

* घ पुस्तकमे वीचके दो पाद ऐसे है—
' ऐसी असिधारा कालपञ्चमके वीचपडी,
धारा जिनीकूप वीच पडी जु वनारसी।

काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
कामिनी कनक मुद्रा दुहुको बनारसी ॥
दोऊ विनाशी सदीव तूहै अविनाशीजीव,
या जगत कूपबीच ये ही डोवनारसी ।
इनको तू संगत्याग कूपसों निकसि भाग,
प्राणी मेरे कहे लाग कहत **बनारसी** ॥ ४ ॥

(पादान्तयमक).

जीवके बधैया वामविद्याके सधैया दावा,
नलके दधैया वन आखेटक करमी ।
जुआरी लबार परधनके हरनहार,
चौरीके करनहार दारीके अशरमी ॥
मांसके भखैया सुरापानके चखैया,
परवधूके लखैया जिनके हिये न नरमी ।
रोषके गहैया परदोषके कहैया येते,
पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥ ५ ॥

मत्तगयन्द ।

सम्यक ज्ञान नही उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनावें ।
भौन तजें वनवास गहें सुख, मौन रहें तपसों तन जावें ॥
जोग अजोग कछू न विचारत, मूरख लोगनको भरमावें ।
फैल करें बहु जैन कथा कहि, जैन विना नर जैन कहावें ॥ ६॥

भाईबंधु दारासुत कुटुबके लोक सब,
इनके ममत्वको तू त्यागरे बनारसी ।

धीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी।
भाव कुटुंब सदा जिनके ढिग, यो मुनिको कहिये गृहवासी॥७॥

मनहर।

मानुप जनम लह्यो सम्यक दरश गह्यो,
अजहूं विषै विलास त्याग मन बावरे।
संपति विपति आये हरप विषाद छोड़,
ताही ओर पीठ ओट जैसी बहे बावरे॥
भौथिति निकट आई समता सुथाह पाई,
गयो है निघटि जल मिथ्यात डुबावरे।
छूटैगो करम फास छूटैगो जगत वास,
केवल उदै समीप आयो परेवा वरे॥ ८॥

(पादान्तयमक)

जामें सदा उतपात रोगनसो छीजै गात,
कछू न उपाय छिन छिन आयु खपनो।
कीजे बहु पाप औ नरक दुख चिन्ता व्याप,
आपदा कलापमे विलाप ताप तपनो॥
जामें परिगहको विपाद मिथ्या बकवाद,
विषैभोग सुखको सवाद जैसो सपनो।
ऐसो है जगतवास जैसो चपला विलास,
तामें तूं मगन भयो त्याग धर्म अपनो॥ ९॥

मत्तगयद ।

पुण्य सँजोग जुरे रथ पायक, माते मतग तुरंग तबेले ।
मान विभौ अँग यो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाय करी थिति पूरण, अंत चले उठ आप अकेले ।
हारि हमालकी पोटसी डारिके, और दिवारकी ओट व्है खेले१०

छप्पय व्है.

धान यान मिष्टान, मोम मादक नवनिज्जै ।
लवण हिंगु घृत तैल, वनिजकारण नहि लिज्जै ॥
पशुभाड़ा पशुवणिज, शस्त्र विक्रय न करिज्जै ।
जहां निरन्तर अग्नि करम, सो वणिज न किज्जै ॥
मधु नील लाख विष वणिज तज, कूप तलाव न सोखिये ।
लहिये न धरम गृह वासवस, हिंसक जीव न पोखिये ॥११॥

मुकताको स्वामी चन्द मूंगानाथ महीनन्द
गोमेदक राजा राहु लीलापति शनी है ।
केतु लहसुनी सुरपुष्प राग देव गुरु,
पन्नाको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है ॥
याही क्रम कीजे घेर दक्षिणावरत फेर,
माणिक सुमेरवीच प्रभु दिन मनी है ।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठौर
कौलकेसे रूप नौ गृही अनूप बनी है ॥
बालक दशाकी मरजाद दश वरस लों,
बीस लों वढ़ति तीसलों सुछवि रही है ।

चालीस लौं चतुराई पंचास लौ थूलताई,
साठ लग लोचनकी दृष्टि लहलही है ॥
सत्तर लौं श्रवण असी लौं पुरुपत्व निन्या-
नवे लग इन्द्रिनकी शकति उमही है।
सौलो चित चेत एक सौ दशोत्तरलों आयु,
मानुप जनम ताकी पूरीथिति कही है ॥ १३ ॥

चौदह विद्याओंके नाम यथा—

छप्पय।

ब्रह्मज्ञान चातुरीवान, विद्या हय वाहन।
परम धरम उपदेश, वाहुवल जल अवगाहन ॥
सिद्ध रसायन करन, साधि सप्तमसुर गावन।
वर सागीत प्रमान, नृत्य वाजित्र वजावन ॥
व्याकरण पाठ मुख ब्रेद धुनि, ज्योतिप चक्र विचारचित।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दशचार मित ॥ १४ ॥

छत्तीस पौन (जाति)के नाम कवित्त

शीसगर दरजी तबोली रंगवाल ग्वाल,
बढ़ई सगतरास तेली धोबी धुनियाँ।
कंदोई कहार काछी कुलाल कलाल माली,
कुदीगर कागदी किसान पटवुनियाँ ॥
चितेरा विंधेरा वारी लखेरा ठठेरा राज,
पटुवा छप्परबंध नाई भारभुनियाँ।

सुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर,
धीवर चमार एही छत्तीस पवुनियाँ ॥ १५ ॥

एक सौ अडतालीस प्रकृति

वस्तु छन्द.

सत्ततुट्टहि सत्ततुट्टहि तुरीय गुण थान ।
तहं तीन व्युच्छतिभई नवठाण छत्तीस जानहु ।
दशमें पुनि इक लोभ वारमें सोलह खिपानहु ।
वहत्तर तेरम नसै, तेरह चौदम एवि ।
एम पैडि अड़ताल सौ, होय सिद्ध [illegible] १६ ॥

छप्पय ।

एक जान द्वै तोरि, तीन रम चा [illegible] ।
पंच जीत पटराख, सात तज [illegible] हु ॥
नव संभारि दश धारि, ग्यारमहि वारह भावहु ।
तेरह तिर चौदहें चढत, पन्द्रह विलगावहु ॥
सोलहन मेटि सत्रह भजहु, अट्ठारह कह करहु छय ।
सम गणि उनीस वीसहि विरचि, **बानारसि** आनंद मय १७

तात्पर्य—दोहा ।

शुद्ध आतमा एक जिन, राग द्वेष द्वय बध ।
तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विकथा धध ॥ १८ ॥
प्रवल पंच इन्द्री सुभट, षट विधि जीवनिकाय ।
जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥

ब्रह्मचर्य्यकी वाड़ि नव, दश मुनिधर्मविचार ।
ग्यारह प्रतिमा श्रावकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥
तेरह थानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ ।
पन्द्रह जोग शरीरके, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥
सत्रह विधि सयम सही, जीव समास उनीस ।
दोष अठारह जान सब, पुद्गलके गुण वीस ॥ २२ ॥

इति प्रस्ताविक फुटकर कविता.

अथ गोरखनाथके वचन.

चौपाई ।

जो भग देख भामिनी मानै । लिङ्ग देख जो पुरुष प्रमानै ॥
जो विन चिह्न नपुंसक जोवा । कह गोरख तीनो घर खोवा ॥ १ ॥
जो घर त्याग कहावे जोगी । घरवासीको कहै जु भोगी ।
अन्तरभाव न परखै जोई । गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २ ॥
पढ़ ग्रन्थहिं जो ज्ञान बखानै । पवन साध परमारथ मानै ।
परम तत्त्वके होहिं न मरमी । कह गोरख सो महाअधर्मी ॥३॥
माया जोर कहै मै ठाकर । माया गये कहावे चाकर ।
माया त्याग होय जो दानी । कह गोरख तीनो अज्ञानी ॥४॥
कोमल पिंड कहावै चेला । कठिन पिंडसो ठेला पेला ।
जूना पिंड कहावै बूढा । कह गोरख ए तीनों मूढा ॥ ५ ॥

विन परिचय जो वस्तु विचारै। ध्यान अग्नि विनतन परजारै।
ज्ञानमगन विन रहै अवोला। कह गोरख सो वाला भोला ॥६॥
सुनरे वाचा चुनियाँ मुनियाँ। उलट वेषसों उलटी दुनियां।
सतगुरु कहै सहजका धंधा। वाद विवाद करै सो अंधा ॥७॥

इति गोरखनाथके वचन।

अथ वैद्य आदिके भेद.

वैद्यलक्षण

कर्म रोगकी प्रकृती पावै। यथायोग्य औषधि [illegible]।
उदय नाडिकाकी गति जानै। सो सुवैद्य मेरे म[illegible] ॥१॥

ज्योतिषीलक्षण

नवरस रूप गिरह पहिचानै। वारह राशि [illegible]नै ॥
सहज संक्रमण साधै जोई। ज्योतिषराय [illegible]ोई ॥२॥

वैष्णवलक्षणदोहा।

तिलक तोष माला विरति, मति मुद्रा [illegible]प।
इन लक्षणसों वैषणव, समुझै [illegible] ॥ ३ ॥
जो हरि घटमें हरि लखै, हरि वा[illegible]ोइ।
हरि छिन हरि सुमरन करै, [illegible]णव सोइ ॥४॥

मुसलमानलक्ष[illegible]

जो मन मूसै आपनो, साहिबके [illegible]य।
ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मु[illegible] है सोय ॥ ५ ॥

गहब्बर लक्षण

जो मन लावे भरमसों, परम प्राप्ति कहँ खोय ।
जहँ विवेकको वर गयो, गवर कहावै सोय ॥ ६ ॥

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय ।
मनकी द्विविधा मानकर, भये एकसों दोय ॥ ७ ॥
दोऊं भूले भरममें, करें वचनकी टेक ।
राम राम हिन्दू कहैं, तुर्क सलामालेक ॥ ८ ॥
इनके पुस्तक बांचिये, वेहू पढें कितेब ।
एक वस्तुके नाम द्वय, जैसे शोभा, जेब, ॥ ९ ॥
तिनको द्विविधा–जे लखें, रग विरगी चाम ।
मेरे नैनन देखिये, घट घट अन्तर राम ॥ १० ॥
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहिर यह माहि ।
जब लग यह कछु है रहा, तब लग यह कछु नाहि ११
ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उडहि सुमति खग होय ।
यथाशक्ति उद्यम करहिं, पार न पावहि कोय ॥१२॥
गई वस्तु सोचै नही, आगम चिंता नाहि ।
वर्त्तमान वरतै सदा, सो ज्ञाता जगमाहि ॥ १३ ॥
जो विलसै सुख संपदा, गये ताहि दुख होय ।
जो धरती बहु तृणवती, जरै अग्निसो सोय ॥ १४ ॥
धन पाये मन लहलहै, गये करै चित शोक ।
भोजन कर [1]हरि लखै, वररुचि कैसो [2]बोकै ॥ १५ ॥

---

१ सिंह २ बकरा.

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिनमाहि ।
इनकी संगति जे लगैं, तिनहि कही सुख नाहि ॥ १६ ॥

जे मायासों राचिके, मनमें राखहि वोझ ।
कै तो तिनसो खर भलो, कै जगलको रोझ ॥ १७ ॥

इस माया के कारणै, जेर कटावहि सीस ।
ते मूरख क्यो कर सकै, हरिभक्तनकी रीस ॥ १८ ॥

लोभ मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह ।
मूल अजीरण व्याधिको, मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥

जैसी मति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहि ।
पशु मूरख भूपर चलहि, खग पडित नभमाहि ॥ २० ॥

सम्यकदृष्टी कुक्रिया, करै न अपने वश्य ।
पूरब कर्म उदोत है, रस दे जाहि अवश्य ॥ २१ ॥

जो महत है ज्ञानविन, फिरै फुलाये गाल ।
आप मत्त और न करै, सो कलिमाहिं कलाल ॥ २२ ॥

ज्यों पावक विन नहि सरै, करै यदपि पुर दाह ।
त्यों अपराधी मित्रकी, होय सबनको चाह ॥ २३ ॥

कर्त्ता जीव सदीव है, करै कर्म स्वयमेव ।
यह तन कृत्रिम देहरा, तामें चेतन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहि कर्त्ता विन प्रेम ।
देह अकृत्रिम देहरा, देव निरजन एम ॥ २५ ॥

भूमि यान धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार ।
सयनासन चौपद द्विपद, परिगह दश परकार ॥ २६ ॥
स्नान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीस ।
ये षट कर्म सबहि करे, राजा रंक सरीस ॥ २७ ॥
उचित वसन सुरुचित असन, सलिल पान सुख सैन ।
बड़ी नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैन ॥ २८ ॥

चतुर्दश नियम

विगै दरव तबोल पट, शील सचित्त स्नान ।
दिशि अहार पान रु पुहुप, सयन विलेपन यान ॥ २९ ॥
शीलवन्त मडै न तन, अधि पद गहै न संत ।
पिताजात न हनें पिता, सती न मारहि कंत ॥ ३० ॥
कामी तन मडन करै, दुष्ट गहै अधिकार ।
जारजात मारहि पिता, असति हने भरतार ॥ ३१ ॥
ज्ञानहीन करणी करै, यो निजमन आमोद ।
ज्यो छेरी निज खुरहितें, छुरी निकासै खोद ॥ ३२ ॥
राजऋद्धि सुख भोगवें, ऐसे मूढ़ अजान ।
महा सन्निपाती करहि, जैसें शरबत पान ॥ ३३ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग ।
सतगुरु विन भागें नही, दोऊ जालिम रोग ॥ ३४ ॥
जे आशाके दास ते, पुरुष जगतके दास ।
आशा दासी जास की, जगत दास है तास ॥ ३५ ॥

संसारी उद्धार तज, धरै रोक पर प्यार ।
ज्ञानी रोक न आदरै, करै दरब उद्धार ॥ ३६ ॥
कारण काज न जो लखै, भेद अभेद न जान ।
वस्तुरूप समुझै नही, सो मूरख परधान ॥ ३७ ॥
देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार ।
सांचे लीजे परखिके, झूठे दीजे डार ॥ ३८ ॥
अठ्ठारहदूषणरहित, देव सुगुरु निरग्रंथ ।
धर्म दया पूरवअपर,—मतअविरोधि सुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
सुनिकै वाणी जैनकी, जैन धरै मन ठीक ।
जैनधर्म विन जीवकी, जै न होय तहकीक ॥ ४० ॥
उपजै उर सन्तुष्टता, दृग दुष्टता न होय ।
मिटै मोहमदपुष्टता, सहज सुष्टता सोय ॥ ४१ ॥

इति वैद्यलक्षणादि प्रस्ताविक कविता ।

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते ।

एक जीवद्रव्य ताके अनंत गुण अनन्त पर्य्याय. एक एक गुणके असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशनिविषै अनन्त कर्मवर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनंत पर्य्यायसहित विराजमान. यह एक ससारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था. याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने. एकजीव द्रव्य

अनंत अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि सयोगित (संयुक्त) मानने। ताको व्यौरौ,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति; अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्यकी परनति, ताको व्यौरौ—

(एक जीवद्रव्य जा भांतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप परिनमै सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाही। वाकी और भाति। आहीभाति अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनन्तानंत स्वरूप अवस्थालिये वर्तहिं। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य औरस्यौ मिलइ नाही। याही भांति एक पुद्गल परवानू एक समयमाहि जा भातिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परवानू द्रव्यसौ मिलै नाही. तातै पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।)

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेत्रावगाही अनादिकालके, तामै विशेष इतनौ जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवानू द्रव्य अनंतानंत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनंताकार परिनमनरूप बंधमुक्तिशक्तिलिये वर्त्तहिं।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामै तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी जीवद्रव्यकी। ससारातीत सिद्ध अनवास्थितरूप कहिये।

अब तीनहूं अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चया-

त्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्धनिश्चय द्रव्यकों सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यकों सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकौ सहकारी शुद्धव्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनौ जु यावत्काल [illegible] अवस्था तावत्काल व्यवहार कहिये. सिद्ध व्यवहार [illegible] कहिये [illegible] जु संसार व्यवहार एकरूप दिखायौ. संसारी सो व्यवहारी व्यवहारी सो संसारी।

अब तीनहूं अवस्थाको विव[illegible]

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, ता[illegible] त्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्य[illegible] होत मात्र [illegible] गुणस्थानकस्यौ द्वादशम गुणस्थान[illegible] द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्ध-व्यवहारी।

अब निश्चय तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार संसारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं,—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नाही जानतौ तातै परस्वरूपविषै मगन होय करि कार्य मानतु है ता कार्य करतौ छतौ अशुद्धव्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौ अ-

पनौ कार्य नाही मानतौ सतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है. ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए. केवलज्ञानी यथाख्यातचारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातै शुद्धव्यवहारी कहिए जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातै व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थानकसौ लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंत जाननी । असिद्धत्वपरिणमनत्वात् [illegible]

[illegible] हारको स्वरूप कहै है—

[illegible] शुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शु- [illegible] रनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। पर [illegible] को इतनौ जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहूविषै छतौ है. उहा भी व्यवहार सज्ञा कहिए—सो यौ नाही—जातै संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। ससारावस्थाके मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है तातै सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्तः।

अथ आगमअध्यातमको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यातम कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव ससार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरौ—आगमरूप

कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताकौ व्यौरो- कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप- पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरि- णतिरूप पारिणाम--ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम--भावरूप ज्ञानद- र्शन सुखवीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार—

अनंतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसै— वटवृक्षको वीज एक हाथविषै लीजै. ताको विचार दीर्घ दृष्टिसौ कीजै तो वा वटके वीजविषै एक वटको वृक्ष है. सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वामै वास्तवरूप छतो है. अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसंयुक्त है फल फलविषै अनेक वीज होंहि। या भातिकी अवस्था एक वटके वीजविषै विचारिए। भी और सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषै वीज है ते ते अतगर्भित वटवृक्षसंयुक्त होंहि। याहीभाति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक वीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजै तौ भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए

न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भांति अनतताको स्व-रूप जाननौ)। ता अनतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै—अनन्तको ओर अत है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै। तातै अनंतता अनंतहीरूप प्रति भासै, या भाति आगम अध्यातमकी अनंतता जाननी. तामै विशेष इतनौ ज्ञु अध्यातमको स्वरूप अनंत आगमको स्व-रूप अनंतानंतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्या-[illegible] [illegible] ्याश्रित। इन दुहूंको स्व-[illegible] अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानग्राह्य [illegible] भी तो केवली, अंशमात्र-[illegible] धिज्ञानी, मनःपर्यय ज्ञानी, [illegible] यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेतै यातै ज्ञु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके वलकरि आगम अध्यातमको स्वरूप उपदेशमात्र कहै, परन्तु आगम अध्यातमको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानै नही। तातै मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।)

अव मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनौ,—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै. मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातै सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यातमपद्धतिको निश्चय कहै तातै आगम

अग एकान्तपनौ साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै अध्यातम अंगको व्यवहारै न जानै यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भांति सूझै काहेतै ?—यातै—जु आगम अग बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतौ संतौ आपकू मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित जो अध्यातमरूप क्रिया सो अंतरदृष्टिग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टिके अभावसौ अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाही, तातै मिथ्यादृष्टी जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ।

अब सम्यक्दृष्टीको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामै नाही सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो—जैसै च्यार पुरुष काहु एकस्थानकविषै ठाढ़े। तिन्ह चारिहूंके आगे एक सीपको खंड किनही और पुरुषनै आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतै प्रश्न कीनी कि यह कहा है सीप है कै रूपौ है. प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो—कछु सुध नाहीन परत, किधौ सीप है किधौ रूपो है मोरी दिष्टिविषै याकौ निरधार होत नाहिनै। भी दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि—कछू मोहि यह सुधि नाही कि तुम सीप कौनसौ कहतु है रूपौ कौनसौ कहतु है मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही तातै हम नांहिनै जानत कि

तू कहा कहतु है अथवा चुप है रहै.वोलै नाही गहलरूपसौ । भी तीसरो पुरुष विभ्रमवालो वोल्यो कि—यह तौ प्रत्यक्षप्रमान रूपो है याको सीप कौन कहै मेरी दृष्टिविपै तौ रूपो सूझतु है तातै सर्वथाप्रकार यह रूपो है। सो तीनौ पुरुष तौ वा सीपको स्वरूप जान्यौ नाहीं । तातै तीनो मिथ्यावादी । अव चौथौ पुरुष वोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमान सीपको खंड है यामै कहा धोखो, सीप सीप सीप. निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमान भ्रामक अथवा अंध. तैसें सम्यग्दृष्टीकौ स्वपरस्वरूपविपै न ससै न विमोह न विभ्रम यथार्थ दृष्टि है तातै सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै । वाह्यभाव वाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाही. अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग साधै. सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जागे मोक्षमार्ग साचौ । मोक्षमार्गको साधिवो यहै व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै । ऐसै निश्चय व्यहारकौ स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै. मूढ जीव न जानै न मानै । मूढ जीव वधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो वात ज्ञाता मानै नाही । काहेतै यातै जु वंधके साधते वध सधै, मोक्ष सधै नाहीं । ज्ञाता जव कदाचित वधपद्धति विचारै तव जानै कि या पद्धतिसौ मेरो द्रव्य अनादिको वन्धरूप चल्यो आयो है—अव या पद्धतिसौ मोह तौरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी ल्यो है

नर काहे करै ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाही सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै । यह ज्ञाताको आचार, याहीकों नाम मिश्रव्यवहार ॥

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चालताको विचारलिख्यते-

हेय—त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरन रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरौ—गुणस्थानक प्रमान हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ । ज्यो ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुनस्थानककी बढवारी कही है. गुणस्थानकप्रवान ज्ञान-गुणस्थानक प्रमान क्रिया । तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होहिं तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए । भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाही । एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी । परतु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलंवनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै काहेतै अवस्थाप्रवान परसत्तावलबक है । ज्ञानको परसत्तावलवी परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबन.

शीली होइ ताको नाउ ज्ञान । ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकारके उदीकभाव होहि । तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर । न कर्त्ता न भोक्ता न अवलंबी तातै कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होंहि सर्वथा तौ फलानौ गुनस्थानक कहिये सो झूठो । तिनि द्रव्यकौ स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यौ नाही। काहेतै—यातै जु और गुनस्थानकनिकी कौन बात चलावै केवलीके भी उदीकभावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाही । काहू केवलीकौ दंड कपाटरूप क्रिया उदै होय काहू केवली कौ नाही । तौ केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुनस्थानककी कौन बात चलावै। तातै उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाही ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है । स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति ज्ञायक प्रमान ज्ञान स्वरूपाचरनरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनौ। इन बातनको व्यौरो कहातांई लिखिये कहा तांई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातै यह विचार वहुत कहा लिखहि । जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो वहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिठ्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगा नहीं यह—वचनिका यथाका यथा सुमतिप्रवान केवलिवचनानुसारी है । जो याहिसुणैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण ।

इति परमार्थवचनिका।

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताकौ व्यौरा—निमित्त तौ संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको व्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको व्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकलपना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकलपना. ताकी चौभंगी. प्रथम ही गुनभेद कलपनाकी चौभंगीको विस्तार कहौं, कैसैं,—ऐसैं—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुन, सब गुन असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभगीको विचार एक तौ जीवकौ ज्ञानगुन दूसरो जीवको चारित्रगुन।

ए दोनौ गुण शुद्धरूप भाव जानने। अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको व्यौरो—इन दुहूंकी गति न्यारी न्यारी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताकौ व्यौरौ,—ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परंतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाही, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उतपत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको व्यौरो कहै है,—संकलेस

विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पंचमगुणस्थानक पर्यन्त। यह तौ दुहुकौ गुण भेद न्यारौ न्यारौ कियौ। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न [illegible]। दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा [illegible]।

[illegible] विचार—ज्ञानगुन निमित्त [illegible]दान रूप ताको व्यौरौ—

[illegible]त्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको व्यौरौ—सूक्ष्मदृष्टि देइकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्चयरूप मिथ्यात्व सम्यक्त्वकी वात नाही चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान सकलेस रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान सकलेस चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, सकलेसरूप गति चारित्रकी तासमै निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहूसमै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमै अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान संकलेसरूप चारित्र तासमै शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान

विशुद्ध रूप चारित्र तासमै शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताकौ व्यौरौ—ज्ञान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्रकी शुद्धता कहिए। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये। अब ताको विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसौ जानतु है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मौसौ न्यारे है प्रत्यक्ष प्रमाण। हौ मरूंगो ए इहां ही रहैंगे सो जान तु है। अथवा ए जाहिगे, हो रहूंगो, कोई काल इन्हस्यौ मोहि एक दिन विजोग है ऐसो जानपनौ मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए. परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता जब वस्तुकौ स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाही परंतु गर्भित शुद्धता सौ भी अकाम निर्जरा है वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बंध है. याही भाति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातै चारित्रावर्ण कर्म मंद है। ता मंदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्र गुण संकलेशरूप है तातै केवल तीव्रबंध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जासमै जानरूप ज्ञान है और विशुतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समै अजानरूप

ज्ञान है संकलेश रूप चारित्र है तासमै बंध है तामै विशेष इतनौ जु अल्प निर्जरा वहु वंध, तातै मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा. जैसै—काहू पुरुषकौ नफो थोडो टोटौ बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परंतु वंध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यौ व्यवहारराशि कौनके वल आवतौ? उहां तौ ज्ञान गुन अजानरूप गहलरूप है अवुद्धरूप है तातै ज्ञानगुनको तौ वल नाही। विशुद्धरूप चारित्रके वलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है. जीवद्रव्यविषै कषाइकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी। अव और भी विस्तार सुनो—

ज्ञानपनौ ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गानुसारी है तातै दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनौ जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाही। इन दुहूं गुणकी गर्भित शुद्धता जवतांई ग्रंथिभेद होय नाही तवतांई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जव ग्रंथिभेद होइ तव इन दुहूंकी शिखा फूटै तव दोऊं गुन धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गकौ चलहिं। ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि। चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुन निर्मल होइ। वह केवल ज्ञानको अंकूर, वह जथाख्यातचारित्रको अंकूर।

इहां कोऊ उटकना करतु है,—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनौ अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनौ सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासौ निर्जरा कैसै? यह हम नाहीं समुझी—ताको समाधान,—

सुनि भैया! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता जथाख्यातको अश है तातै विशुद्धतामें शुद्धता आई॥ भी वह उटंकनावारो बोल्यौ—तुम विशुद्धतासौ निर्जरा कही, हम कहतु है कि विशुद्धतासों निर्जरा नाही शुभबन्ध है—ताकौ सामाधान,—कि सुन भैया यह तौ तू सांचो. विशुद्धतासों शुभबन्ध, संक्लेशतासों अशुभबन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद याभै है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है शुभपद्धति उर्द्धगतिकौ परनमन है तातै अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता व्यमें आई मानि मानि, याभै धोखौ नाही है। विशुद्धता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद विना शुद्धताको जोर चलत नाहीने? जैसै कोऊ पुरुष नदीमै डुबक मारे फिर जब उछलै तब दैवजोगसों ऊपर ता पुरुषके नौका आय जाय तौ यद्यपि तारू पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै? वाको जोर चलै नाहि, बहुतेरा कलवल करै पै कछु वसाइ नांही, तैसै विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भये मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव

करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण जथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताकी जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहा मोक्षमार्ग साध्यौ तहा कह्यौ कि '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' और यौं भी कह्यौ कि "**ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः**" ताको विचार—चतुर्थ गुणस्थानकस्युं लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यौ ताकौ व्यौरौ, सम्यक्रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा दोऊ धारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं ज्ञानकी शुद्धता क्रियासौं क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामैं शुद्धता है तौ जथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामैं ता न होती तौ ज्ञान गुन शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यौं तौ नहीं वामैं शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहां कोई कहैगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाही। कोऊ गुन काहू गुनके सारे नहीं सब असहाय रूप है। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तौ अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातैं विशुद्धतामैं जथाख्यातको अश है तातैं वह अंश क्रम क्रम पूरण भयौ। ए भइया उटकनावारे—तै विशुद्धतामैं शुद्धता मानी कि नाही. जो तौ तै मानी तौ कछु और कहिबेकौ कार्य नाहीं। जो तै नाहीं मानी तौ तेरौ द्रव्य याहीभातिकौ परनयौ है हम कहा करि है जो मानी तौ स्यावासि। यह तौ द्रव्यार्थिककी चौभंगी पूरन भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभंगी सुनौ एक तौ वक्ता अज्ञानी, श्रोता भी अज्ञानी, सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथौ—वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साधी।

इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका.

अथ निमित्तउपादानके दोहे लिख्यते।

दोहा।

गुरुउपदेश निमित्त विन, उपादानबलहीन।
ज्यों नर दूजे पाव विन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥

हौ जानै था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन विन, पानीमाहिं जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥

उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥

उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्तको दाव ।
एक चक्रसौ रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥
सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कोन ।
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज विन पौन ॥ ६ ॥
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेस ।
वसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादानके दोहे

अथ अध्यातमपदपंक्ति लिख्यते.

(१)

राग भैरव

या चेतनकी सब सुधि गई ।
व्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक
है जडरूप अपावन देह ।
तासौ राखै परमसनेह, या चेतनकी० ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथबंध ।
तिनहिं कुटंब कहै जा बंध ॥
आप अकेला जनमै मरै ।
सकल लोककी ममता धरै, या चेतनकी० ॥ २ ॥

---

१ इस रागमेंसे टेक निकाल दी जावे तो खासी १५ मात्राकी चौपाई हो जाती है ।

होत विभूति दानके दिये।
यह परपंच विचारै हिये।
भरमत फिरै न पावइ ठौर।
ठानै मूढ औरकी और, या चेतनकी० ॥ ३ ॥
बंध हेतको करै जुखेद।
जानै नही मोक्षको भेद।
मिटै सहज संसार निवास।
तब सुख लहै **बनारसिदास**, या चेतनकी० ॥४॥

(२)

राग रामकली—

चेतन तू तिहुकाल अकेला,
नदी नावसंजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटंबका मेला, चेतन० ॥ टेक ॥
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला।
सुखसंपति शरीर जलबुदबुद, विनशत नाहीं बेला, चेतन० ॥१॥
मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला।
मै मै करत चहूं गति डोलत, बोलत जैसें छेला[1], चेतन० ॥ २ ॥
कहत **बनारसि** मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला, चेतन० ॥३॥

---

१ बकरीका बच्चा

(३)

राग रामकली ।

मगन है आराधो साधो! अलख पुरुष प्रभु ऐसा ॥ टेक ॥
जहाँ जहाँ जिस रससौं राचै, तहाँ तहाँ तिस भेसा, मगन० ॥१॥
सहजप्रवान प्रवान रूपमें, संसैमें ससैसा ।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधानमें लैसा, मगन० ॥ २ ॥
उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरूप उदै सा ।
व्यवहारी व्यवहार करममें, निहचैमें निहचै सा, मगन० ॥ ३॥
पूरण दशा धरै संपूरण, नय विचारमें तैसा ।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा, मगन० ४॥
नाही कहत होइ नाही सा, है कहिये तौ है सा ।
एक अनेक रूप है वरता, कहौ कहाँ लों कैसा, मगन० ॥५॥
वह अपार ज्यों रतन अमोलक, बुधि विवेक ज्यों पैसा ।
कल्पित वचन विलास '**बनारसि**' वह जैसेका तैसा, मगन० ॥६॥

(४)

दोहा—

जिनप्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माहि ।
पै जाके दूषण लगै, वंदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥
मेटी मुद्रा अवधिसो, कुमती कियो कुदेव ।
विघन अंग जिनबिंबकी, तजै समकिती सेव ॥ २ ॥

(५)

राग विलावल ।

इहि विधि देव अदेवकी, मुद्रा लखलीजे,
गुन लच्छन पहिचानकै, पद पूजा कीजै ॥ टेक॥
पट भूषन पहरे रहै, प्रतिमा जो कोई ।
सो गृहस्थ मायामयी, मुनिराज न होई ॥ २ ॥
जाके तिय संगति नहीं, नहिं वसन न भूषन ।
सो छवि है सर्वज्ञकी, निर्मल निरदूषन ॥ ३ ॥
वाम अंग जाके त्रिया, अथवा अरधंगी ।
सो तो प्रगट कुदेव है, विषयी रसरंगी ॥ ४ ॥
निरद्वंदी निरपरिगृही, जोगासन ध्यानी ।
सो है मूरति सिद्धकी, कै केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
जो प्रचंड आयुध लिये, कर ऊरध बाहू ।
प्रगट विनोदी देवता, मारैगा काहू ॥ ६ ॥
जो न कछू करनी करै, नहिं आयुध पानी ।
सो प्रतिमा भगवंतकी, निरवैर निशानी ॥ ७ ॥
जो पशुरूपी पशुमुखी, पशुवाहनधारी ।
ते सब असुर अवंदनी, निरदय संसारी ॥ ८ ॥

(६)

राग विलावल ।

ऐसै क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी ।
जैसै निरख मरीचिका, मृग मानत पानी । ऐसै० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैलका, विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही, ऐसै० ॥ २ ॥
देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करमकी, तै निजकर जानी। ऐसै० ॥ ३ ॥
नाव कहावति लोककी, सो तौ नहिं भूलै।
जाति जगतकी कलपना, तामै तू झूलै। ऐसै० ॥ ४ ॥
माटी भूमि पहारकी, तुह संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोहकी, तू तऊ न बूझै। ऐसै० ॥ ५ ॥
तै कबहू निज गुनविषै, निजदृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसों, अपनायत कीनी, ऐसैं० ॥ ६ ॥
ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूढत बन दौरै।
त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत औरै, ऐसै० ॥ ७ ॥
करता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं।
ज्ञान विना सदगुरु विना, तू समुझत नाहीं। ऐसै० ॥८॥

(७)

राग विलावल।

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी।
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी, ऐसै०॥१॥
ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।
त्यों घटमें परमारथी, परमारथ साधै, ऐसै० ॥ २ ॥

जैसै वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै ।
तैसें पंडित पिंडकी, रचना निरवारै, ऐसै० ॥ ३ ॥
पिंडस्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।
जानै मानै रमि रहै, घट व्यापक सोई, ऐसै० ॥ ४ ॥
चेतन लच्छन है धनी, जड़ लच्छन काया ।
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया, ऐसै० ॥ ५ ॥
लच्छन भेद विलेच्छको, सु विलच्छन वेदै ।
सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै, ऐसै० ॥ ६ ॥
ज्यों रजसोधै न्यारिया, धन सौं मनकी लै ।
त्यों मुनिकर्म विपाकमें, अपने रस झीलै, ऐसै० ॥ ७ ॥
आप लखै जब आपको, दुविधापद मेटै ।
सेवक साहिब एक है, तब को किहिं भेंटै? ऐसै० ॥ ८ ॥

(८)

राग आसावरी ।

तू आतम गुन जानि रे जानि,
साधु वचन मनि आनि रे आनि, तू आतम० ॥१॥
भरत चक्रपति षटखंड साधि,
भावना भावति लही समाधि, तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसनचंद्ररिषि भयो सरोष,
मन फेरत फिर पायो मोष, तू आतम० ॥ ३ ॥

---

१ १५ मात्राकी चौपाई ।

रावन समकित भयो उदोत,
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत, तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल,
पहुँच्यो पंचमगति तिहँ काल, तू आतम० ॥ ५ ॥
दिढ प्रहारकरि हिंसाचार,
गये मुकति निजगुण अवधार, तू आतम० ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृगी ध्यान,
करत कीट भयो ताहि समान, तू आतम० ॥ ७ ॥
कहत 'वनारसि' वारंवार,
और न तोहि छुडावनहार, तू आतम० ॥ ८ ॥

(९)

राग आसावरी।

रे मन! कर सदा सन्तोष,
जातै मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥
वढत परिग्रह मोह वाढ़त, अधिक तृषना होति।
वहुत इंधन जरत जैसै, अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥ २ ॥
लोभ लालच मूढजनसो, कहत कंचन दान।
फिरत आरत नहि विचारत, धरम धनकी हान, रे मन० ॥३॥
नारकिनके पाइ सेवत, सकुच मानत संक।
ज्ञानकरि बूझै 'वनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥४॥

(१०)

राग बरवा।

वालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटि।
अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटि, वालम ॥ १ ॥
हूं तिक रहूं जे सजनी रजनी घोर।
घर करकेउ न जानै चहुदिसि चोर, वा० ॥ २ ॥
पिउ सुधियावत वनमें पैसिउ पेलि।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, वा० ॥ ३ ॥
संवरौ सारदसामिनि औ गुरु भान।
कछु वलमा परमारथ करो वखान, वा० ॥ [illegible] ॥
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटा वल ज्योति स्वरूप, वा० ॥ ५ ॥
दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय।
पियरा गरुव सचीकन कंचन होय, वा० ॥ ६ ॥
चेतन चित अवधार सुगुरु उपदेश।
कछु इक जागलि ज्योति ज्ञान गुन लेस, वा० ॥ ७ ॥
अथिररूप सब देखिसि छिन वैराग।
चेतन आपुहि आप वुझावै लाग, वा० ॥ ८ ॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर।
चार चौर घर मूंसहि सरवस तोर, वा० ॥ ९ ॥
चेतन तुहूं वनसावज कोलकिरात।
निसिदिन करै अहेर अचानक घात, वा० ॥ १० ॥

चेतनहो तुहू चेतहु परम पुनीत ।
तजहु कनक अरु कामिनि होहु नचीत ॥ ११ ॥
परेहु करमवस चेतन ज्यो नटकीस ।
कोउ न तोर सहाय छाडि जगदीस ॥ १२ ॥
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष ।
राग दोष दुइ बंधन छूटत मोष ॥ १३ ॥
मोहजालमें चेतन सव जग जानि ।
तुहु कुवाज तुहु वाझहु सकत भुलान ॥ १४ ॥
चेतन भयेहु अचेतन सगति पाय ।
चकम[illegible] [illegible]ी देखी नहि जाय ॥ १५ ॥
चेतन तुहि लपटात प्रेमरस फाद ।
जस राखल धन तोपि विमलनिशिचाद ॥ १६ ॥
चेतन तोहि न भूल नरक दुख वास ।
अगनि थंभ तरुसरिता करवत पास ॥ १७ ॥
चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराउ ।
वांध पाच ठग वेग तोर अव दाउ ॥ १८ ॥
[illegible]वजोनि सुख चेतन सुरग वसेर ।
ज्यों विन नीव धौरहर खसत न वेर ॥ १९ ॥
चेतन नर तन पाय बोध नहि तोहि ।
पुनि तुहु का गति होइहि अचरज मोहि ॥ २० ॥
आदि निगोद निकेतन चेतन तोर ।
भव अनेक फिरि आयेहु कतहु न ओर ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल,
छाडहु वेगि विचारि पापतरुमूल ॥ २२ ॥
गरभवास तुहुं चेतन ऊरध पांव,
सो दुख देख विचार धरमचित लाव ॥ २३ ॥
चेतन यह भवसागर धरम जिहाज,
तिह चढ बैठो छोड लोककी लाज ॥ २४ ॥
दह या दुहु अव चेतन होहु उचाट,
कह या जाउ मुकतिपुरि संजम वाट ॥ २५ ॥
उधवागाय सुनायेहु चेतन चेत,
कहत बनारसि थान नरोत्तम हेत ॥ २६ ॥

(११)

राग धनाश्री।

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगततै जड़ता व्यापी निज गुन सकल टले, चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसों विरचि-ठगनिसों राचे, मोह पिसाच छले। हँसि हँसि फंद सवारि आप ही, मेलत आप गले, चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद सिंधुतें, फिर तिह पंथ टले। कैसें परगट होय आग जो दबी पहारतले, चेतन० ॥ ३ ॥ भूले भवभ्रम वीचि बनारसि तुम सुरज्ञान भले। धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढि, बैठे ते निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

पुन. राग धनाश्री।

चेतन तोहि न नेक सभार, नख सिखलों दिढबंधन वेढे

कौन करै निरवार, चेतन० ॥ १ ॥ जैसै आग पषान काठमें लखिय न परत लगार। मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार, चेतन० ॥ २ ॥ ज्यों गजराज पखार आप तन, आप हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरा, तनहिं लपेटत तार, चेतन० ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो, खुलै न पेच अपार। और उपाय न बनै 'बनारसि' सुमरन भजन अधार, चेतन० ॥ ४ ॥

(१३)

राग सारंग।

दुविधा कब जै है या मनकी दु०। कब निजनाथ निरंजन सुमिरौ, तज सेवा जन जनकी, दुविधा० ॥ १ ॥ कब रुचिसौ पीवै दृगचातक, बूंद अखयपद घनकी। कब शुभध्यान, धरौ समता गहि, करू न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥ कब घट अतर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु वचनकी। कब सुख लहौ भेद परमारथ, मिटै धारना धनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥ कब घर छॉड़ होहुं एकाकी, लिये लालसा वनकी। ऐसो दशा होय कब मेरी, हौ वलिवलि वा छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राग सारंग।

हम वैठे अपनी मौनसौ। दिन दशके महिमान जगत जन

---

१ रेशमका कीडा गलेके नीचेसे तार निकाल कर उससे अपने शरीरके चारों ओर कोशा बनाकर आप बन्द हो जाता है।

बोलि विगारै कौनसौ, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये विलाय भरमके वादर, परमारथपथपौनसौ । अव अंतरगति भई हमारी, परचे राधारौनसौ[1], हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी सुधापानकी महिमा, मन नहि लागै वौनसौ[2] । छिन न सुहायँ और रस फीके, रुचि साहिबके लौनसौ, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय पाय सुखसंपति को निकसै निज भौनसौ । सहज भाव सदगुरुकी संगति, सुरझै आवागौनसौ, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग सारग वृंदावनी ।

जगतमें सो देवनको देव । जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव, जगतमें० ॥ १ ॥ जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्रीविषय न वेव । जनम न होय जरा नहि व्यापै, मिटी मरनकी टेव, जगतमें० ॥ २ ॥ जाकै नहि विषाद नहि विस्मय । नहि आठों अहमेव[3] । राग विरोध मोह नहि जाकै, नहि निद्रा परसेव[4], जगतमें० ॥ ३ ॥ नहि तन रोग न श्रम नहिं चिंता, दोष अठारह भेव । मिटे सहज जाके ता प्रभुकी, करत 'बनारसि' सेव, जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

पुन· राग सारंग वृंदावनी ।

विराजै **रामायण** घटमाहि । मरमी होय मरम सो जानै,

---

१ स्वानुभवरूपी राधारमणसे. २ वमन—छर्दि. ३ अष्टप्रमाद ४ पसेव—पसीना.

मूरख मानै नाहिं, विराजै रामायण० ॥१॥ आतम राम ज्ञान गुन लछमन सीता सुमति समेत । शुभपयोग वानरदल मडित, वर विवेक रणखेत, विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति[1] भाग । भई भस्म मिथ्यामत लंका उठी धारणा आग, विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरे निकाछित सूर । जूझे रागद्वेष सेनापति ससै गढ चकचूर, विराजै० ॥४॥ विलखत कुंभकरण भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव । थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबंध समभाव, विराजै० ॥ ५ ॥ मूर्छित मंदोदरी दुराशा, सजग चरन[2] हनुमान । घटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे छपकगुण वान, विराजै० ॥ ६ ॥ निरखि सकति गुन चक्रसुदर्शन उदय बिभीषण दीन । फिरै कबंध मही रावणकी, प्राणभाव शिरहीन, विराजै० ॥ ७ ॥ इह विधि सकल साधुघटअंतर, होय सहज संग्राम, यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम, विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप, दोहा ।

जो दातार दयाल है, देय दीनको भीख ।
त्यों गुरु कोमल भावसौं, कहै मूढको सीख ॥ १ ॥

---

१ सूर्पनखा राक्षसी २ सम्यक्चारित्र

सुगुरु उचारै मूढसौ, चेत चेत चित चेत ।
समुझ समुझ गुरुको शवद, यह तेरो हित हेत ॥ २ ॥
शुक सारी समुझै शवद, समुझि न भूलहि रंच ।
तू मूरति नारायणी, वे तो खग तिरजंच ॥ ३ ॥
होय जौंहरी जगतमें, घटकी आखै खोलि ।
तुला सँवार विवेककी, शब्द जवाहिर तोलि ॥ ४ ॥
शब्द जवाहिर शब्द गुरु, शब्द ब्रह्मको खोज ।
सव गुण गर्भित शब्दमें, समुझ शब्दकी चोज[1] ॥ ५ ॥
समुझ सकै तो समुझ अव, है दुर्लभ नर देह ।
फिर यह संगति कव मिलै, तू चातक हौ मेह ॥ ६ ॥

(१८)

राग गौरी ।

भौंदू भाई! समुझ शवद यह मेरा, जो तू देखै इन ऑखिनसौ तामै कछू न तेरा, भौंदू० ॥ १ ॥ ए ऑखै भ्रमहीसौ उपजी, भ्रमहीके रस पागी । जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इनहीको रागी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ ए ऑखै दोउ रची चामकी, चाम हि चाम विलोवै । ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपनरूप तू जोवै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ इन ऑखिनकौ कौन भरोसो, ए विनसै छिन माही । है इनको पुदगलसौ परचै, तू तो पुद्गल नाही, भौंदू भाई० ॥ ४ ॥ पराधीन वल इन आंखिनको, विनु परकाश न सूझै । सो परकाश अगनि

---

१ व्यंग

रवि शशिको, तू अपनों कर बूझै, भौदू भाई० ॥ ५ ॥ खुले पलक ए कछुइक देखहि, मुदे पलक नहि सोऊ । कबहूं जांहि होहि फिर कबहूं, भ्रामक आंखै दोऊ, भौदू भाई० ॥ ६ ॥ जगमकाय पाय ए प्रगटै, नहि थावरके साथी । तू तो इन्है मान अपने दृग, भयो भीमको हाथी, भौदू भाई० ॥ ७ ॥ तेरे दृग मुद्रित घट अंतर, अन्धरूप तू डोलै । कै तो सहज खुलै वे आंखै, कै गुरु सगति खोलै, भौदू भाई' समुझ शबद यह मेरा ॥ ८ ॥

(१९)

राग गौरी ।

भौदू भाई ते हिरदै की आंखै, जे करषै अपनी सुख सपति भ्रमकी संपति नाखै, भौदू भाई० ॥ १ ॥ जे आंखै अमृतरस वरखै, परखै केवलिवानी । जिन्ह आंखिन विलोक परमारथ, होंहिं कृतारथ प्रानी, भौदू भाई० ॥ २॥ जिन आंखिनहि दशा केवलकी, कर्मलेप नहि लागै । जिन आखिनके प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै, भौदू भाई० ॥ ३ ॥ जिन आंखिनसौ निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै । जिन आखिनसौ लखिस्वरूप मुनि, ध्यानधारणा धारै, भौदू भाई० ॥ ४ ॥ जिन आंखिनके जगे जगतके, लगे काज सब झूठे । जिनसौ गमन होइ शिवसनमुख, विषय विकार अपूठे, भौदू भाई० ॥ ५ ॥ जिन आंखिनमें प्रभा परमकी, परसहाय नहि

लेखै । जे समाधिसौ लखै अखंडित, ढकै न पलक निमेखै, भौदू भाई० ॥६॥ जिन आंखिनकी ज्योति प्रगटकै, इन आंखिनमें भासै । तब इनहूकी मिटै विषमता, समता रस परगासै, भौदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आंखै पूरनस्वरूप धरि, लोकालोक लखावै । ए वे यह वह सब विकलप तजि, निरविकलप पदपावै, भौदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग काफी ।

तू भ्रम भूल ना रे प्रानी, तू० टेक। धर्म विसारि विषयसुख सेवत, वे मति हीन अज्ञानी, तू भ्रम० ॥ १ ॥ तन धन सुत जन जीवन जोबन, डाभ अनी ज्यों पानी, तू भ्रम० ॥ २ ॥ देख दगा परतच्छ **'बनारसि'** ना कर होड़ विरानी, तू भ्रम० ॥ ३ ॥

(२१)

पुनः राग काफी ।

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा, शोक हरै तिहुं लोकको, उठ लीजतु नाम सवेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा। देखत मूरत भावसौ, मिट जात मिथ्यात अधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जोनि बसेरा । मोहि अभयपद दीजिये, फिर होय नही भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ बिंब विराजत आगरे,

थिर थान थयो शुभवेरा । ध्यान धरै विनती करै, वानारसि वंदा तेरा, चिन्तामन० ॥ ४ ॥

इति अध्यातमपदपक्ति ।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते।

सहज हिंडना हरख हिडोलना, झुलत चेतनराव ।
जहाँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥
जहँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरुचि भूमि सुरंग ।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड अभंग ॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, भौर विमल विवेक ।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी, सुमति पटली एक । सहज० ॥ १ ॥
षट कील जहां षडद्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल ।
उद्यम उदय मिलि देहि झोटा, शुभ अशुभ कल्लोल ॥
संवेग सवर निकट सेवक, विरत वीरे देत ।
आनंदकंद सुछंद साहिव, सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥
जँह खिपक उपशम चमर ढारइ, धर्भ ध्यान वजीर ।
आगम अध्यातम अंगरक्षक, शान्तरस वरवीर ॥
गुनथान विधि दश चार विद्या, शकतिनिधिविस्तार ।
सतोष मित्र खवास धीरज, सुजस खिजमतगार, सहज ॥ ३ ॥
धारना समिता क्षमा करुणा, चारसखि चहुँ ओर ।
निर्जरा दोऊ चतुरदासी, करहिं खिजमत जोर ॥

जहँ विनय मिलि सातों सुहागनि, करत धुनि झनकार ।
गुरुवचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार, सहज० ॥४॥
श्रद्दहन सांची मेघमाला, दाम गर्जत घोर ।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥
अनुभूति दामनि दमक दीसै, शील शीत समीर ।
तप भेद तपत उछेद परगट, भावरंगत चीर, सहज० ॥५॥
कबहूं असंख प्रदेश पूरन, करत वस्तु समाल ।
कबहू विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अड़ताल ॥
कबहूं अबंध अदीन अशरन, लखत आपहि आप ।
कबहूं निरंजन नाथ मानत, करत सुमरन जाप, सहज० ॥६॥
कबहूं गुनी गुन एक जानत, नियत नय निरधार ।
कबहूं सुकरता करम किरिया, कहत विधि व्यवहार ॥
कबहूं अनादि अनंत चितित, कबहुं करहि उपाधि ।
कबहूं सु आतम गुणसँभारत, कबहुं सिद्ध समाधि, सहज० ॥७॥
इहिभांति सहज हिंडोल झूलत, करत आतम काज ।
भवतरनतारन दुखनिवारन, सकल मुनिसिरताज ॥
जो नर विचच्छन सदयलच्छन, करत ज्ञानविलास ।
करजोर भगति विशेष विधिसौं, नमत **काशीदास** ॥ ८ ॥

इति परमार्थहिंडोलना ।

अथ मलार तथा सोरठ राग।

देखो भाई! महाविकल ससारी, दुखित अनादि मोहके कारन, राग द्वेष भ्रम भारी, देखो भाई महाविकल ससारी॥१॥ हिंसारभ करत सुख समुझै, मृषा बोलि चतुराई। परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बडाई, देखो भाई०॥ २॥ वचन राख काया दृढ राखै, मिटै न मनचपलाई। यातै होत औरकी औरै, शुभ करनी दुखदाई[1], देखो भाई०॥ ३॥ जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै। कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै, देखो भाई०॥ ४॥ आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठमद आनै। जाति लाभ कुल वल तप विद्या, प्रभुता रूप वखानै, देखो भाई०॥ ५॥ जड-सौ राचि परमपद साधै, आतमशक्ति न सूझै। विना विवेक विचार दरवके, गुण परजाय न बूझै, देखो०॥ ६॥ जसवाले जस सुनि सतोषै, तप वाले तन सोषै। गुनवाले परगुनको दोषै, मतवाले मत पोषै, देखो०॥ ७॥ गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोहविकलता छूटै। कहत **बनारसि** है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै, देखो०॥८॥

इत्यष्टपदी मल्हार सम्पूर्ण।

---

१ सुखदाई ऐसा भी पाठ है

तीननये पद जो हमने संग्रह किये हैं.

नयापद १ ला

मूलन बेटा जायो रे साधो, मूलन० जाने खोजकुटुंब सब खायो रे साधो० मूलन० ॥ टेक ॥ जन्मत माता ममता खाई, मोहलोभ दोइ भाई । कामक्रोध दोइ काका खाये, खाई तृषनादाई, साधो० ॥ १ ॥ पापीपापपरोसी खायो, अशुभकरम दोइ मामा । मान नगरको राजा खायो, फैल परोसवगामा, साधो० ॥ २ ॥ दुरमति दादी ....दादो, मुखदेखत ही मूओ । मंगलाचार वधाये वाजे, जब यो बालक हूओ, साधो० ॥ ३ ॥ नाम धरचो बालकको सूधो, रूप वरन कछु नाही । नामधरंते पाडे खाये, कहत बनारसि भाई, साधो० ॥ ४ ॥
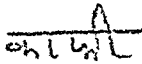
नयापद २ रा

राग जगला.

वा दिनको कर सोचजिय! मनमें । वा दि० टेक ।

वनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारी रे । ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी रे ॥ आखिर बाजी हारी, करले चलनेकी तय्यारी । इकदिन डेरा होयगा वनमें, वादिन० ॥१॥ झूठे नैना उलफत वांधी, किसका सोना किसकी चांदी। इकदिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीवी किसकी बांदी, नाहक चित्त लगावै धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियौ,

१ इस रागके पदक्रमोंको हम समझ नहीं सके ।

पानीसे पानी। मूरखसेती मूरख मिलियौ,, ज्ञानीसे ज्ञानी। यह मिट्टी है तेरे तनमे, वादिन० ॥ ३ ॥ कहत **बनारसि** सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे। जीवन मरन किया सो नाही, सिरपर काला निशाना रे। सूझ पडेगी बुढापेपनमें, वादिन० ॥ ६ ॥

नयापद ३ रा काफी

कित गये पच किसान हमारे। कित० ॥ टेक ॥
वोयो वीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे। कपटी लोगोंसे सांझाकर, ...हुए आप विचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना गह गह वैठो लिखलिख कागद डारे। बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पाचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कठ शवद नहि निकसत, हा हा कर्मसों हारे। **बानारासि** या नगर न वसिये, चलगये सींचनहारे ॥ ३ ॥

वनारसीविलासके संग्रहकर्त्ता.

नगर आगरेमै अगरवाल आगरो जो,
गर्ग गोत आगरेमै नागर **नवलसा**।
सघवी प्रसिद्ध **अभैराज** राजमान नीके,
पच बाला नलनिमै भयो है कॅवलसा ॥
ताके परसिद्ध लघु **मोहनदे** संघइन
जाके जिनमारग विराजत **धवलसा**।

ताहीको सपूत **जगजीवन** सुदिढ जैन,
वानारसी वैन जाके हियेमें सबलसा ॥ १ ॥
समै जोग पाइ **जगजीवन** विख्यात भयो,
ज्ञानिनकी मंडलीमें जिसको विकास है ।
तिननें विचार कीना नाटक **वनारसी** मत
आपुके निहारिवेको आरसी प्रकाश है ॥
और काव्य घनी खरी करी है **वनारसीने,**
सो भी क्रमसे एकत्र किये ज्ञान भास है ।
ऐसी जानि एक ठौर, कीनी सब भाषा जोर,
ताको नाम धर्‌यो यो **वनारसीविलास** है ॥ २ ॥

दोहा ।

सत्रहसै एकोत्तरे, समय चैत्र सित पाख ।
द्वितियामें पूरन भई, यह वनारसी भाख ॥ ३ ॥

इति श्रीकविवर वनारसीदासकृत वनारसी विलास समाप्त ।